पशुधन प्रकाश

ग्यारहवां अंक

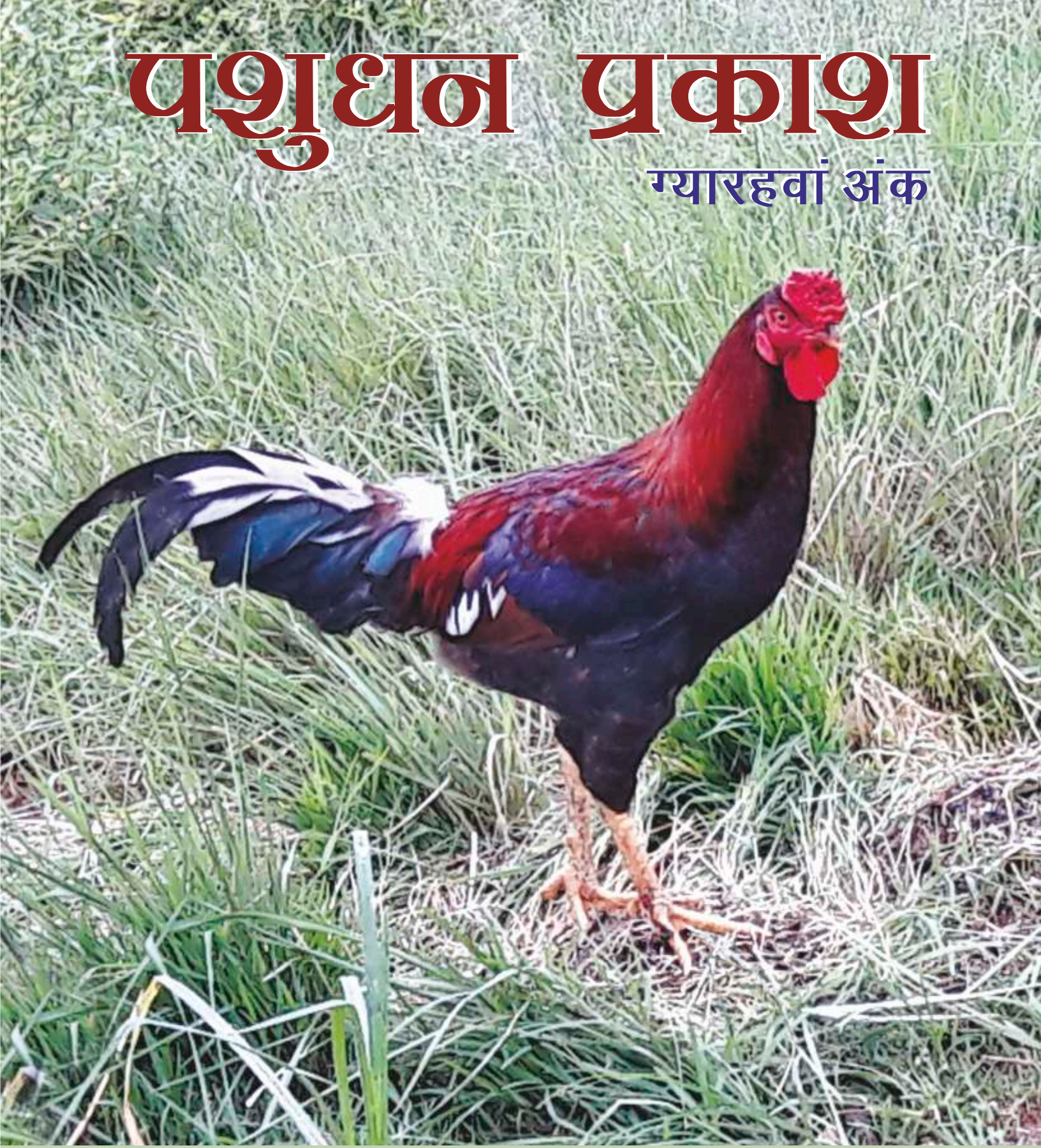

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल–132001 (हरियाणा)

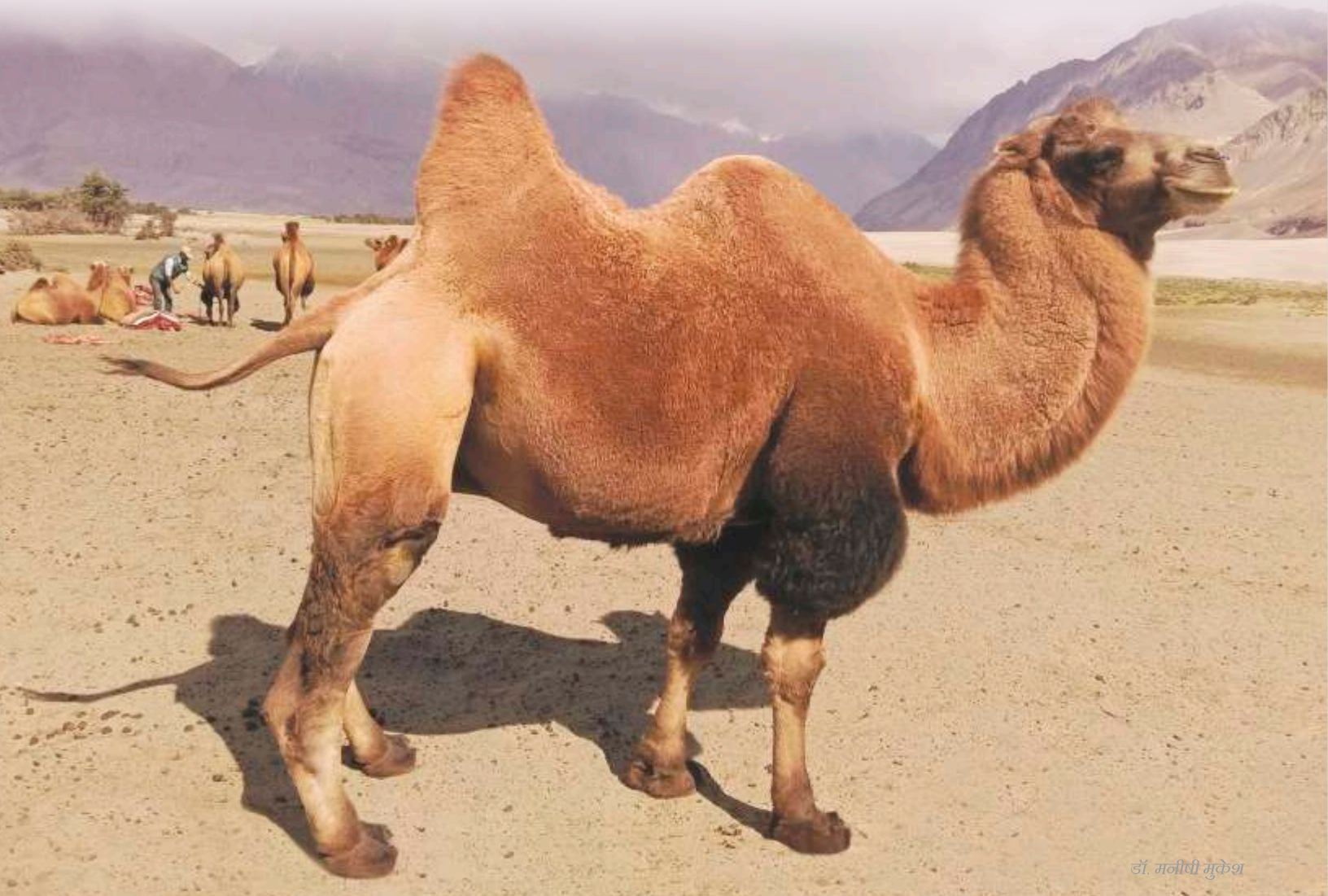
डॉ. मनीषी मुकेश

पशुधन प्रकाश

(ग्यारहवां अंक - 2020)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल- 132 001 (हरियाणा) भारत

पशुधन प्रकाश

(ग्यारहवां अंक-2020)

संरक्षक एवं प्रकाशक
रमेश कुमार विज, निदेशक

मुख्य सम्पादक
अनिल कुमार मिश्र

सम्पादक मंडल
राकेश कुमार पुंडीर
सोनिका अहलावत
अमोद कुमार
सतपाल

© भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल

अंक-11 (वर्ष-2020)

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए आंकड़े तथा विचार लेखकों के अपने हैं;
उनके लिए संपादक मंडल अथवा ब्यूरो किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रक:
इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
343, पहली मंजिल, मुगल कॅनाल, करनाल - 132 001 (हरियाणा)
फोन नं. 0184-4043541, 80539-76111
ई-मेल: jobs.ipp@gmail.com

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)
ICAR - NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
KARNAL - 132 001 (HARYANA)

डॉ. रमेश कुमार विज
निदेशक
Dr. RK Vijh
Director

निदेशक की कलम से...

मानव की उत्पत्ति के साथ ही साथ भाषा का भी अद्भव हुआ है चाहे वह ध्वनि के रूप में हो या अन्य रूप में। भाषा बोलचाल के साथ ही संप्रेषण का भी कार्य करती है। हिंदी का व्यापक और मान्य अर्थ है "भारतीय"। पूर्व में हिंदी और भारतीय एक दूसरे के पूरक थे, लेकिन समय के साथ आगे चलकर यह उप- भाषाओँ और बोलियों का सामूहिक नाम बन गयी। हिंदी का व्याकरण वैज्ञानिक है एवं इसकी शब्द संपदा 2.5 लाख से भी अधिक है, जोकि अंग्रेजी की शब्द संपदा (10000) से कहीं अधिक है।

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, अपने अधिदेश संबंधी शोध कार्यों के साथ – साथ हिन्दी के प्रचार – प्रसार; इसके विभागीय/ राजकीय कार्यों में अधिकाधिक प्रयोग एवं वैज्ञानिक संगोष्ठियों और बैठकों में अधिकाधिक प्रयोग हेतु प्रयत्नशील है। इसी क्रम में संस्थान द्वारा वार्षिक हिंदी पत्रिका " पशुधन प्रकाश" का प्रकाशन पिछले 11 वर्षों (वर्ष 2009) से लगातार किया जा रहा है, जिसमें पशुपालन विज्ञान से सम्बंधित सभी विधाओं के बारे में महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित लेखों का प्रकाशन किया जाता है, जोकि पशुपालक एवं किसान भाइयों के लिए काफी सरल एवं ज्ञानवर्धक होते हैं। संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें नियमित रूप से आयोजित की जाती हैं एवं तिमाही तथा छमाही प्रतिवेदन मुख्यालय को नियमित भेजे जाते हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान कर्मियों एवं अधिकारियों में राजभाषा हिन्दी के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु विभिन्न व्याख्यान एवं हिन्दी पखवाड़े का आयोजन प्रति वर्ष किया जाता है।

"पशुधन प्रकाश" का नवीन अंक नए कलेवर में आपके सम्मुख प्रस्तुत है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों में देश के विभिन्न शैक्षिक संस्थानों के सहयोगी लेखकों, संस्थान के वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों का योगदान सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। इस अंक में 26 किसानोंपयोगी लेखों को शामिल किया गया है जो कि देश की महत्वपूर्ण देशी पालतू पशु नस्लों, पशु प्रबंधन, स्वास्थ्य प्रबंधन आदि से सम्बंधित हैं। मेरा यह विश्वास है कि प्रकाशित लेख, पशु पालकों, किसानों, पशुपालन से जुड़े वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों एवं प्रसार कर्यकर्ताओं के लिए ज्ञानवर्धक एवं लाभप्रद होंगे। मैं पत्रिका के प्रकाशन हेतु प्रकाशक मंडल के सभी सदस्यों एवं लेखकों को ह्रदय से बधाई देता हूँ, जिनके अथक प्रयास से यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। पत्रिका में गुणात्मक सुधार के लिए आपके सुझाव एवं आलोचनाओं का स्वागत है। मैं पशुधन के दशम अंक में प्रकाशित लेखों में से पुरस्कृत लेखों के लेखकों को भी बधाई देता हूँ।

"पशुधन प्रकाश" के उज्जवल, सुनहरे एवं स्वर्णिम भविष्य की कामना के साथ ग्यारहवां अंक आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

रमेश विज

(रमेश कुमार विज)

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)
ICAR - NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
KARNAL - 132 001 (HARYANA)

सम्पादकीय

"अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम
विवर्तते अर्थमावेन प्रक्रिया जगतो यतः"
-भत्रिहरी

शब्द ही ब्रह्म है और सम्पूर्ण जगत ब्रह्म का विवर्त है, जैसे जल का जल तरंग। शब्द के अर्थ की पराकाष्ठा ही ब्रह्मत्व की अनुभूति है। जिस तरह राष्ट्रगीत, राष्ट्रगान, राजचिन्ह, राजकीय पक्षी आदि मन को परम सुख देने वाले शब्द हैं उसी तरह " राजभाषा" भी मन को आह्लादित करने वाली है। हिंदी बड़ी सरल एवं देश के जन- मन की भाषा है, अतः हिंदी अनुरागियों एवं प्रेमियों का पावन कर्तव्य है कि वे इसके व्यापक प्रचार – प्रसार के लिए दिल एवं हृदय से अथक प्रयास करें।

देश की विभिन्न पालतू पशु प्रजातियों की रंग- बिरंगी दुनियाँ की मन मोहक छवि एवं पशुपालन को किसानों के लिए लाभदायक एवं सुकून देने वाली " पशुधन प्रकाश" पत्रिका का ग्यारहवां अंक आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

पशुपालन की विभिन्न विधाओं एवं अद्यतन नवीनतम अनुसंधानों एवं तकनीकों को पशुपालक भाइयों के बीच सरल एवं सुगम रूप से उपलब्ध कराने में राजभाषा हिंदी का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। सम्पादक मंडल भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" का ग्यारहवां अंक नवीन आशा एवं उत्साह के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष का अनुभव कर रहा है। इस अंक में देश में पायी जाने वाली महत्वपूर्ण स्वदेशी नस्लों की जानकारी जैसे कि अरुणाचल प्रदेश के अद्वितीय पशु आनुवंशिक संसाधनों की विशेषता, पांचाली भेंड़, मुज्ज़फ़रनगरी भेंड़, बुन्देलखंडी बकरी आदि के महत्व के साथ ही देशी पशुधन नस्लों के पंजीकरण एवं दस्तावेजीकरण की आवश्यकता, आधुनिक भेंड़ पालन से किसानों के आर्थिक सुधार में अविकानगर के अभिनव प्रयोग, केवल चराई पर पालित गायों के दूध की श्रेष्ठता, प्रजनन हेतु सांडो स्थिति, गाय की खीस, माइक्रो आर एन ए का महत्व एवं अन्य सम्बंधित किसानोपयोगी लेखों को इस अंक में समाहित किया गया है।

पत्रिका के अविरल एवं सतत प्रकाशन में देश के विभिन्न राज्यों के हिंदी अनुरागी, हिंदी प्रेमी सहयोगी लेखकों, संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का सहयोग अनुकरणीय एवं सराहनीय रहा है, सम्पादक मंडल के सभी सदस्य सभी का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं एवं आशा करते हैं कि भविष्य में भी आपका सहयोग यथावत मिलता रहेगा। पत्रिका के प्रकाशन में पूर्ण सावधानी बरती गयी है, लेकिन त्रुटि की संभावना से इंकार नही किया जा सकता। हम आपकी प्रतिक्रिया एवं सुझावों का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं, आशा है आप निराश नहीं करेंगें। यह पत्रिका आपकी है एवं हमें आगामी अंक के लिए आपके लेखों का भी इंतज़ार रहेगा।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह अंक आपके लिए ज्ञान वर्धक, रुचिकर, उपयोगी एवं संग्रहणीय रहेगा।

(अनिल कुमार मिश्र)

विषय-सूची

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1.	**अरुणाचल प्रदेश के अद्वितीय पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रलेखन एवं नस्ल पंजीकरण की आवश्यकता** एस के निरंजन, ए के मिश्र, जयदीप के सिंह, टी गामी एवं अमोद कुमार	1
2.	**पशुधन का गुण निर्धारण, पंजीकरण तथा दस्तावेजीकरण- एक आवश्यकता** नरेश कुमार वर्मा	9
3.	**पांचाली भेंड : भारत वर्ष की एक बहुउद्देशीय देशी नस्ल** अनिल कुमार मिश्र एवं गोपाल गोवने	13
4.	**अविकालीन भेंड़ - ऊन व मांस उत्पादन की अपार संभावनाएं** राजीव कुमार, अरूण कुमार, एस एस मिश्रा एवं चंद्रप्रकाश स्वर्णकार	16
5.	**मुजफ्फरनगरी भेंड़: उत्तर प्रदेश का गौरव** गोपाल दास, नितिका शर्मा, विनय चतुर्वेदी एवं अनुपम कृष्ण दीक्षित	19
6.	**बुन्देलखंडी बकरी** दीपक उपाध्याय, बी पी कुशवाहा, एस के महंता, अनूप कुमार, ए के मिश्र एवं एस बी मैती	25
7.	**शूकरों की प्रमुख विदेशी और भारतीय नस्लें** केशर परवीन, आकांक्षा राठौण और दीप्ति किरण बरवा	30
8.	**गंगातीरी गायों के उत्पादन एवं प्रजनन क्षमताओं पर ब्याँत मौसम और ब्याँत संख्या का प्रभाव** विकास कुमार, रामपाल सिंह, केशर परवीन, नीरज, रमेश पांडे, रवि रंजन, अनुज कुमार शुक्ला एवं रूबी कुमारी	35
9.	**आधुनिक भेड़ पालन से किसानों के आर्थिक सुधार में अविकानगर का अभिनव प्रयास** राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्र एवं अजय कुमार शिंदे	39
10.	**चराई व्यवस्था में पाली जाने वाली देशी भारतीय गाय के दूध की श्रेष्ठता के वैज्ञानिक साक्ष्य** रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत, रीना अरोड़ा एवं मधु सूदन टांटिया	43
11.	**भारत में प्रजनन हेतु सांड़ो की स्थिति एवं उनका प्रबंधन** विकास सचान	50
12.	**गौ कोलोस्ट्रम की संरचना और इसके लाभ: एक समीक्षा** मोनिका सोढ़ी, प्रिंस विवेक, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश	53
13.	**माइक्रो आर.एन.ए - पशुधन प्रजातियों में मांसपेशियों की वृद्धि एवं विकास के नव आणविक नियंत्रक** मंदीप कौर, आशीष कुमार, राकेश कुमार, पूजा छाबड़ा, सोनिका अहलावत, अनीता यादव एवं रीना अरोड़ा	62
14.	**भैसों की उत्पादन क्षमता पर हीट स्ट्रेस का प्रभाव तथा इसका नियंत्रण** सौम्या दाश, एम एस टांटिया, गायत्री गुजर एवं केशर परवीन	69

15. **पशु आनुवंशिक संसाधन विविधता एवम एक्स-सीटू संरक्षण** 72
राजीव ए.के. अग्रवाल एवं अमोद कुमार

16. **बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान** 76
अमोद कुमार, राजीव ए. के. अग्रवाल एवं योगेश कुमार सोनी

17. **डेयरी व्यवसाय में अभिलेखों का महत्त्व** 79
अमोद कुमार, राजीव ए. के. अग्रवाल एवं एम. एस. टाँटिया

18. **गाय-भैंसों में शीघ्र गर्भ पहचान का महत्व** 81
सत्यनिधि शुक्ला

19. **गर्भाधान से लेकर ब्याने तक पशु की देखभाल** 84
संजय कुमार मिश्र एवं अतुल सक्सेना

20. **पशुओं को रोगों से बचाव के उपाय** 87
सत्येन्द्र पाल सिंह

21. **पशुओं के सामान्य रोग एवं उनका प्राथमिक/घरेलू उपचार** 92
संजय कुमार मिश्र

22. **पशुओं में परजीवी रोग एवं उनकी रोकथाम** 95
संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव

23. **गोवंशीय पशुओं में प्लास्टिक पदार्थ का दुष्प्रभाव व उपचार** 98
सुरभि के. त्यागी, विवेक मलिक, विनीत कुमार, मुकेश शिवहरे, प्रफ्फुल कुमार, चेतन सिंह एवं पुष्पेंद्र सिंह बामल

24. **दुधारु पशुओ में थनैला रोग** 100
आयुषी चौधरी, उमेश सिंह, हरजीत सिंह एवं ज्ञानेन्द्र सिंह सेंगर

25. **प्रसवोपरांत पशुओं में जेर का न गिरना: एक गंभीर समस्या** 104
आशुतोष बसेड़ा, जितेंद्र अग्रवाल एवं अतुल सक्सेना

26. **वैज्ञानिक फसल चक्रण द्वारा बकरियों के लिए वर्ष भर हरा चारा उत्पादन** 106
मोहम्मद आरिफ, अरविन्द कुमार एवं मनोज कुमार सिंह

27. **वैज्ञानिक संस्थानों में राजभाषा** 110
सतपाल

28. **राजभाषा प्रकोष्ठ : जनवरी 2019 से दिसंबर 2019 की प्रगति** 112

अरुणाचल प्रदेश के अद्वितीय पशु आनुवंशिक संसाधनों के प्रलेखन एवं नस्ल पंजीकरण की आवश्यकता

एस के निरंजन[1], ए के मिश्र[1], जयदीप के सिंह[2], टी गामी[3] एवं अमोद कुमार[1]

[1]भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

[2]कृषि विज्ञान केंद्र, तवांग (अरुणाचल प्रदेश)

[3]पशुपालन और पशु चिकित्सा विभाग, निर्जुली-पपुंपरे (अरुणाचल प्रदेश)

परिचय

पशु-पालन का इतिहास लगभग 12,000 साल पुराना है, जब मानव द्वारा आज की पशु प्रजाति के जंगली पूर्वजों को पालना शुरू किया था। भेड़, बकरी और गोवंश सबसे शुरुआती पालतू पशु थे। तब से मानव द्वारा लगभग चालीस पशु और कुक्कुट प्रजातियों को पालतू बनाया गया, जो भोजन, कृषि और फाइबर से संबंधित विभिन्न मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक चयन के साथ मानव द्वारा नियोजित प्रजनन के माध्यम से सैकड़ों "नस्लों" के रूप में पशुओं की एक विशाल आनुवंशिक विविधता उत्पन्न हुई। आज, दुनिया में आठ हजार से अधिक पालतू पशुधन और मुर्गी की नस्लें हैं।

दुनिया के महत्वपूर्ण पशु जैव विविधता केंद्र में से एक, भारत में 197 पंजीकृत पशुओं की नस्लें हैं, जिनमें 50 गोवंश, 17 भैंस, 34 बकरी, 44 भेड़, 7 घोड़े और टट्टू, 9 ऊंट, 10 शूकर, 3 गधे, एक याक, 19 मुर्गी , 2 बत्तख और एक गीज़ की नस्लें शामिल हैं। पिछले 10 वर्षों के दौरान, देश भर में 68 नई नस्लों को पंजीकृत किया गया; उनमें से कई उत्तर पूर्वी क्षेत्र की हैं। माना जाता है कि देश में अभी भी 100 से अधिक नस्लें उपलब्ध हैं, जो सुदूर और कम सुलभ क्षेत्रों में हो सकती हैं। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, जो एक परिभाषित जैव विविधता हॉटस्पॉट भी है, से बड़ी संख्या में अद्वितीय पशु आबादी को नस्ल के लिए अर्हता प्राप्त करने की उम्मीद है। उत्तर पूर्वी क्षेत्र का अरुणाचल प्रदेश विशिष्ट भौगोलिक जलवायु, जैव विविधता, कृषि और पशुपालन के कारण एक अलग स्थान रखता है, जिसमें पालतू पशु-विविधता हाल के समय तक लगभग बरकरार रही।

अरुणाचल प्रदेश: एक झलक

अरुणाचल प्रदेश, 83743 वर्ग किलोमीटर भौगोलिक क्षेत्र के साथ भारत के उत्तर पूर्व क्षेत्र का सबसे बड़ा राज्य है, जो अपनी समृद्ध संस्कृति और प्राकृतिक वनस्पतियों और जीवों के लिए जाना जाता है। अरुणाचल प्रदेश देश के रणनीतिक बिंदु के रूप में भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह चीन, भूटान और म्यांमार देशों के साथ अपनी सीमा का एक बड़ा हिस्सा साझा करता है। राज्य के भौगोलिक क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा समशीतोष्ण और उप-समशीतोष्ण जलवायु के अंतर्गत स्तरीकृत है । कम ऊंचाई वाले क्षेत्र (1500 मीटर समुद्र तल से, एमएसएल) काफी हद तक नम एवं उपोष्णकटिबंधीय है; मध्य क्षेत्र (1500 से 3500 मीटर एमएसएल) उप समशीतोष्ण एवं उपोष्णकटिबंधीय है और अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र अल्पाइन हैं। गर्मियों में बड़े अनुपात के साथ, राज्य में बड़ी मात्रा में 200 से 500 सेमी वार्षिक वर्षा होती है। इसकी जलवायु के कारण, दो तिहाई से अधिक क्षेत्र जंगल से ढ़का है। यह राज्य जैव-विविधता से समृद्ध है, पूर्वी हिमालयी क्षेत्र की जैव विविधता के लगभग एक-तिहाई हिस्सा इसके अंतर्गत आता है। यह राज्य देश में जैव विविधता के लिए प्रमुख राज्यों में से एक है, जिसमें लगभग 200 स्तनधारियों और 750 पक्षियों की प्रजातियां पाई जाती हैं। मूल रूप से अरुणाचल प्रदेश एक कृषि प्रधान राज्य है, जिसमें कृषि पर राज्य की 70% जनसंख्या निर्भर है। झूम के रूप में जानी जाने वाली कृषि, राज्य की सभी आर्थिक गतिविधियों में एक केंद्रीय भूमिका निभाती है। राज्य में दो प्रभाग- पूर्व एवं पश्चिम, 25 जिले एवं 3863 गाँव शामिल हैं। सबसे कम 17 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी वितरित क्षेत्र के साथ, राज्य की मानव आबादी 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 1.4 मिलियन है। मोनपा, तानी, ताई और नागा अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख समुदाय और ईसाई, हिंदू, डोनी-पोलो और बौद्ध राज्य के प्रमुख धर्म हैं।

अरुणाचल प्रदेश में पशुपालन

अरुणाचल प्रदेश राज्य में 2019 (20 वीं पशुधन गणना) की गणना के अनुसार 1.16 मिलियन पशुधन और 1.59 मिलियन कुक्कुट हैं। हालांकि, उत्तर पूर्व राज्यों में पशुधन और पोल्ट्री आबादी का यह हिस्सा बहुत कम है, परन्तु यहाँ पर प्रति व्यक्ति पशुओं की संख्या देश

में सबसे अधिक है। उत्तर पूर्व के अधिकांश राज्यों की तरह पिछली दो पशुधन गणना (2012 और 2019) के दौरान राज्य में पशुधन और कुक्कुट आनुवंशिक संसाधनों में बड़ी गिरावट आई है। जहां अधिकांश पशुधन और कुक्कुट प्रजातियों में गिरावट देखी गई है, राज्य में इस अवधि के दौरान याक और मिथुन की आबादी में वृद्धि हुई है। राज्य में कुल गोजातीय जनसंख्या 7.19 लाख है, जिसमें 3.5 लाख मिथुन, 3.45 लाख गोवंश और 0.24 लाख याक शामिल हैं। शूकर (2.84 लाख) और बकरी (1.60 लाख) अगली सबसे बड़ी आबादी वाली प्रजातियां हैं। भैंस, भेड़ और घोड़े भी मौजूद हैं, हालांकि, इनकी आबादी 8 हजार से नीचे है। लगभग सभी पशुधन देशी प्रकार के होते हैं, बहुत कम अनुपात (5 प्रतिशत) संकर गोवंश, शूकर और भेड़ हैं। राज्य में 14.7 लाख मुर्गियां और 1.24 लाख बत्तख हैं, जो ज्यादातर पिछवाड़े (बैकयार्ड) प्रणाली के अंतर्गत पाली जाती हैं।

राज्य के सात-जिलों- पपुंपरे, कुरुंग कुमे, लोहित, चांगलांग, पूर्वी कामेंग, पूर्वी सियांग और पश्चिम सियांग में लगभग दो-तिहाई पशुधन आबादी केंद्रित है। तिब्बती भेड़, भूटिया घोड़ा और अरुणाचली याक अरुणाचल प्रदेश की पंजीकृत देशी नस्लें हैं। वर्तमान में, मान्यता प्राप्त पशुधन नस्लों की आबादी में कुल पशुधन आबादी का केवल 2 प्रतिशत शामिल है, जबकि, बाकी (98%) गैर-वर्णित हैं। 19 वीं गणना के दौरान, राज्य में तिब्बती भेड़ और भूटिया घोड़े की संख्या शून्य पाई गई। अरुणाचली याक उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्र के तवांग और पश्चिम कामेंग जिलों में वितरित हैं। मुर्गियों की राज्य से अभी तक किसी भी आबादी को नस्ल की मान्यता नहीं दी गई है। उपलब्ध पशुधन संसाधनों के प्रलेखन की कमी को देखते हुए राज्य के सभी पशुधन और पोल्ट्री प्रजातियों के प्रलेखन की आवश्यकता है।

तालिका: विभिन्न वर्षों के दौरान उत्तर पूर्वी राज्यों में पशुधन और कुक्कुट संख्या (हजारों में)

राज्य	पशुधन			कुक्कुट		
	2007	2012	2019	2007	2012	2019
अरुणाचल प्रदेश	1412.65	1412.67	1160.9	1348.4	2244.2	1599.6
असम	17226.6	19082.2	18040.2	29060.3	27216.2	46712.3
मणिपुर	788.5	695.8	550.5	2403.3	2499.5	5897.6
मेघालय	1822.6	1957.6	357.9	3092.9	3400	2047.8
मिजोरम	328.1	311.9	357.9	1239.2	1271.4	2047.8
नागालैंड	1418.6	911.2	552.4	3155.9	2178.5	2838.9
सिक्किम	270.1	291.6	273.2	157.5	451.97	580.9
त्रिपुरा	1869	1936.2	1303.3	3700.95	4272.7	4168.2
उत्तर पूर्व राज्य	25136.2	26599.2	22596.3	44158.45	43534.47	65893.1
भारत	529697.6	512057.3	535838.9	648829.6	729209.3	851809.9

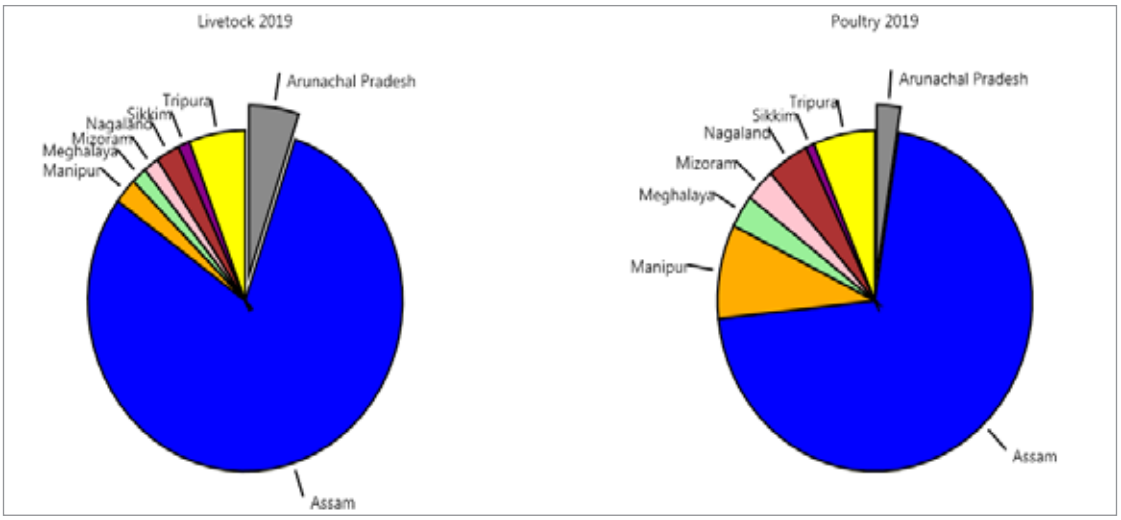

अरुणाचल प्रदेश व अन्य उत्तर पूर्वी राज्यों की पशुधन और कुक्कुट संख्या

अरुणाचल प्रदेश की पंजीकृत पशुधन नस्लें

अरुणाचल प्रदेश मात्र तीन पंजीकृत पशुधन नस्लों-अरुणाचली याक, भूटिया घोड़े और तिब्बती भेड़ का मूल प्रजनन-क्षेत्र है। मिथुन की मूल आबादी को लक्षण वर्णन के वाबजूद पंजीकृत नहीं किया गया है। देशी गोवंश का अध्ययन किया गया है, लेकिन अभी तक लक्षण वर्णन के लिए एक विस्तृत सर्वेक्षण किया जाना है। राज्य के पंजीकृत पशुधन नस्लों का विवरण यहां दिया गया है:

अरुणाचली याक

याक (बॉस गरुणनियंस) उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों के गोजातीय ट्रांस-हिमालयी उप-क्षेत्र (3000 मीटर से अधिक) में बड़े पैमाने पर पाए जाते हैं। यह अनोखी प्रजाति कम ऑक्सीजन स्तर, कम बेरोमेट्रिक दबाव, कम तापमान, उच्च पराबैंगनी जोखिम और दुर्लभ चारे सहित उच्च जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल है। स्थानीय लोग भोजन (दूध, मांस), भारवाहन, परिवहन, खाद, फाइबर और खाल के लिए इसका उपयोग करते हैं। याक समाज में सांस्कृतिक महत्व भी रखते हैं और मूल निवासियों के सामाजिक जीवन से इसका गहरा नाता रहा है। अरुणाचली याक मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश के पश्चिम कामेंग और तवांग जिलों में पाए जाते हैं। वर्तमान में अरुणाचली याक की आबादी 24 हजार है। मोनपा लोगों के लिए यह संपत्ति माना जाता है। हालांकि दूध उत्पादन 1 किग्रा प्रतिदिन है, परन्तु वसा की मात्रा बहुत अधिक (7.5%) होती है। याक के दूध की इसके स्वाद के कारण काफी मांग है और इसका उपयोग मक्खन, घी और चुरपी आदि बनाने के लिए किया जाता है। याक बेहद कम तापमान के प्रति सहिष्णु हैं और अल्पाइन क्षेत्र में परिवहन के लिए उपयोग किया जाता है। दूध उत्पादन में वृद्धि के लिए याक और स्थानीय गोवंश के संकर के लिए लोगों की पसंद बढ़ रही है, जो कि भविष्य में इस क्षेत्र में याक की आबादी में गिरावट का एक प्रमुख कारण हो सकती है है। यह अनुमान है कि लगभग 20 प्रतिशत याक इस क्षेत्र में संकर हैं।

भूटिया घोड़ा

भूटिया टट्टू अरुणाचल प्रदेश में भूटान से सटे क्षेत्र में वितरित हैं। कोट का रंग आमतौर पर भूरा और आयरन भूरा, कभी-कभी लाल-भूरा एवं रोन होता हैं। ये आकार में बड़े और मोटे होते हैं। भूटिया टट्टू में तुलनात्मक रूप से स्पष्ट रूप से जबड़े के साथ बड़ा सिर होता है। इन टट्टुओं में छोटी गर्दन, सीधी पीठ, ढलान वाले क्वार्टर और गहरी छाती होती है। 127 (114 से 134) सेमी की औसत ऊंचाई होती हैं। भूटिया टट्टू के पैर मजबूत होते हैं एवं जिनकी मांसपेशियां काफी मजबूत होती है। इनका इस्तेमाल राइडिंग और सामान ढ़ोने के लिए किया जाता है। ये आम तौर पर पहाड़ के किनारों पर चट्टान की दीवार से टकराते रहने से बचते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के तवांग जिले में याक नर व बछड़े वाली मादा

अरुणाचल प्रदेश के तवांग क्षेत्र में भूटिया घोड़ा

तिब्बती भेड़

इस नस्ल का नाम हिमालय में उनके मूल स्थान यानी तिब्बती पठार के नाम से पड़ा है तथा लुक / बेहरलुंग के रूप में भी जाना जाता है। तिब्बती भेड़ उत्तरी सिक्किम (फालुंग और डोनकॉन्ग घाटी) के अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र में वितरित है एवं तिब्बती मूल की डोकपास जनजाति (भूटिया जनजाति) द्वारा पाली जाती है। रंग सफेद होता है। चेहरा काला या भूरा होता है। कुछ भेंड़ों की आँखों के चारों तरफ काले रंग का घेरा भी पाया जाता है। कई बार शरीर पर भूरे और काले धब्बे भी दिखाई देते हैं। कुछ जानवरों में विशिष्ट रोमन नाक भी पायी जाती है। कान आकार में मध्यम हैं। मेढ़ों में सींग होते हैं जो नीचे की ओर और आगे की ओर मुड़े हुए होते हैं। पूंछ छोटी और पतली होती है। पेट ऊन से ढका हुआ होता है। ऊन का रंग सफेद होता है और ऊन अच्छी कालीन गुणवत्ता वाली होती है। 26 से 33 माइक्रोन के फाइबर व्यास के साथ वार्षिक ऊन उत्पादन 550 से 800 ग्राम है। तिब्बती भेड़ का मांस बेशकीमती मांस के रूप में बिक्री होता है। वयस्क शरीर का वजन 39 से 50 किलोग्राम होता है।

तवांग क्षेत्र में देशी भेड़ों का झुंड

संभावित नस्ल: लक्षण वर्णन की जरूरत

जैसा कि उल्लेख किया गया है, राज्य की अधिकांश पशुधन आबादी गैर-विवरणित है, जिसमें देशी गोवंश, मिथुन, बकरी, भैंस, सुअर, मुर्गी और बतख शामिल हैं। इन सभी आबादी में अद्वितीयता है, जिसमें साईं युमी जिले की बाला मवेशी, अल्पाइन क्षेत्र की देशी बकरी, सियांग घाटी की आईक सुअर, पेरोक चिकन, देशी पीजा-पक्कम बत्तख शामिल हैं।

मिथुन

मिथुन (बोस फ्रंटलिस) एक अर्ध पालतू, भारी लेकिन विनम्र गोजातीय वंश के होते हैं एवं मुख्य रूप से भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में पाया जाता है। विश्व स्तर पर, इस प्रजाति का मुख्य वितरण भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र और पड़ोसी देशों के अन्य निकटवर्ती भागों में है। यह भारत में मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर और मिजोरम राज्यों में वितरित है। ये मध्यम ऊंचाई पर पास के वन क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से चरते हैं। पिछली शताब्दी के दौरान देशी लोगों द्वारा अंधाधुंध वध के कारण मिथुन की आबादी घट गई थी। स्थानीय जनजातियों के लिए मिथुन का सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक बहुत अधिक महत्व है यह तथा मुख्य रूप से मांस पशु के रूप में पाला जाता है। मांस के अलावा, बेहतर गुणवत्ता वाला दूध भी मिथुन से प्राप्त किया जाता है। मिथुन दूध 1 किग्रा से 1.2 किग्रा प्रति पशु प्रतिदिन दुग्ध उत्पादकता के साथ प्रोटीन, और वसा में भी उच्च है। अरुणाचली मिथुन का पंजीकरण तत्काल किए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि विभाग द्वारा जनसंख्या का दस्तावेजीकरण पहले ही पूरा कर लिया गया है।

अरुणाचल प्रदेश के मिथुन

तवांग और पश्चिम कामेंग क्षेत्र के मवेशी

देशी गोवंश

अरुणाचल प्रदेश के देशी गोवंश छोटे से मध्यम आकार के होते हैं। ये गोवंश राज्य भर में वितरित हैं। कुछ क्षेत्रों में, स्थानीय गोवंश को बाला नाम दिया गया है। अधिकांश पशुओं में शरीर के विभिन्न हिस्सों पर सफेद धब्बे के साथ शरीर का रंग भूरा से काला होता है। काले और सफेद रंग के मिश्रित पशु भी मौजूद है। सफेद धब्बे ज्यादातर सिर, पूंछ और पेट के निचले हिस्से पर मौजूद होते हैं। क्रीमी सफेद, भूरा-लाल जैसे अन्य रंग वाले पशु भी उपलब्ध हैं। अधिकांश मामलों में कूबड़ कम विकसित होता है। मादाओं में सींग छोटे और टेढ़े और नरों में मध्यम होते हैं। पूँछ पिछले पैर के घुटने के नीचे तक होती है। देशी गोवंश की सबसे अधिक आबादी लोहित जिले में है और उसके बाद लोअर सुबनसिरी और पूर्वी सियांग है। हालांकि, तवांग, ऊपरी सुबनसिरी, पश्चिम कामेंग और चंगलांग के ऊपरी हिस्सों, पूर्वी कामेंग, वेस्ट सियांग और सियांग जिलों के समशीतोष्ण क्षेत्रों में भी कुछ अद्वितीय देशी गोवंश आबादी पाए जाने की सम्भावना है, जिन्हें दस्तावेजीकरण करने की आवश्यकता है।

गोजातीय संकर (क्रॉस-हाइब्रिड)

अरुणाचल प्रदेश विशिष्ट रूप से तीन गोजातीय प्रजातियों- गोवंश, याक और मिथुन का मूल निवास है। महत्वपूर्ण रूप से सभी तीन गोजातीय आनुवंशिक रूप से एक दूसरे के करीब हैं और एक दूसरे के लिए उच्च आनुवंशिक समानता भी साझा करते हैं। गोवंश और याक में 60 गुणसूत्र होते हैं एवं मिथुन में 58 गुणसूत्र होते हैं। मिथुन में गोजातीय मूल के दो ऑटोसोम जोड़े, उप- मेटासेंट्रिक गुणसूत्र के एक जोड़े बनाने के लिए जुड़े होते हैं। उच्च आनुवांशिक और क्रोमोसोमल समानता के कारण, इन गोजिनियों का आपस में संकरण हो सकता है। मिथुन और याक के साथ गोवंश के संकर राज्य के विभिन्न हिस्सों में बहुतायत से मौजूद हैं। हालांकि, याक और मिथुन के संकर सामान्य रूप से नहीं देखे जाते हैं, जो इन दोनों प्रजातियों के अलग भौगोलिक वितरण के कारण हो सकता है, हालांकि इन दोनों प्रजातियों में संकरण हो सकता है। मिथुन और याक का गोवंश से संकरण एक पुरानी प्रथा है; हालाँकि यह हाल के दिनों में अधिक देखा जा रहा है। अरुणाचल प्रदेश में संकरों की संख्या के बारे में कोई प्रामाणिक आंकड़ा नहीं है; लेकिन संकर की आबादी राज्य में याक और मिथुन की कुल आबादी का लगभग 10-20% हो सकती है। पशुधन गणना में प्रशासनिक निर्णय के आधार पर संकर की आबादी या तो याक/ मिथुन या देशी गोवंश आबादी के साथ गणना की जाती है, और यह इस क्षेत्र में याक और मिथुन की समग्र संख्या को प्रभावित करती है। संकर पशुओं सहित समस्त गोजातीय प्रजातियों- गोवंश, याक और मिथुन की गणना अलग-अलग करने की आवश्यकता है।

मिथुन और गोवंश के संकर

ये स्थानीय गोवंश और देशी मिथुन आबादी के संकर हैं। ज्यादातर संकर प्राकृतिक प्रजनन के माध्यम से विकसित होते हैं। ये संकर हाइब्रिड पश्चिम कामेंग और अन्य जिलों में वितरित किए जाते हैं। इन्हें इस क्षेत्र में अलग-अलग जनजातियों द्वारा अलग-अलग नाम दिए गए हैं, चुंगरंग, तमेन और जाटसा / जाटसम कुछ सामान्य नाम

युवा बछड़ा और पुरुष के साथ मादा

हैं। ये मिथुन की तुलना में आकार में छोटे होते हैं, लेकिन देशी गोवंश से बड़े होते हैं। शरीर मिथुन के समान सुगठित होता है। रंग ज्यादातर काला होता है परन्तु इसके सफेद स्टॉकिंग सामान्यतयः नहीं होती है। तमेन गाय मिथुन से समृद्ध वसा युक्त एवं अधिक दूध उत्पादन करती है।

याक और गोवंश के संकर

याक और गोवंश के संकर, जिन्हें ज्यादातर जो (संकर नर) और जोमो (संकर मादा) के रूप में जाना जाता है, अरुणाचल प्रदेश के ऊपरी और मध्य भाग, जहाँ याक आबादी भी मौजूद है, में वितरित हैं। अधिकांश याक संकर आबादी तवांग और पश्चिम कामेंग जिलों में है। याक संकर दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए पसंद किए जाते हैं और याक की तुलना में निचले क्षेत्र में संकर की अनुकूलन क्षमता अधिक होती है। तुलनात्मक रूप से कम ऊँचाई, गर्म जलवायु, अच्छे चरागाह और उच्च दूध की मांग के कारण किसान जोमो को रखने के लिए अधिक प्रेरित हो रहे हैं। अधिकांश संकरों को नर याक व मादा गोवंश से उत्पन्न किया जाता है। मादा संकर विशेष रूप से दूध के लिए उपयोग की जाती है तथा याक की तुलना में अधिक दूध का उत्पादन करती है। जो का उपयोग मुख्य रूप से कृषि और परिवहन उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

तवांग जिले में याक-मवेशी संकर (Dzomo)

अन्य आबादी

बकरी: राज्य में लगभग 1.6 लाख बकरियां पायी जाती हैं। असम की साझा सीमा वाले क्षेत्रों में स्थानीय असम सफेद बकरी की नस्ल हो सकती है। तवांग जैसे अरुणाचल प्रदेश के समशीतोष्ण और अल्पाइन क्षेत्रों या उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों के लिए अनुकूलित बकरियां पायी जाती हैं।

शूकर: अरुणाचल प्रदेश में देशी शूकर की बड़ी आबादी है। सियांग घाटी के आईक सुअर अद्वितीय हो सकते हैं।

देशी कुक्कुट: देशी पेरोक चिकन और पीजाब-पक्कम बत्तख के नस्ल निर्धारण एवं पंजीकरण की आवश्यकता है।

देशी नस्ल के प्रलेखन एवं पंजीकरण की आवश्यकता

देशी पशुधन और मुर्गी की नस्लों के प्रलेखन और पंजीकरण का पशुधन क्षेत्र के विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को बनाने तथा संशोधित करने में व्यापक प्रभाव पड़ता है। पंजीकृत नस्लों के परिभाषित प्रजनन क्षेत्र, कम उत्पादक देशी जानवरों के आनुवंशिक

अरुणाचल प्रदेश की मूल निवासी शूकर और मुर्गी

सुधार और विकास कार्यक्रम के लिए उपयुक्त प्रजनन रणनीति विकसित करने में उपयोगी होते हैं। जैसा कि पशुधन प्रजनन नीति में परिभाषित किया गया है, ऐसी नस्लों को चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से सुधार किया जा सकता है और पंजीकृत नस्लों के अधिसूचित प्रजनन क्षेत्र में किसी अन्य नस्ल का उपयोग नहीं किया जा सकता। इस तरह, देशी नस्लों का पंजीकरण न केवल हमारे आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण, बल्कि उनके सुधार के लिए भी सहायक होगा। कई नव पंजीकृत नस्लों के लिए प्रजनन नीतियां संबंधित राज्य विभागों द्वारा विकसित की जा रही हैं।

पंजीकरण प्रक्रिया से किसान सबसे अधिक लाभान्वित होते हैं। पशुधन रखने वाले किसान अत्यधिक निर्दिष्ट क्षेत्र में अपने मूल आनुवंशिक संसाधन की विशिष्टता और उत्पादन क्षमता को जान सकेंगें। नस्ल के पदनाम के बाद, नस्ल की बेहतर गुणवत्ता वाले जर्मप्लाज्म पशुधन मालिकों के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। पशु आधारित खेती के लिए विभिन्न सरकारी सुविधाएं, छोटे से लेकर बड़े / व्यावसायिक पैमाने पर उपलब्ध हो जाती हैं। स्थानीय पशुधन रखने वालों द्वारा विकसित देशी नस्लों की ब्रीड सोसाइटी जर्मप्लाज्म में सुधार, उत्पादन प्रणाली और उत्पादों के विपणन को मजबूत करने और समाज के बीच लाभ साझा करना सुनिश्चित करती हैं। एक उदाहरण के रूप में, अभी हाल में अंगोल गोवंश भ्रूण निर्यात के लाभों का प्रसार अंगोल नस्लपालकों के विकास हेतु किया गया।

पंजीकृत नस्लों के पंजीकरण के बाद उनकी राजपत्र अधिसूचना उन नस्लों के बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) और पशु रखने वालों के बीच लाभ साझा करने के लिए तंत्र विकसित करने के लिए कानूनी सहायता प्रदान करता है। वैश्वीकरण के युग में, जर्मप्लाज्म पाइरेसी के साथ-साथ जाली पेटेंट और अंतर्निहित विशेषताओं के लिए आईपी अधिकारों का लगातार खतरा बना हुआ है। पंजीकरण कीमती देशी जर्मप्लाज्म से संबंधित ऐसी सहज गतिविधियों के लिए उचित जांच रखता है। हाल ही में भारत सरकार द्वारा देसी नस्लों को कानूनी सुरक्षा प्रदान करने के लिए गजट/राजपत्र नोटिफिकेशन संख्या 3364 (एसओ 3699 (ई)) दिनांक 14.10.2019 और राजपत्र अधिसूचना संख्या 1420 (एसओ 1583 (ई)) दिनांक 22.05.2020, के माध्यम से पशुधन और मुर्गी की 197 पंजीकृत स्वदेशी नस्लों को अधिसूचित किया गया। सबसे महत्वपूर्ण बात, यह सरकार द्वारा नस्ल वार पशुधन गणना संचालित करने में सक्षम है, जो देश में प्रत्येक नस्ल की सटीक आबादी सुनिश्चित कर सकती है। अगर नस्ल लुप्तप्राय है तो यह उनके संरक्षण और विकास के लिए उपयुक्त नीति निर्माण के लिए बहुत उपयोगी है।

निष्कर्ष

अरुणाचल प्रदेश में प्रति मानव पशु का उच्च अनुपात है। हालांकि, अधिकांश पशु आनुवंशिक संसाधन गैर-वर्णित प्रकार के हैं। अरुणाचल प्रदेश की लगभग 95% देशी पशुधन और सभी कुक्कुट आबादी का प्रलेखन एवं नस्ल पंजीकरण अभी तक नहीं हुआ है। राज्य के सभी पशुधन और पोल्ट्री प्रजातियों को क्षेत्र वार प्रलेखन की आवश्यकता है। प्रलेखन पशुधन की नई देशी नस्लों की पहचान

करने और आबादी में विविधता और विशिष्टता को वर्णन करने में सहायक होगा, और भविष्य में संरक्षण कार्यक्रम के लिए भी महत्वपूर्ण होगा। देशी गोवंश, बकरी, भेड़, शूकर, मुर्गी और बत्तख की विशिष्ट आबादी का प्रलेखन एवं नस्ल पंजीकरण केंद्रीय और राज्य एजेंसियों द्वारा प्राथमिकता पर किया जा सकता है, ताकि इन्हें राज्य की अलग-अलग देशी नस्लों के रूप में मान्यता मिल सके। प्रलेखन एवं नस्ल पंजीकरण देशी पशुधन आनुवंशिक संसाधन और उनके उत्पादन वातावरण पर राज्य की संप्रभुता का दावा प्रदान करेगा।

आभार

लेखकगण, निदेशक, पशुपालन और पशु चिकित्सा विभाग (एएचवीडी), अरुणाचल प्रदेश के 21 फरवरी, 2020 को निदेशालय में आयोजित "अरुणाचल प्रदेश के देशी पशुधन और कुक्कुट आबादी के प्रलेखन" पर संवेदीकरण बैठक की मेजबानी के लिए आभारी हैं। लेखक डॉ देव तायेंग, संयुक्त निदेशक (योजना), डॉ ताबा हेली, उप निदेशक (मिशन) और डॉ बिस्वकर्मा, एसवीओ, और निदेशालय के अन्य अधिकारियों द्वारा राज्य की देशी पशुधन और कुक्कुट आबादी के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करने के लिए, आभारी हैं एवं उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

संदर्भ

20 वीं पशुधनगणना, पशुपालन, डेरी एवं मत्स्य पालन विभाग, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय, भारत सरकार।

टायो टी, कंवाट एम, लोंग्जाम एन और महंत पी (2018) चुंगरुंग-मिड्डू मवेशी संकर: अरुणाचल प्रदेश की मिश्मी जनजाति के लिए एक वरदान। इंडियन जर्नल ऑफ हिल फार्मिंग। 31 (2) 319-322.

पशुधन का गुण निर्धारण, पंजीकरण तथा दस्तावेजीकरण- एक आवश्यकता

नरेश कुमार वर्मा

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

भारत कृषि प्रधान देश है तथा पशुधन क्षेत्र भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग है। यह क्षेत्र 4.11 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद और कुल कृषि सकल घरेलू उत्पाद में 25.6 प्रतिशत योगदान देता है। ग्रामीण आबादी की आजीविका मुख्यतः कृषि व् इससे जुड़े व्यवसायों पर आधारित रहती है। लगभग 20 मिलियन लोग अपनी आजीविका के लिए पशुधन पर निर्भर रहते हैं। पशुधन छोटे, बड़े व् सीमांत किसानों और भूमिहीन मजदूर की आय वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सामान्य रूप से और विशेष रूप से कृषि अर्थव्यवस्था में तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान देता है। यह पुरुष और महिला दोनों को, चाहे उनकी शैक्षिक स्थिति जैसी भी हो, रोजगार प्रदान करता है। भारत की 8.8 प्रतिशत आबादी पशुधन से अपना रोज़गार लेती है। यह अनुमान है कि लगभग 70 मिलियन ग्रामीण परिवारों में किसी न किसी प्रजाति (गाय, भैंस भेड़, बकरी, ऊँट, सूअर और मुर्गी) के पशुधन रखे जाते हैं। देश में पशुधन क्षेत्र में लगे हुए कर्मियों की संख्या लगभग 69% है। कई सम्पन्न परिवारों में एक से अधिक प्रजाति के जानवर रखने का भी प्रचलन रहता है। पंजीकृत नस्लों के पशु रखने से किसान की आय में अधिकाधिक वृद्धि के आसार रहते है। वैसे भी आई पी आर के इस युग में अपनी पशु सम्पदा को संभाल कर रखने तथा उस पर अपना पैतृक अधिकार जताने के लिए नस्लों का पंजीकरण आवश्यक है। नस्लों के पंजीकरण के लिए उनकी उत्पति का इतिहास जानना, आबादी तथा वितरण को जानना,उनके विशेष गुणों को निर्धारित करना और उसी प्रजाति की अन्य नस्लों से समानता तथा भेद को जानना आवश्यक हो जाता है

पशुधन का गुण निर्धारण

पशुधन आबादी के भौगोलिक वितरण पर व्यापक जानकारी न होने के कारण, बहुत सी आबादी वर्णित नही हो पाई है, ऐसी ही आबादी किसी नई नस्ल की पहचान के लिए स्टॉक सामग्री बनाती है। गुण निर्धारण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विभिन्न पहलुओं जैसे लुक, फीचर्स, आयाम, प्रकृति, व्यवहार या समूह के विशेष गुणों को जानने के लिए होती है। किसी व्यक्ति या समूह तक सीमित गुणवत्ता को उसके विशिष्ट गुण के रूप में जाना जाता है। विशेषता के आधार पर लक्षण वर्णन के कई तरीके हो सकते हैं। पशुधन क्षेत्र में लक्षण वर्णन या गुण निर्धारण बाह्य गुणों (फेनोटाइपिक) और आनुवंशिक (जीनोटाइपिक) स्तर पर किया जाता है। बाह्य गुणों में जानवर की त्वचा का रंग, चेहरे का आकार व् लम्बाई, कान, सींग, पूंछ की लम्बाई, जानवर की ऊंचाई, लम्बाई, छाती व् पेट की परिधि आदि को आँका जाता है। छोटी प्रजातियों में नर और मादा जानवरों के बच्चों और वयस्कों का वज़न तुला द्वारा आसानी से लिया जा सकता है, लेकिन बड़ी प्रजातियों (गाय, भैंस, ऊँट आदी) में ये आंकलित किया जाता है। फिनोटाइपिक लक्षण वर्णन किसी आनुवंशिक संसाधन की उपयोगिता को इसके मूल वातावरण और उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत व्यवस्थित रूप से प्रलेखित करने का एक अभ्यास है। समान उत्पादन और प्रजनन प्रदर्शन के साथ एक ही प्रकार के जानवरों के वितरण का क्षेत्र, तथा उसके भीतर प्रजनन इसकी 'प्रजनन क्षेत्र' (नेटिव/ब्रीडिंग ट्रैक) को परिभाषित करता है। इनकी संख्या, रख-रखाव पर जानकारी पशुधन रखवाले और पशुपालन अधिकारियों के साथ बातचीत के माध्यम से प्राप्त की जाती है। जब कोई आबादी एक नस्ल होने के लिए सकारात्मक संकेत दिखाती है तो पुष्टिकरण के लिए प्रजनन क्षेत्र में अधिक व् विस्तृत दौरें अधिक मात्रा में जानकारी प्राप्त करने के लिए आयोजित किये जा सकते है। किसी भी तार्किक निष्कर्ष पर पहुचने के लिए मवेशी, भैंस, भेड़, बकरी और शूकर के 3000, घोड़ा और गधा 1200, ऊँट 1200 जानवरों तथा मुर्गी हेतु 3000 पक्षी पर एकत्रित आंकड़े पर्याप्त है। इनके रख-रखाव में इस्तेमाल किये गए स्वदेशी

पारम्परिक ज्ञान (Indian Traditional Knowledge) पर मिली सूचनाएं भी लाभकारी हो सकती हैं।

आनुवंशिकी लक्षण वर्णन करने के लिए, विभिन्न झुंडों / आनुवंशिक पृष्ठभूमि के जानवरों से रक्त के नमूने एकत्र किए जा सकते हैं। एफ.ए.ओ के दिशा निर्देशों के अनुसार प्रति नस्ल / जनसंख्या में 50 जानवरों को आनुवंशिक विविधता का अध्ययन करने के लिए जीनोटाइप करने की आवश्यकता होती है।

आनुवंशिक लक्षण वर्णन के लिए प्रयुक्त आणविक मार्कर

प्रोटीन बहुरूपता पशुधन में प्रयुक्त पहला आणविक मार्कर था। 1970 के दशक के दौरान, रक्त समूह और पशुधन के एलोजाइम प्रणाली (बेकार व अन्य, 1980) के लक्षण वर्णन किए गए। प्रोटीन बहुरूपता का स्तर कम होने के कारण विविधता अध्ययनों में इसकी प्रयोज्यता को सीमित कर दिया गया। पॉलिमरेज़ चेन रिएक्शन (पीसीआर) और अनुक्रमण (सिक्वेंसिंग) तकनीकों के विकास के साथ, डीएनए-आधारित बहुरूपता प्रचलन में आई। इसमें डी-लूप और साइटोक्रोम बी, माइटोकॉन्ड्रियल डीएनए अनुक्रम, वाई क्रोमोसोम विशिष्ट एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता (एसएनपी) और ऑटोसोमल माइक्रोसेटेलाइट, वाई क्रोमोसोम विशिष्ट मार्कर आदि शामिल हैं। वर्तमान में मवेशियों, याक और कुछ हद तक छोटे जुगाली करने वाले जानवरों के अध्ययन के लिए पॉलीमॉर्फ़िक वाई माइक्रोसेटेलाइट मार्कर उपलब्ध हैं। अधिकतर प्रजातियों के लिए बहुत सी संख्यां में ऑटोसोमल माइक्रोसेटेलाइट की पहचान कर ली गई है जिसकी सूची FAO/ISAG द्वारा आनुवंशिक विश्लेषण के लिए सार्वजनिक तौर पर उपलब्ध है। आनुवंशिक मार्करों का उपयोग करते समय यह मान लिया जाता है कि आणविक मार्करों में देखे गए बहुरूपिए तटस्थ हैं तथा आबादी के बीच एलील आवृत्तियों में भिन्नता आबादी के भीतर और बीच आनुवंशिक विविधता के वितरण को दर्शाएगी। ऑटोसोमल माइक्रोसेटेलाइटस का उपयोग किसी आबादी में भिन्नता जानने के लिए, दूसरी आबादियों से इसके आनुवंशिक दूरी / सम्बन्ध और आनुवंशिक स्तर पर मिश्रण जानने के लिए किया जाता है जबकि माइटोकॉन्ड्रियल डीएनए अनुक्रम का उपयोग उनके पालतू होने की प्रक्रिया (Domestication) को जानने के लिए किया जाता है। किसी नस्ल में विविधता के आकलन के लिए अलिल की औसत संख्या, वास्तविक और अपेक्षित हेटरोजग्गोसिटी आम तौर पर गणना किये गए आनुवंशिक पैरामीटर हैं।

घरेलू पशुओं की नस्लों का पंजीकरण

घरेलू पशु विविधता के लिए वर्ल्ड वॉच लिस्ट (तीसरा संस्करण) के अनुसार 30 पालतू प्रजातियों से संबंधित पशुधन की 6300 से अधिक नस्लों के दस्तावेज हैं। इन नस्लों को वर्चस्व और प्राकृतिक और मानव चयन के बाद वर्षों में विकसित किया गया है। भारत की देसी पशुधन आबादी की एक बड़ी संख्या का प्रारुपिक और आनुवंशिक स्तरों पर वर्णित नहीं किया गया है, जिसके कारण नस्लों की वर्तमान संख्या को कम करके आंका जाता है। 'नस्ल' समान लक्षणों वाले पशुओं का एक समूह है जो एक बंद जीन पूल का प्रतिनिधित्व करता है, सामान्य निवास स्थान साझा करता है तथा अपने समान संतान पैदा करता है। एक नस्ल की पहचान करने के लिए, पशुओं के एक समूह के गुणों / लक्षणों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। यदि यह ऊपर लिखे मानदंडों को पूरा करता है, तो नस्ल के रूप में घोषित किया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा पशुधन की भिन्न-भिन्न प्रजातियों को नस्ल के रूप में पंजीकृत करने के लिए राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (NBAGR) को नोडल एजेंसी के रूप

में पहचान की गई है। आबादी दर्ज करने का प्रारूप और प्रक्रिया संस्थान की वेबसाइट (www.nbagr.res.in) पर उपलब्ध है। कोई भी सरकारी या गैर सरकारी संस्थान नस्ल सम्बन्धित सूचनाओं के साथ नस्ल पंजीकरण के लिए राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल को आवेदन भेज सकता है। नस्ल पंजीकरण समिति की बैठक भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के उप महानिदेशक (पशु विज्ञान) की अध्यक्षता में की जाती है। आबादी को नस्ल का दर्जा देने पर इसे एक पंजीकरण संख्या तथा आवेदनकर्ता को प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है। किसी भी प्रजाति की नस्ल का पंजीकरण सूत्र इस प्रकार से है:

पंजीकरण संख्या= INDIA_SPECIES_ABCD_ BREED_XYEFG

जहाँ INDIA- देश का नाम, SPECIES- प्रजाति का नाम, AB&CD –राज्यों के कोड, Breed- नस्ल का नाम, XY- प्रजाति का कोड तथा EFG- नस्ल का कोड है।

अब तक, देश की विभिन्न प्रजातियों से जुड़ी 197 देशी पशुओं की नस्लों को पंजीकृत किया गया है, जिसमें 50 मवेशियों, 17 भैंस, 34 बकरी, 44 भेड़, 7 घोड़े और टट्टू, 9 ऊंट, 10 शूकर, 3 गधा, 1 याक, 19 चिकन, 2 बत्तख और 1 गीज़ की नस्लें शामिल हैं।

दस्तावेज़ीकरण

दस्तावेज़ीकरण, कागज़ात या ऑनलाइन या डिजिटल या एनालॉग मीडिया पर दिए गए दस्तावेज़ों जैसे ऑडियो टेप या सीडी, का एक सेट है।, उपयोगकर्ता मार्गदर्शक, श्वेत पत्र, ऑन-लाइन मदद, त्वरित-संदर्भ मार्गदर्शक इसके अन्य उदाहरण हैं। प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ, कागज (हार्ड-कॉपी) प्रलेखन धीरे-2 कम होता जा रहा है यहां तक कि पुराने दस्तावेजों को बैकअप के रूप में या लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए डिजिटल रूप (सॉफ्ट कॉपी) में परिवर्तित किया जा रहा है जिसे जरूरत पड़ने पर आसानी से हार्ड-कॉपी में रूपांतरित किया जा सकता है। इसलिए ये दस्तावेज़ रिकॉर्ड के रूप में भी काम करते हैं। IPR के इस युग में प्रलेखन अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। समय पर प्रलेखन की कमी के कारण भारत को नीम तथा हल्दी जैसे उत्पादों को भारतीय मूल का सिद्ध करने के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी। भारत सरकार को बासमती चावल गुणों के पेटेंट का दावा करने के लिए अमेरिकी पेटेंट और ट्रेडमार्क कार्यालय को वैज्ञानिक साक्ष्य के 50,000 पृष्ठ दर्ज करने पड़े थे। डा० माशेलकर द्वारा जैव-चोरी के खिलाफ भारत के स्वदेशी ज्ञान की रक्षा के लिए भारत का पहला पारंपरिक डिजिटल ज्ञान पुस्तकालय स्थापित किया गया।

पशुधन क्षेत्र में भी प्रलेखन का अपना महत्व है। अभी भी लगभग 50-60% पशुधन का वर्णन किया जाना बाकी है। इन पशुधन पर कोई ठोस प्रकाशित जानकारी उपलब्ध नहीं है। इसी उदेश्य को लेकर भारत सरकार ने देश की सभी मौजूदा नस्लों / आबादी का वर्णन, संरक्षण और दस्तावेज़ स्थापित करने की जिमेदारी भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल को दी है। संस्थान इस लक्ष्य को प्राप्त करने के अपने प्रयासों में काफी हद तक सफल रहा है और आने वाले वर्षों में मिशन को पूरा

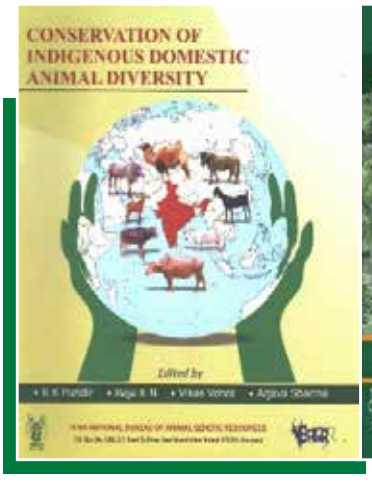

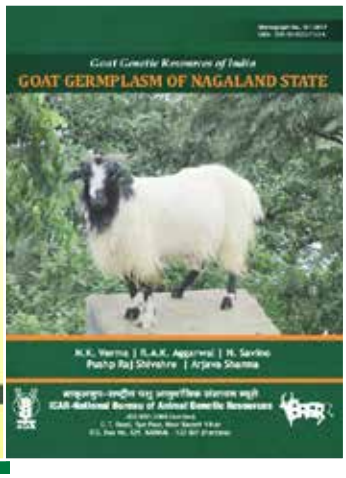

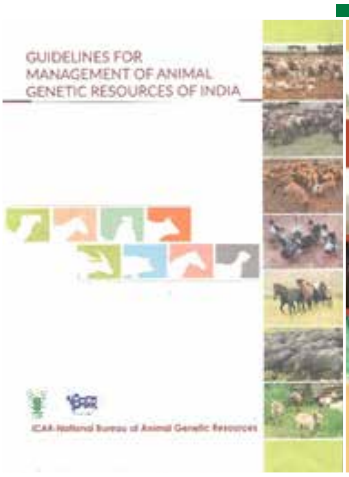

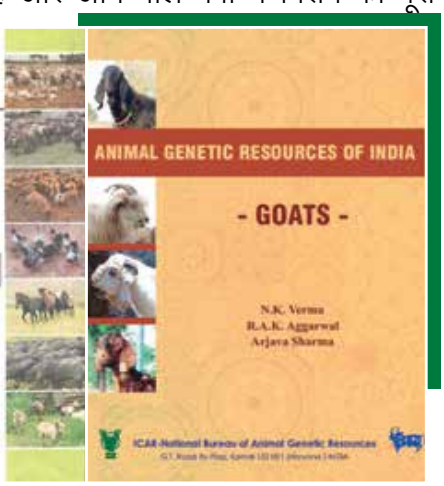

करने के लिए और अधिक प्रयत्नशील हैं। ब्यूरो वैज्ञानिको द्वारा विशेष गुणों वाली नस्लों पर तकनीकी मैनुअल, ब्रीड कैलेंडर्स, ब्रीड मोनोग्राफ, बुलेटिन, लीफलेट इत्यादि के रूप में प्रलेखित किया गया है। संस्थान द्वारा प्रकाशित किए ऐसे दस्तावेजों की संख्या 124 हैं और आने वाले दिनों में और भी दस्तावेज इसमें जुड़ने वाले हैं। संस्थान द्वारा प्रकाशित दस्तावेजों का विवरण संस्थान की वेब साइट www.nbgr.res.in से प्राप्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ

Schearf, B. (ed.) World Watch List for Domestic Animal Diversity. FAO 2003.

Baker, C. M. A and C. Manwell 1980. Chemical classification of cattle. I. Breed group. Animal Blood Groups and Biochemical Genetics 11, 127-150.

Hanotte et al. 2000. Geographic distribution and frequency of a taurineBostaurus and an indicineBosindicus Y specific allele amongst sub-Saharan Africa cattle breeds. Molecular Ecology 9, 387-396.

Petit, E. et al. 2002. Mammalian population genetics. Why not Y. Trends in Ecology and Evolution 17, 28- 33.

NBAGR Annual Report, 2019

NBAGR web site WWW:nbagr.res.in

पांचाली भेंड : भारत वर्ष की एक बहुउद्देशीय देशी नस्ल

अनिल कुमार मिश्र[1] एवं गोपाल गोवने[2]

[1]भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन, ब्यूरो, करनाल - 132001

[2]भाकृअनुप – राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल - 132001

भारत वर्ष में पायी जाने वाली कुल भेंडो की संख्या 74.26 मिलियन है जोकि कुल पालतू पशुओं की संख्या का 12.71% है। भेंडो की संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। देश में पायी जाने वाली कुल भेंडो में से अब-तक 44 नस्लें पंजीकृत की जा चुकी हैं एवं पांचाली भारत की 39वीं पंजीकृत नस्ल है, जिसकी पंजीकरण संख्या INDIA _SHEEP_0400_PANCHALI_1403 है। इसे नई नस्ल के रूप में सितंबर 2018 में मान्यता प्रदान की गयी थी।

वितरण

इसका "पांचाली" नाम गुजरात के पांचाल क्षेत्र के नाम पर जाना जाता है। यह नस्ल गुजरात राज्य के सुरेन्द्र नगर, राजकोट, बोटाड, भावनगर एवं कच्छ जिले में वितरित है जोकि इस नस्ल का प्रजनन क्षेत्र है। यह क्षेत्र महाभारत के राजा द्रुपद, जोकि पांचाली /द्रौपदी के पिता थे के नाम पर जाना जाता है। इसे दुम्मा, दूमा, बराइया, पांचाली-दुम्मा, दुमी देशी आदि नामों से भी जाना जाता है।

शारीरिक विशेषताएँ

यह बड़े आकार की भेंड है, इसके शरीर का रंग सफ़ेद होता है एवं इसके चेहरे एवं सिर का रंग हल्का – भूरा, भूरा, काला-भूरा या काला होता है जोकि कुछ भेंडों में गर्दन के निचले हिस्से या पूरी गर्दन एवं अगले एवं पिछले पैर के निचले हिस्से तक फैला होता है। नर एवं मादा दोनों सींग रहित होते हैं। चेहरा उभार (उत्तल) लिए होता है। कान लंबे एवं पत्तीनुमा लटकते हुए होते हैं एवं पूंछ लंबी होती है। थन पूर्ण विकसित होता है। इसकी ऊन मोटी एवं गलीचे के प्रकार की होती है, लेकिन चेहरा, सिर एवं पेट ऊन रहित होते हैं। कुछ भेंडों में कान के ऊपर बालों का का गुच्छा पाया जाता है, जिसे स्थानीय भाषा में "पोप्टा" के नाम से जाना जाता है। मूलतः पांचाली भेंड "मोटी पूंछ" वाली भेंड के अंतर्गत मानी जाती है, इसीलिए इसे प्रजनन क्षेत्र में दुमी भी कहा जाता है, क्योंकि इसकी पूंछ की मोटाई मूलाधार पर अधिक (लगभग 24 सेमी.) होती है।

पांचाली भेंड

पांचाली मेढ़ा (नर)

प्रबंधन

इसे मुख्य रूप से राज्य के ख़ानाबदोश घुमंतू समुदाय रबारी एवं भारवाड़ समुदाय द्वारा पीढ़ियों से पाला जा रहा है। ये पांचाली भेंड को घुमंतू प्रकार की चराई व्यवस्था में पालते हैं। सामान्यतः ये समुदाय वर्ष के 8-10 महीने भेंड के साथ ही चारे – दाने की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर निष्क्रमण पर रहते हैं। केवल मानसून के 2 से 4 माह के दौरान अपने मूल निवास स्थान पर वापस आते हैं। निष्क्रमण के दौरान ये मुख्यतः खेड़ा, नाड़ियाद, आणंद, अहमदाबाद एवं बड़ोदरा जिलों के आस –पास रहते हैं। रबारी समुदाय काले या कालापन लिए हुए भूरे रंग के चेहरे वाली भेंडों को पालना पसंद करते हैं, जबकि भारवाड़ समुदाय भूरे एवं हल्के भूरे रंग की भेंडों को पालन पसंद करते हैं। पांचाली भेंड निष्क्रमण हेतु अभ्यस्त है। इनके निष्क्रमण के निम्न 3 तरीके प्रचलित हैं :

1. विशेष निर्धारित गाँव निष्क्रमण: वर्ष के 8 से 10 महीने का निष्क्रमण।
2. अर्ध - विशेष निर्धारित गाँव निष्क्रमण: 4-5 महीने मध्य गुजरात के विभिन्न स्थानों पर लगातार निष्क्रमण।
3. मध्य गुजरात में विभिन्न स्थानों पर 8 -10 महीने का निष्क्रमण।

औसतन भेंड पालक एक रेवड़ में एक प्रजनक नर रखते हैं। नर, मादा रेवड़ के साथ ही रहता है, लेकिन भेंडपालक प्रजनन निश्चित समय (अप्रैल–मई) में ही कराते हैं। भेंड पालक प्रजनक नर का चयन शरीर के आकार, रंग एवं माँ के दुग्ध उत्पादन के आधार पर करते हैं। रबारी समुदाय के भेंड पालक काले एवं काले –भूरे रंग के

पांचाली भेंड पालक मेमनें के साथ

मुँह एवं भारवाड़ समुदाय के किसान भूरे एवं हल्के भूरे रंग के मुँह वाले नर को प्रजनन हेतु प्राथमिकता देते हैं। प्रजनक नर को रेवड़ में 2-3 वर्षों तक ही प्रयोग करते हैं। नर 12 से 15 माह की उम्र तक प्रजनन योग्य हो जाते हैं एवं मादा 12 से 15 माह में गर्भधान के लिए तैयार हो जाती है।

उपयोगिता

पांचाली भेंड बहु उद्देस्शीय नस्ल है जोकि दूध, मांस एवं ऊन के लिए पाली जाती है। निष्क्रमण के दौरान भेंड पालक किसानों के खेतों में भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने हेतु रात को बैठाकर भी आमदनी प्राप्त करते हैं। पांचाली भेंडों का दुग्ध उत्पादन लगभग 0.5 से 1.2 किग्रा प्रतिदिन तक होता है। इसके मेमनों का वजन 3 से 4 माह की उम्र तक 18 से 20 किग्रा तक होता है एवं इस अवस्था के नर मेमनों को बेचकर भेंड पालक आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। इनके वयस्क नर का शरीर भार 53 से 82 एवं मादा का लगभग 32 से 73 किग्रा. होता है। इनकी लगभग 16% मादाएँ जुड़वाँ बच्चे पैदा

करती हैं। इनके मेमनों का जन्म के समय औसत वजन लगभग 3.5 से 4 किग्रा तक होता है। वयस्क नर की औसत शरीर की ऊंचाई एवं लंबाई लगभग 84 एवं 81 सेमी. होती है, जबकि मादा की क्रमश: 76 एवं 75 सेमी. होती है। मई 2018 में किए गए एक सर्वेक्षण के दौरान अध्ययन किए गए विभिन्न शारीरिक मापों (6 नर एवं 14 मादा) का औसत तालिका -1 में दर्शाया गया है। ऊन की कटाई वर्ष में दो बार (जून –जुलाई एवं जनवरी – फरवरी) में की जाती है एवं औसत ऊन उत्पादन लगभग 1 किग्रा. प्रति भेंड होता है।

तालिका 1. वयस्क पांचाली भेंड की शारीरिक माप (सेमी.)

लक्षण	लंबाई	ऊँचाई	ह्रत घेरा	पेट परिधि	चेहरा लंबाई	चेहरा चौड़ाई	कान लंबाई	पूंछ लंबाई	पूंछ चौड़ाई (आधार पर)
औसत	73.05 ± 1.46	78.40 ± 1.42	100.45 ± 1.67	110.65 ± 1.57	28.90 ± 0.52	14.85 ± 0.24	25.00 ± 0.32	41.80 ±1.35	24.10 ± 1.02
लिंग	**	**	**	*	**	**	असा	**	असा
नर	79.50 ± 1.38	84.33 ± 1.75	107.17 ± 2.39	114.83 ± 1.89	30.67 ± 0.76	16.17 ± 0.31	24.40 ± 0.93	48.33 ± 1.75	25.33 ± 1.63
मादा	70.29 ± 1.47	73.00 ± 0.87	97.57 ± 1.65	108.86 ± 1.94	28.14 ± 0.57	14.29 ± 0.16	25.21 ± 0.28	39.00 ± 1.14	23.57 ± 1.30
विस्तार									
नर	75 – 84	78 – 90	99-115	108 – 120	29 – 34	15 – 17	22 – 27	40 – 52	20 – 30
मादा	61 – 81	68 – 78	87 – 107	97 – 117	24 – 32	13 – 15	24 – 27	29 – 47	16 – 31

निष्कर्ष

पांचाली भारत वर्ष की एक बहुउद्देशीय भेंड नस्ल है, जिसे मुख्यतः मांस एवं दुग्ध उत्पादन हेतु, गुजरात राज्य के पांचाल क्षेत्र में पाला जाता है। यह बड़े शरीर आकार एवं लंबे पैरों वाली नस्ल है एवं निष्क्रमण हेतु सर्वोत्तम है। शरीर का रंग सफ़ेद होता है एवं इसके चेहरे एवं सिर का रंग हल्का – भूरा, भूरा, काला-भूरा या काला होता है जोकि कुछ भेंडों में गर्दन के निचले हिस्से या पूरी गर्दन एवं अगले एवं पिछले पैर के निचले हिस्से तक फैला होता है।

आभार

लेखक गण सहजीवन, ट्रस्ट भुज (कच्छ) गुजरात के आभारी हैं, जिन्होने मई 2018 में सर्वेक्षण के दौरान पर्याप्त सहयोग प्रदान किया एवं उनके किए गये प्रयासों से यह नस्ल पंजीकृत हो सकी। हम उन सभी भेंड पालकों का भी आभार व्यक्त कराते हैं, जो वर्षों से इस महत्वपूर्ण भेंड को पालते आ रहें हैं एवं जिन्होंने सर्वेक्षण के दौरान पर्याप्त सहयोग प्रदान किया एवं पांचाली नस्ल से संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान कीं।

अविकालीन भेंड़ - ऊन व मांस उत्पादन की अपार संभावनाएं

राजीव कुमार, अरूण कुमार, एस एस मिश्रा एवं चंद्रप्रकाश स्वर्णकार

भाकृअनुप - केन्द्रीय भेंड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, मालपुरा - 304501

भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर लगातार बढ़ती जा रही है जिससे कृषि जोत का आकार धीरे-धीरे कम हो रहा है । इसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि जनित आय पर निर्भरता कम करने की आवश्यकता आ गई है । ऐसे समय में पशुपालन पर निर्भरता बढ़ती जा रही है । भेंड़ पालन शुरू से ही अन्य व्यवसायों की अपेक्षा कम जोखिम भरा रहा है । भेंड़ पालन ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन एवं कम जोत वाले किसानों की आय वृद्धि का प्रमुख स्त्रोत बनता जा रहा है। खासकर प्राकृतिक संसाधनों की कमी वाले प्रदेशों में भेंड़ पालन का प्रचलन बढ़ रहा है । एक वर्ष से कम समय में ही भेंड़ पालन एक अच्छी आय का साधन बन सकता है तथा इसमें खर्चा भी कम आता है । हमारे देश में लगभग 726 लाख भेंड़ें है, जिसमें से 44 नस्लें विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पाई जाती हैं । भेंड़ों से प्रतिवर्ष मांस के अतिरिक्त लगभग 42-45 मिलियन किग्रा ऊन भी प्राप्त होती है । भेंड़ देश के प्रतिकूल जलवायु एवं विषम परिस्थितियों में रहने के लिए सक्षम हैं । केन्द्रीय भेंड़ एवं ऊन अंनुसंधान संस्थान, अविकानगर जो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली का एक मुख्य संस्थान है, जिसकी स्थापना सन् 1962 में देश में भेंड़ पालन पर बुनियादी अनुसंधान के लिए की गयी थी, पिछले कुछ वर्षो में मांस व ऊन उत्पादन की जरूरतों को देखते हुए संकर भेंड़ों को विकसित किया गया है, जैसे कि अविमांस, अविवस्त्र, अविकालीन, भारत मेरिनों, भारत काराकुल, अविशान आदि ।

अविकालीन एक संकर भेंड़ है जिसका विकास स्थानीय मालपुरा भेंड़ के साथ विदेशी नस्ल की रैम्बुले भेंड़ के मिलान से किया गया है । मालपुरा भेंड़ एक मोटी ऊन देने वाली भेंड़ है, जबकि रैम्बुले एक उच्च गुणवत्ता की सूक्ष्म तंतु ऊन देने वाली भेंड़ है । इस विदेशी नस्ल का आयात अमेरिका के टेक्सास प्रांत से किया गया था । अविकालीन भेंड़ का विकास सन् 1964 में किया गया । सन् 1975 के शुरूआत में इस संकर भेंड़ों के समूह की संख्या को बढ़ाया गया तथा अविकालीन भेंड़ का विकास एक समूह के रूप में किया गया जिसमें लगभग 250 प्रजनन योग्य मादाओं का चयन प्रारंभिक स्तर पर किया गया व पीढ़ी दर पीढ़ी इण्टर से मेंटिंग से इसकी संख्या को बढ़ाया गया जिसमें नर एंव मादा भेंड़ों का अनुपात लगभग 1:25 रखा गया था । सन् 1977 में इस नस्ल को दो किलो तक कालीन उच्च गुणवत्ता वाले ऊन उत्पादन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विकसित किया गया । आर्दश कालीन ऊन तंतु का व्यास 30-36 माइक्रोन एवं तीस-चलीस प्रतिशत मेडुलेशण होना चाहिए । धीरे-धीरे इस नस्ल का विकास अन्य उद्देश्यों जैसे कालीन ऊन के साथ-साथ मांस उत्पादन के लिए इसकी आनुवंशिक क्षमता का आंकलन, 90 प्रतिशत से अधिक मेमना जनने की क्षमता एवं 95 प्रतिशत से अधिक उत्तरजीविता प्राप्त करने के लिये किया गया । अविकालीन भेंड़ जिसमें 50 प्रतिशत मालपुरा एवं 50 प्रतिशत रैम्बुले वंशागत हैं, इसका सतत् मूल्याकंन पिछले चार दशकों से विभिन्न अनुसंधान परियोजनाओं के माध्यम से किया गया है । इन परियोजनाओं में भेंड़ों का चयन छः एवं बारह महीने के शारीरिक वजन के आधार पर किया गया इसमें पहले छः माह की भेंड़ों को उनके अपने वृद्धि एवं ऊन उत्पादन क्षमताओं के आधार पर प्रजनन के लिए उत्कृष्ट नर एवं मादा भेंड़ों का चयन किया गया। अविकालीन भेंड़ के बच्चों को पूर्ण रूप से मॉ के दूध पर 15 दिनों तक रखा जाता है तथा 15 दिनों की उम्र से लेकर 90 दिनों तक मॉ के दूध के साथ-साथ पूरक आहार के रूप में अनाज का मिश्रण (लैम्ब आहार) दिया जाता है । लगभग तीन सप्ताह की आयु के मेमनों को सुबह और शाम चरने के लिए भेजा जाता है । लगभग 3 महीने बाद की अवधि वाले मेमनों को 4-5 घंटे की चराई और सूखे चारे की खुराक के साथ-साथ 300-400 ग्राम अनाज मिश्रण भी दिया जाता है ।

भारत देश में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियॉ पाई जाती है । राजस्थान एक गर्म एवं शुष्क क्षेत्र है । अविकालीन भेंड़ यहाँ कि जलवायु में अच्छा प्रर्दशन

कर रही है। इस क्षेत्र में छः महीने उम्र की अविकालीन भेंड़ का औसत शरीर भार 30 किग्रा पाया गया है तथा कुछ मेंमनों का छः मासिक वजन 45 किग्रा तक दर्ज किया गया जो कि अविकालीन भेंड़ों के वजन वृद्धि क्षमता को दर्शाता है। प्रजनन क्षमता मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है, कि अविकालीन को मुख्य रूप से वर्ष में दो बार प्रजनन के लिए तैयार किया जा सकता है। मुख्य प्रजनन समय अगस्त से सितम्बर माह होता है एवं दूसरा अल्प प्रजनन समय मार्च से अप्रेल माह होता हैं। पर्याप्त संसाधन होने पर भेंड़ पालन करने वाले चाहें तो साल भर प्रजनन करा सकते है जिससे कि दैनिक जरूरतों की पूर्ति के लिए मेमना बिक्री की उपलब्धता साल भर बनी रहे।

अनुसंधान प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि दो सीजन प्रजनन विधि का पालन कर तथा मादा भेंड़ो की फलशिंग विधि से मेमना जनने की दर में सुधार किया जा सकता है। पहली बार गर्भ धारण करने वाली मादा में फलशिंग विधि से जल्दी एवं कम से कम आयु में गर्भ धारण करने की क्षमता में सुधार देखा गया है। पहले ब्यांत पर मादा की औसत आयु 600 सौ दिन होती है। अविकालीन पिछले चालीस वर्षो से भी ज्यादा समय से अर्ध-शुष्क क्षेत्र में सफलतापूर्वक पाली जा रही हैं तथा यह भेंड़ इस क्षेत्र में अच्छी तरह से अनुकूलित हो गई हैं। इसका तीन माह की आयु तक 98 प्रतिशत तक जीवित रहना अभिलिखित किया जा चुका है एवं वयस्क अविकालीन भेंड़ों की बचने की संभावना 95 से 99 प्रतिशत तक देखी गयी है।

अविकालीन भेंड़ की उत्पादन क्षमताओं का ठंडे जलवायु में मूल्यांकन करने के लिए सी. एस. डब्लू. आर. आई. के दक्षिणी क्षेत्रीय अंनुसंधान केंद्र, मन्नावनूर, तमिलनाडु (जो कि कोडईकनाल से लगभग 35 किलो मीटर दूरी पर स्थित है) में सन् 2016 में एक इकाई भेजी गई थी। यह क्षेत्र-समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र है। पिछले चार वर्षो के अध्ययन से पता चला है कि अविकालीन भेंड़ ठंडे क्षेत्रों के लिए भी अनुकूल है। इसका वहाँ पर जन्म भार 3.15 किग्रा तथा 12

महीने की आयु का शरीर भार लगभग 35 किग्रा तक देखा गया है अतः अविकालीन भेंड़ अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों के अलावा उप-समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र में भी अच्छी वृद्धि दर प्राप्त कर लेती है। विगत कुछ वर्षो में अविकालीन भेंड़ के शरीर वजन वृद्धि में लगातार सुधार देखा जा रहा है जो कि इसके अधिक मांस पैदा करने की क्षमता को दर्शाता है।

अविकालीन भेंड़ की मांग तामिलनाडु एवं कर्नाटक राज्यों मे बढ़ रही है। जहां इसका उपयोग मांस उत्पादन बढ़ानें के लिए अविकालीन मेंढों को स्थानीय पाये जाने वाली भेंड़ों से प्रजनन करवाने के लिए किया जा रहा है। अविकालीन भेंड़ मांस के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता वाली कालीन ऊन उत्पादन में भी सहायक सिद्ध होगी। अविकालीन भेंड़ से प्राप्त ऊन की प्रसंस्करण एवं फेल्टींग परीक्षण परिणामों से यह देखा गया है कि इसका ऊन उत्कृष्ट कालीन गुणों वाली है जो कि ऊनी वस्त्र एवं हाथ कालीन दोनों के लिए उपयुक्त है। अविकानगर व मन्नावनूर, तमिलनाडु दोनों ही क्षेत्रों में इसकी ऊन की व्यास 30-32 माईक्रोन पायी गई है।

सघन एवं कालीन निर्माण के लिए उपयुक्त ऊन उत्पादन क्षमताओं की वजह से अविकालीन भेंड़ का उपयोग देश के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली मोटी ऊन पैदा करने वाली देशी नस्ल के भेंड़ों के सुधार के लिए किया जा सकता है। अविकालीन नस्ल की भेंड़ों

तालिका 1. अविकालीन भेंड़ का अर्ध-शुष्क एवं उप-समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र में वजन वृद्धि का तुलनात्मक विशलेषण

जलवायु क्षेत्र	जन्म वजन (किग्रा)	तीन माह वजन (किग्रां)	छः माह वजन (किग्रा)	बारह माह वजन (किग्रा)
अर्धशुष्क जलवायु (अविकानगर, राजस्थान)	3.00	17.12	30.00	37.26
उप-समशीतोष्ण जलवायु (मन्नावनूर, तामिलनाडु)	3.15	19.35	29.00	35.00

तालिका 2. अविकालीन भेंड़ का अर्ध-शुष्क एवं उप-समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र में वयस्क भेंड़ से प्राप्त ऊन की गुणवत्ता का तुलनात्मक विवरण

जलवायु क्षेत्र	प्रति वर्ष औसत प्राप्त ऊन	ऊन तन्तु व्यास	ऊन तन्तु लम्बाई	मेडुलेशन प्रतिशत
अर्धशुष्क जलवायु (राजस्थान)	1.80 किग्रा	35.78 माइक्रोन	5.44 सेंमी	36.19
उप समशीतोष्ण जलवायु (तमिलनाडु)	2.07 किग्रा	32.47 माईक्रोन	6.20 सेंमी	40.42

तालिका 3. अविकालीन भेंड़ का अर्द्ध-शुष्क एवं उप-समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्र में जीवित रहने की क्षमता का तुलनात्मक विवरण

जलवायु क्षेत्र	वार्षिक टपिंग	मेमना जन्मदर
अर्धशुष्क जलवायु (अविकानगर, राजस्थान)	98 प्रतिशत	91.38 प्रतिशत
उप-समशीतोष्ण जलवायु (मन्नावनूर, तामिलनाडु)	97 प्रतिशत	94.12 प्रतिशत

के जीवित रहने की क्षमता लगभग 95 प्रतिशत पायी गई है जो यह दर्शाता है कि इसमें बीमारियॉ भी प्रायः नहीं होती है। केन्द्रीय भेंड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर मे अविकालीन भेंड़ की हैमोन्कस कान्ट्रॉटस नेमाटोड प्रतिरोधी भेंड़ के रूप में चयनित प्रजनन किया जा रहा हैं जो कि कृमिनाशक दवाओं के बिना भी अच्छी उत्पादन दे सकती हैं।

अविकालीन भेंड़ एक संकर है जिसमें रैम्बुले एवं मालपुरा भेंड़ का गुणसूत्र समाहित है। शारीरिक रचना एवं बनावट में यह मालपुरा भेंड़ से भिन्न दिखती है। अविकालीन भेंड़ का रंग उजला सफेद होता है। मुख्य रूप से इसमें ऊन अधिक सघन होती है कान खड़े एवं मध्यम आकार के होते हैं। अधिकतर भेंड़ों में खुर सफेद रगं के होते हैं। मादायें हमेशा बिना सींग की होती हैं लेकिन अविकालीन नर सींग एवं बिना सींग दोनों प्रकार के होते हैं। पूँछ ज्यादातर लम्बी होती है। अविकालीन भेंड़ के दूध देने की क्षमता का आँकलन जारी है। सामान्यतः भेंड़ का दूध मीठा और रूचिकर स्वाद वाला होता है, जो अन्य दुधारू मवेशियों की तुलना में अधिक ऊर्जा प्रदान करता है। भेंड़ के दूध में छोटे और मध्यम श्रृखला वाली वसा की प्रचुरता होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक सुपाच्य माना गया हैं। भारतीय नस्ल की भेंड़ प्रतिदिन लगभग 250 से 500 ग्राम दूध देती है। गाय एवं बकरी के दूध की अपेक्षा भेंड़ के दूध में वसा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। सही मायने में भेंड़ एक बहुउपयोगी जानवर है, जिससे ऊन, मॉस, दूध, मेगनी, खाल आदि प्राप्त होते हैं। भेंड़ पालन एक चलता फिरता ए.टी.एम. है, जिससे छोटी-छोटी जरूरतों के लिए कभी भी पैसा जोड़ा जा सकता है। जोकि किसानों की आमदनी बढ़ाने में सहायक हो सकती है। अविकालीन भेंड़ का स्वास्थ्य समान्तया अन्य देशी भेंड़ों की तरह ही होता है। संस्थान से अविकालीन भेंड़ देश के विभिन्न राज्यों जैसे हरियाणा, पंजाब, जम्मू व कश्मीर में मांग के आधार पर भेजी गयी हैं। पहाड़ी ठण्डें क्षेत्रों में इसके उत्साह जनक वृद्धि को देखते हुये अविकालीन मेंढों की मांग देश के सुदुर पर्वतीय राज्यों जैसे उत्तराखण्ड एवं हिमाचल प्रदेश से भी आ रही है। अच्छी वृद्धि दर, कम बिमारियाँ एवं गर्म या ठंड़े क्षेत्रों में रहने में निपुणता के कारण अविकालीन भेंड़ सचमुच भविष्य की भेंड़ हैं जिसको आराम से स्टाल फीडिंग अपनाकर पाल सकते है।

मुजफ्फरनगरी भेंड़: उत्तर प्रदेश का गौरव

गोपाल दास, नितिका शर्मा, विनय चतुर्वेदी एवं अनुपम कृष्ण दीक्षित

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान मखदूम, फरह-मथुरा - 281122

भारत में भेंड़ माँस उत्पादन के लिये उपयुक्त पशु है क्योंकि यह अन्य पशु प्रजातियों से सबसे न्यून गुणवत्ता वाले पोषण पर सफलतापूर्वक पाली जाती है। भेंड़ पालकों को इस व्यवसाय से निश्चित आय के साथ पारिवारिक माँस तथा कहीं-कहीं दुग्ध की आवश्यकता भी पूर्ण होती है। देश में पाई जाने वाली सभी 44 भेंड़ नस्लें कठिन वातावरणीय परिस्थितियों एवं उचित आहार के अभाव में भी सराहनीय उत्पादन देती हैं। भेंड़ पालन का एक महत्व यह भी है कि यह मानव खाध पदार्थों पर निर्भर न रह कर मानव उपयोगी उत्पादन करती हैं। भेंड़ पालन छोटे व सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों एवं ग्रामीण महिलाओं के लिए जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन होने के साथ-साथ रोजगार के अवसर भी प्रदान करता है। भेंड़ पालन को अपनाकर वे अपनी आर्थिक स्थिति को काफी हद तक सुधार सकते हैं। भेंड़- पालन से निम्न लाभ हैं:

- भेंड़ एक बहुपयोगी पशु है इससे माँस, ऊन, दूध, खाल, उर्वरक आदि प्राप्त होते हैं।
- भेंड़ माँस सामान्यतः देश के प्रत्येक क्षेत्र तथा विशेष रूप से ठंडे क्षेत्रों में अन्य मॉस की तुलना में अधिक पंसद किया जाता है।
- कुछ मादा भेंड़ें एक बार में एक से अधिक बच्चे देती हैं।
- भेंड़ पालन विपरीत परिस्थितियों में भी उत्पादन करने में सक्षम है।
- भेंड़ पालन का कार्य कम पूँजी लगाकर शुरू किया जा सकता है तथा यह वर्ष भर परिवार को रोजगार प्रदान करता है। अतः समाज के गरीब समुदाय के लोग इसे आसानी से अपना सकते हैं।

देश की प्रमुख भेंड़ नस्लों में, मुजफ्फरनगरी भेंड़ देश के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र की जानी पहचानी नस्ल है। इसका उद्गम स्थान उत्तर प्रदेश राज्य के मुजफ्फरनगर जिले को माना जाता है। जिसके नाम पर इस नस्ल का नामकरण हुआ है। मुजफ्फरनगरी नस्ल की भेंड़

पश्चिमी उत्तर प्रदेश से लगने वाले राज्य राजस्थान, हरियाणा व दिल्ली में भी पाली जा रही हैं। मुजफ्फरनगरी भेंड़ें मुख्य रूप से मॉस उत्पादन के लिए पाली जाती हैं। मुजफ्फरनगरी बड़े आकार की भेंड़ नस्ल है जिसका पूरा शरीर सफेद होता है। इस नस्ल की भेंड़ों की मुख्य पहचान इनकी लम्बी पूँछ का होना है जो सदैव घुटनों से नीचे तथा 15-20 प्रतिशत भेंड़ों में जमीन को भी छूती है। इनके लम्बे लटके कान, शरीर गढीला तथा सभी जानवर सींग रहित होते हैं। किसान द्वारा इस नस्ल के जानवर प्रायः मांस उत्पादन की दृष्टि से पाले जाते हैं। क्योंकि इनमें ऊन उत्पादन कम तथा गुणवत्ता गलीचा योग्य नहीं होती है, जिससे बाजार में इस प्रकार की ऊन की मांग व कीमत कम प्राप्त होती है।

भेंड़ पालक इस नस्ल के जानवरों को बहुत पसंद करते हैं क्योंकि इन जानवरों के सम्पूर्ण शरीर का रंग सफेद होता है तथा इनकी शारीरिक वृद्धि अन्य नस्लों से अधिक तथा मृत्युदर बहुत कम होती है। इस नस्ल के जानवरों का 6 व 12 माह पर औसत शारीरिक भार क्रमशः 26 व 35 किग्रा होता है तथा वर्ष में एक वयस्क जानवर लगभग 1.3 किग्रा ऊन उत्पादित करता है। इस नस्ल की भेंड़ों के लिए पश्चिमी उत्तर-प्रदेश तथा इसके सीमावर्ती मैदानी क्षेत्रों की जलवायु उत्पादन के लिये उत्तम मानी गयी है। अन्य भेंड़ नस्लों की तुलना में अधिक शारीरिक भार व कम मृत्युदर के कारण किसान इसे पालना पसंद करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में किसान इसे केवल चराई पर ही पालते हैं तथा कुछ साधन सम्पन्न किसान चराई के उपरान्त कुछ पूरक दाना-चारा प्रदान करते हैं। प्रजनन हेतु मेंढ़ों को 1-2 वर्ष रेवड़ में रखने के बाद प्रजनक मेंढ़ों को बदल देते हैं। सामान्यतः पूरे वर्ष प्रजनन व ब्याँत का कार्य चलता है। जिससे किसान औसतन दो वर्ष में तीन मेमनों की फसल प्राप्त कर लेते हैं। अच्छी चराई एवं खिलाई-पिलाई से 15-20 प्रतिशत भेंड़ों से दो बच्चें मिल जाते हैं। मुजफ्फरनगरी नस्ल की शुद्ध भेंड़ें मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, विजनौर, मथुरा, आगरा तथा इनके समीपवर्ती क्षेत्रों में मिलती हैं। इनके अतिरिक्त शुद्ध मुजफ्फरनगरी भेंड़ें केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान मखदूम, फरह, व पं. दीनदयाल विश्वविद्यालय, मथुरा में महत्वपूर्ण परियोजनाओं के अन्तर्गत पाली जा रहीं हैं। केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम में मुजफ्फरनगरी नस्ल की उत्पादन क्षमता एवं इसकी अत्यधिक मांग को देखते हुये इसके आनुवंशिक सुधार एवं संरक्षण हेतु इस नस्ल पर भेंड़ सुधार नेटवर्क परियोजना के अन्तर्गत अनुसंधान कार्य चल रहा है। इस परियोजना में इस नस्ल के उन्नत पशु रियायती किताबी कीमत पर भेंड़ पालकों के लिए नस्ल सुधार हेतु उपलब्ध रहते हैं व प्रतिवर्ष 100-150 उन्नत पशुओं को किसानों, विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से बकरी पालकों को वितरित किये जाते हैं।

एक सफल भेंड़ पालक के लिए आवश्यक है कि वह भेंड़ पालन का उद्देश्य, नस्ल, प्रजनन, आहार, रख-रखाव, स्वास्थ्य व्यवस्था आदि की व्यवहारिक जानकारी प्राप्त कर ले क्योंकि इसके बाद ही वह इस व्यवस्था से अधिक लाभ ले सकता है। इसका अर्थ है कि भेंड़ पालक को अपने उद्देश्य के अनुसार भेंड़ की नस्ल, आवास व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था तथा प्रजनन पर उचित ध्यान देना चाहिए।

आवास व्यवस्था

समय के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी भेंड़ों की आवास व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। पहले सभी भेंड़ पालक भेंड़ों के लिये कोई अलग से आवास व्यवस्था नहीं करते थे, सर्दी के मौसम को छोड़कर प्रायः जानवर जंगल में ही रहते थे केवल मेमनों को घरों में रखा जाता था। अब धीरे-धीरे भेंड़ पालन व्यवसायिक रूप लेता जा रहा है, जिसमें भेंड़ों के बाड़े वैज्ञानिक वातों को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं तथा जानवरों को सभी मौसम (सर्दी, गर्मी, बरसात) में प्रतिकूल परिस्थिति से वचने हेतु अनुकूल आवास व्यवस्था प्रदान की जाती है। वैज्ञानिक विधि से तैयार बाड़े प्रायः अर्ध-खुले होते हैं, जो भेंड़ों का आदर्श आवास माना जाता है। प्रत्येक बाड़े में जानवर बाड़े के ढ़के भाग के अनुसार रखे जाते हैं। एक आदर्श एवं सामान्य बाड़े में 20X60 फीट ढ़का तथा इसका दुगना यानी 40X60 फीट खुला भाग होता है। भेंड़े आवश्यकतानुसार मौसम के अनुसार बाहर भीतर आती जाती रहती हैं। बाड़े के ढ़के भाग की छत प्रायः एसवेस्टस सीट व छप्पर से तैयार करते हैं जो गर्मी व सर्दी दोनों ही मौसम में ठीक रहती है। यदि छत एसवेस्टस की है तो इसके उपर 2-3 इंच मोटा छप्पर डालने से गर्मी व सर्दी में जानवरों को बहुत राहत मिलती है। देश की जलवायु के अनुसार पूर्व-पश्चिम दिशा में बनाया गया बाड़ा उत्तर दक्षिण दिशा वाले बाड़े से अधिक उपयोगी एवं आरामदायक होता है। ढ़के हुए बाड़े की दीवारों को जमीन से लगभग 3.0-3.5 फीट ऊंचाई तक ईटों की बनाकर उस पर 5 फीट उॅंची जाली लगानी चाहिये। ताकि दीवारें बहुत अधिक गर्म एवं सर्द हवाओं से जानवरों को सुरक्षा दे सके। बाड़ों के खुले भाग को चारों तरफ से लगभग 1.0-1.5 फीट ईट की दीवार पर 6.0 फीट जाली होनी चाहिए ताकि कोई भी जंगली जानवर कूदकर इसमें प्रवेश न कर सके। बाड़ों के वीच में खुले स्थान में नीम, पाकड़ बरगद आदि के पेड़ लगाने चाहिए जो गर्मी के मौसम में बाड़ों को ठंड़ा रखने में योगदान दें तथा सर्दी के मौसम में चारे की कमी को भी पूरा करें। मेमनों वाले बाड़े में फर्श पर सूखी घास का बिछौना बनाना लाभदायक रहता है। जिससे मेमनों का सर्दी से बचाव होता है तथा मेमने मिट्टी खाने से दूर रहते हैं।

प्रजनन व्यवस्था

प्रत्येक रेवड़ में नियमित जनन के लिये आवश्यक है कि भेंड़ों का प्रजनन सही आयु एवं शारीरिक भार पर हो। वैसे तो भेंड़े वर्ष के प्रत्येक माह में गर्मी में आती है, लेकिन वातावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भेंड़ों को वर्ष के ऐसे माहों में ग्याभिन कराया जाता है जब इनके मेमने पैदा हों तो न तो अधिक सर्दी हो व न ही अधिक गर्मी हो तथा इनके चरने के लिये चारागाह में पर्याप्त चारा उपलब्ध हो। मुजफ्फरनगरी भेड़ें लगभग 12 माह की आयु पर वयस्क हो जाती हैं। वयस्क होने पर यह भेड़ें प्रत्येक 18-21 दिन के अन्तराल पर गर्मी में आती रहती हैं जब तक कि यह गर्भित नहीं हो जाती। प्रजनन के लिये परम आवश्यक है कि मेढ़ा शुद्व मुजफ्फरनगरी नस्ल का हो जिसकी उम्र लगभग 18 माह हो। इस नस्ल के मेढ़े 18 माह की आयु पर लगभग 45-50 किग्रा शारीरिक भार वाले होते हैं। रेवड़ में एक मेढ़ा 25-30 मादा भेंड़ों के प्रजनन के लिये पर्याप्त रहता है। चूॅंकि यह भेंड़ नस्ल मॉस के लिये उत्तम मानी गयी है इसलिये प्रजनक मेढ़ों का चयन 6 माह की आयु पर केवल शारीरिक भार के आधार पर ही किया जाता है। रेवड़ में पैदा हुए मेमनों में 50 प्रतिशत योगदान केवल एक मेढ़ा का होता है इसलिये इसके चयन में सावधानी रखनी पड़ती है। प्रत्येक मेंढ़े का एक रेवड़ में 1.5-2.0 वर्ष प्रयोग करने के वाद इसको बदलना आवश्यक है नहीं तो रेवड़ में सगे सम्बन्धियों में प्रजनन का खतरा पैदा हो जाता है जिसे अन्तः प्रजनन कहा जाता है। रेवड़ में अन्तः प्रजनन होने से उत्पादन एवं जनन गुणों में महत्वपूर्ण रूप से गिरावट आती है।

मेमनों की देखभाल

मेमनों की देखभाल उनके पैदा होने से 15-20 दिन पूर्व ही शुरू हो जाती है। ऐसी भेंड़ें जिनके प्रसव के 15-20 दिन शेष होते हैं उन्हें लम्बी दूरी के लिये चरने नहीं भेजा जाता, केवल व्यायाम के उद्देश्य से बाड़ों के आसपास घुमाया जाता है। मेमना पैदा होने पर सर्वप्रथम उसे सूखे कपड़े से साफ करना चाहिये जिससे वह ठीक प्रकार सांस ले सके। मेमने की नाल को शरीर से 5-6 सेमी दूरी से किसी तेज चाकू/ नये व्लेड से काटें तथा कटे स्थान पर टिंचर आयोडीन लगाायें तथा कटे स्थान से 2-3 सेमी की दूरी पर शरीर की तरफ धागे से बॉधना चाहिये जिससे किसी प्रकार का इन्फेक्सन न हो। मेमना पैदा होते ही इन्हें मॉ का प्रथम दूध/ खीस पर्याप्त मात्रा में पिलाना चाहिये। खीस पिलाने में देरी नहीं होनी चाहिये क्योंकि देरी होने से खीस की गुणवत्ता कम हो जाती है। जिस बाड़े में बच्चे रखने हों उस वाडे की लगभग 6 इंच मिट्टी खोदकर फेंके तथा साफ मिट्टी डाले और उसमें कृमिनाशक पाउडर तथा चूना मिला लें। मौसम के अनुसार मेमनों को गर्म व सर्द हवाओं से बचाव हेतु आवास प्रदान करें तथा सर्दियों में फर्श पर विछावन व छत के उपर भीषण गर्मी के प्रभाव को कम करने के लिये छप्पर की व्यवस्था होनी चाहिये। मेमनों में अन्तः परजीवी की रोकथाम के लिये डिवर्मिंग व वाहयः परजीवी समाप्त करने के लिये डिपिंग का प्रयोग करें। मेमनों को प्रथम 15 दिन केवल मॉ के दूध पर रखते हैं। 15 दिन के वाद मॉ का दूध पिलाने के साथ-साथ कुछ हरी मुलायम पत्तियॉ व भूसा देना शुरू करते हैं। मुजफ्फरनगरी मेंमनों को 2 महीने तक मॉ का दूध पिलाया जाता हैं तथा तीन महीने तक क्रीप मिश्रण/पिसा दाना दिया जाता है, जिसमें पाच्य प्रोटीन की मात्रा 16-18 प्रतिशत, कुल पाच्य पोषक तत्व 70-72 प्रतिशत तथा खनिज मिश्रण व मिटामिन की उचित मात्रा होती है।

आहार व्यवस्था

प्रत्येक पशु को स्वस्थ रखने तथा उससे अधिक उत्पादन लेने के लिये उसकी उचित आहार व्यवस्था आवश्यक है। पशु का आहार पूर्ण न होने पर इसका प्रतिकूल प्रभाव उत्पादन एवं जनन गुणों पर पड़ता है। भेंड़ अपने शरीर भार का 3-4 प्रतिशत तक सूखा पदार्थ प्रतिदिन खा सकती है, जिसकी पूर्ति सूखे व हरे चारे व दाने से पूरी की जाती है। इसका अर्थ यह है कि 30 किग्रा. शारीरिक भार वाली एक भेंड़ को 950-1000 ग्राम शुष्क पदार्थ की आवश्यकता होती है जिसे 3.0 -3.5 किग्रा. हरे चारे (30 प्रतिशत शुष्क पदार्थ) व 300 ग्राम दाना/अनाज द्वारा पूरा किया जा सकता है। भेंड़ों के चरने का स्वभाव बकरियों से भिन्न होता है, जहॉ बकरी झाड़ियों व पेड़ों की पत्तियॉ अपने पिछले पेरों पर खड़े होकर खाती हैं वहीं भेंड़ चरागाह/जमीन की सतह पर उपलब्ध घास/वनस्पति को खाना पसन्द करती है। अर्ध सघन प्रवन्धन में भेड़ें अपना पोषण चारागाह व बाड़े पर दिये गये चारे दाने से ग्रहण करती है। चराई के दौरान प्रत्येक भेंड़ लगभग 10-15 किमी. प्रतिदिन घूम-घूम कर चरती है। इस प्रकार के प्रवन्धन में भेंड़ अपने कुल चारे का 70-80 प्रतिशत भाग चारागाह से प्राप्त करती है तथा शेष के लिये बाड़े पर एक किलो चारा व कुल दाना बाड़े पर दिया जाता है। भेंड़ दलहनी फसलों से प्राप्त भूसा एवं हरा चारा व बरगद, गूलर, नीम, सहतूत, पीपल, अरडू आदि के पेड़ों की पत्तियों को बड़े चाव से खाती है।

स्वास्थ्य व्यवस्था

रोगों की रोक थाम रोग उपचार से अधिक लाभप्रद है क्योंकि इससे समय एवं धन दानों की बचत होती है। भेंड़ पालन में इस बात का विशेष प्रयास करना चाहिए जिससे रोग उत्पन्न करने वाले कारक रेवड़ से दूर रहें और पशुओं के चारो ओर एक सुरक्षा कवच बन सके। मुजफ्फरनगरी भेंड़ शारीरिक रूप से बड़ी व मजबूत होती है तथा अन्य नस्लों की तुलना में कम रोग ग्रसित होती हैं, फिर भी संक्रामक रोगों से बचाव के लिए रोग निरोधक टीके लगवाना आवश्यक है। भेंड़ों में प्रमुख संक्रामक रोगों जैसे पी.पी.आर., भेंड़ चेचक, खुरपका मुँहपका, एच. एस. एवं इन्टेरोटाक्सीमिया के विरूद्व टीकाकरण कराना चाहिये। भेंड़ पालकों को आवश्यक रूप से इन बीमारियों की जानकारी व पहचान होनी चाहिए ताकि वह इनमें से किसी भी बिमारी के जानवरों में लक्षण प्रकट होने पर सही समय पर चिकित्सा प्रदान कर सके। परजीवी से बचाव हेतु वर्ष में दो बार यानी वर्षा ऋतु से पहले तथा बाद में भेंड़ों को परजीवी नाशक दवा पिलानी चाहिये। बाह्य परजीवियों जैसे जूँ, किलनी, पिस्सू इत्यादि से बचाव हेतु वर्ष में दो बार वर्षा ऋतु से पहले व बाद में बाह्य परजीवी नाशक दवा के घोल से सर्वांग स्नान (डिपिंग) करानी चाहिए। बाड़ों की नियमित रूप से सफाई होनी चाहिये तथा वर्ष में कम से कम एक बार बाड़े की 6 इंच मोटी मिट्टी की परत खुदवाकर बदल देनी चाहिये। वर्ष में एक बार प्रजनक मेढ़े के चयन से पहले कुछ संक्रामक रोगों जैसे बूसलोसिस रोग परीक्षण अवश्य कराना चाहिये तथा संक्रमित पशु का प्रयोग प्रजनन के लिए नहीं करना चाहिये। यदि रेवड़ में ऐसी भेंड़ है जिसे छूत की बीमारी है तथा उपचार से भी कोई विशेष लाभ न हो रहा हो तो उसे तुरन्त निष्कासित कर देना चाहिये।

लघु स्तर पर भेंड़ पालन का आर्थिक विश्लेषण

आज की बढ़ती हुई मंहगाई में जब गाय व भैसों की कीमत व उनके पालने का खर्च बहुत अधिक है, भेंड़ पालन ग्रामीण बेरोजगारों का एक प्रमुख पशुपालन व्यवसाय हो सकता है। इस विश्लेषण में दर्शाया गया है कि एक किसान 10 मुजफ्फरनगरी गर्भित भेंड़ें खरीदकर भेंड़ पालन शुरू करता है और इन 10 भेंड़ों से उसे 12 मेमना प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व 22 भेंड़ों का पालन करेगा। मेमनों का 8 माह की उम्र पर औसत शारीरिक भार 30 किग्रा होगा जिसे वह खरीददार को रू. 225/प्रति किग्रा की दर से विक्रय करेगा। इस प्रकार वह 10 भेंड़ों की एक लघु इकाई रू. 60 हजार की पूँजी से शुरू कर सकता है जिसमें जानवरों की देख/रेख व 6-7 घन्टे की चराई का कार्य परिवार का वह व्यक्ति करेगा जो दूसरे उत्पादक कार्यों में योगदान नहीं करता है।

अ. व्यय

- 10 गर्भित भेंड़ें, रू. 6000/- प्रति भेंड़ : ₹60,000
- गर्भ के अन्तिम माह व ब्याने के दो माह तक दाने का खर्च (500 ग्रामX10X90दिन) : ₹7,000
- 8 माह की उम्र तक 10 मेमनों पर दाने का खर्च (100-300 ग्राम आयु के अनुसार) : ₹7,000
- टीका व दवाइयों पर खर्च : ₹1,000
- **कुल व्यय : ₹75,000**

ब आय

- वर्ष के अन्त में 10 भेंड़ों की कीमत : ₹60,000
- 8 माह की उम्र पर 10 मेमनों का मूल्य : ₹67,500 (30 किग्रा. भार पर वेचने पर आय 10X30X225)
- ऊन से आय (20 किग्रा. ऊन दर ₹ 50 किग्रा.) : ₹1,000
- खाद की कीमत : ₹1,000
- कुल आय : **₹1,29,500**

वर्ष के अन्त में शुद्व लाभ (₹1,29,500-₹75,000) : ₹ 54,500

इस प्रकार एक किसान परिवार यदि ₹60,000 की व्यवस्था कर 10 गर्भित शीघ्र ब्याने वाली भेंड़ खरीद कर पालता है, दाना व दवाइयों पर अपना पैसा खर्च करता है, तो वर्ष के अन्त में ₹54,500 का शुद्व लाभ प्राप्त कर सकता है। मुजफ्फरनगरी नस्ल की 10 भेंड़ों के व्याने से 12 बच्चे प्राप्त होंगे। इस प्रकार भेंड़ पालक को 8 माह तक 22 मेमनों व वयस्क भेंड़ों का पालन करना होगा। इन 22 जानवरों में 8 माह में 2 मेमनों की मृत्यु होने पर 10 बच्चे विक्रय हेतु उपलब्ध होगें, इस प्रकार एक भेड से एक वर्ष में किसान को लगभग ₹5,400/- की शुद्व एवं अतिरिक्त आय होगी और यह उसकी बेरोजगारी कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करेगी। भेंड़ पालन पर लागत और कम आये इसके लिए किसान ऐसे दानों का प्रयोग करें जो उसे गॉव में आसानी से उपलब्ध हो तथा वह खरीददारी ऐसे समय में कर ले जब वे तुलनात्मक रूप से सस्ती दर पर उपलब्ध हों।

बुन्देलखंडी बकरी

दीपक उपाध्याय, बी पी कुशवाहा, एस के महंता, अनूप कुमार, ए के मिश्र एवं एस बी मैती

भाकृअनुप - भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसन्धान संस्थान झाँसी (उ. प्र.) - 284003

बकरियों की संख्या के आधार पर वैश्विक परिदृश्य में भारत का चीन के बाद द्वितीय स्थान है। भारत में 20वीं पशुगणना (2019) के आधार पर कुल 14 करोड़ 88 लाख बकरियां हैं। हमारे देश में बकरी को 'गरीब की गाय' की संज्ञा दी गयी है, क्योंकि इसके पालन–पोषण और रख-रखाव में, गाय एवं भैस की तुलना में बहुत कम खर्च आता है। घास, कंटीली झाड़ियाँ एवं पेड़ों की पत्तियाँ आदि खाकर बकरियां आसानी से अपना पेट भर सकती है एवं दूध, मांस एवं मेगनी (गोबर) के रूप में कृषि हेतु उत्तम खाद प्रदान करती हैं। शीघ्र व्यस्क होने एवं जुड़वाँ बच्चे देने का गुण, बकरियों को अन्य पशुओं से उत्तम बनाता है। बकरी का दूध भी बहुत गुणकारी होता है एवं इसमें कई औषधीय गुण पाए जाते हैं। बकरियों को मुख्यतः मांस के लिए पाला जाता है। भारत द्वारा कुल मांस उत्पादन में बकरी मांस की हिस्सेदारी 14.2% (2016-17) है। बकरी के मांस की बाजार में अधिक मांग रहती है एवं इसका अच्छा बाजार मूल्य भी मिलता है। इन सभी कारणों से बकरी पालन छोटे, मंझोले किसानों एवं भूमिहीन मजदूरों हेतु आय का एक उत्तम विकल्प है।

बकरी की अच्छी और जलवायु के अनुकूल नस्ल का चुनाव अति आवश्यक होता है। भारत में अब तक बकरियों की कुल 34 नस्लें पंजीकृत हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र में बकरियों की कुलसंख्या लगभग 25 लाख तक है। इनमें कुछ बकरियां पंजीकृत नस्लों जैसेकि जमुनापरी, सिरोही, बारबरी आदि हैं जबकि अधिकतर बकरियां किसी भी वर्णित नस्ल की नहीं हैं। हालाँकि अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इस क्षेत्र में विशेष प्रकार की काले रंग एवं मध्यम आकार की बकरियां काफी संख्या में मौजूद हैं जिनको अभी तक अलग नस्ल के रूप में पहचान नहीं मिली है। इसके लिए क्षेत्र में इन बकरियों का अभिलेखन करने के साथ-साथ लगभग 200 बकरियों का समूह बकरी सुधार की अखिल भारतीय समन्वित परियोजनान्तर्गत (AICRP) भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसन्धान संस्थान में अध्ययन के लिए रखा गया है।

बुन्देलखंडी बकरियों की उपलब्धता एवं जलवायु अनुकूलता

ये बकरियां बुंदेलखंड क्षेत्र में पायी जाती हैं। बुंदेलखंड दक्षिणी उत्तरप्रदेश और उत्तरी मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों में फैला हुआ है। इसमें उ.प्र. के 7 जिले (झाँसी, बांदा, चित्रकूट, महोबा, हमीरपुर, ललितपुर और जालौन) एवं म.प्र. के 6 जिले (सागर, पन्ना, दमोह, टीकमगढ़, छतरपुर और दतिया) शामिल हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र अपनी कठिन जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के लिए जाना जाता है। यहाँ गर्मियों (मई-जून) के मौसम में आमतौर पर गर्म हवाएं (लू) चलती हैं, और अधिकतम तापमान 50 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। सर्दियों में न्यूनतम तापमान 1 डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता है।

बुंदेलखंड मध्य भारत का एक प्राचीन क्षेत्र है। भौगोलिक दृष्टि से यहाँ उबड़-खाबड़ पठार, चट्टानें, संकरी घाटियाँ और मैदान आदि हैं। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती प्रजातियों से बनी है। यहाँ प्राचीन काल में घने जंगल थे जोकि आबादी बसने के साथ कम हो गए हैं। अभी ज्यादातर जंगल बेतवा, केन, पहुज और यमुना आदि नदियों के किनारे पर ही हैं। इन जंगलों में मुख्यतः बबूल, पलास, बेर, खैर, तेंदू, महुआ, सेमल आदि पेड़ पाए जाते हैं। यहाँ के जंगलों और मैदानों में पाई जाने वाली

घास मुख्यतः दूब, कांस, लम्पा, काली, गुनेर और सेन आदि हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र मुख्यतः सूखा प्रभावित भूखंड है। यहाँ पर औसतन 800-900 मि.मी. सलाना वर्षा होती है, जो पिछले कुछ वर्षों से बहुत ही अनिश्चित रहती है। बुन्देलखंडी बकरियां बुंदेलखंड क्षेत्र की इन सभी परिस्तिथियों में भी पूरी तरह अनुकूलित हैं। इनकी रोगप्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है एवं मृत्युदर कम पायी गयी है। अखिल भारतीय समन्वित परियोजनान्तर्गत किये गए सर्वे एवं अन्य स्त्रोतों से एकत्रित आंकड़ों के आधार पर मिली जानकारी के अनुसार बुंदेलखंड में इन बकरियों की अनुमानित संख्या कुल अवर्णित बकरी नस्ल की 30% अर्थात लगभग 7.42 लाख तक हो सकती है।

बुन्देलखंडी बकरियों की शारीरिक विशेषताएं

बुन्देलखंडी बकरी मुख्यतः काले रंग की होती हैं। इनका शरीर मध्यम या बड़े आकार का एवं बेलनाकार होता है। इनमें लम्बे पैर, पतला मुंह, रोमन नाक, मध्यम सींग, पत्तीनुमा कान, शरीर में लम्बे बाल और छोटी पूँछ पायी जाती है। वयस्क नर का औसत वजन लगभग 40 किग्रा एवं मादा का औसत वजन 32 किग्रा होता है। इन बकरियों के अन्य शारीरिक माप सारणी-1 में प्रदर्शित किये गए हैं। इनके सींग चपटे या घुमावदार होते हैं जो नर एवं मादा दोनों में पाए जाते हैं। इन बकरियों के चेहरे एवं नाक हल्के उभरे हुए होते हैं। नर और मादा में चेहरे की औसत लम्बाई क्रमशः 21 सेमी एवं 19 सेमी होती है। इनके कान काले एवं लटके हुए तथा चपटे पत्तिनुमा या मुड़े हुए होते हैं, जिनकी औसत लम्बाई 15 सेमी होती है। इनमें छोटी, उठी हुई एवं घनी पूँछ पायी जाती है, जिसकी औसत लम्बाई नरों में 14 एवं मादा में 13 सेमी होती है। ये बकरियां मजबूत और लम्बी दूरी तक चलने में सक्षम होने के कारण चराने के लिए उपयुक्त होती हैं। इन बकरियों को मुख्यतः मांस के लिए पाला जाता है।

सारणी 1. बुन्देलखंडी बकरी का वजन (किग्रा.) एवं शारीरिक माप (सेमी)

	बकरा	बकरी
वजन (किग्रा.)	39.70 ± 2.18	32.90 ± 1.13
लम्बाई (सेमी)	78.10 ± 1.73	71.93 ± 0.72
ऊंचाई (सेमी)	77.00 ± 1.65	71.63 ± 0.60
छाती की माप (सेमी)	77.40 ± 1.87	72.11 ± 0.83
पेट की गोलाई (सेमी)	79.50 ± 2.68	72.26 ± 1.03
चेहरे की लम्बाई (सेमी)	18.40 ± 0.48	12.88 ± 0.92
सींग की लम्बाई (सेमी)	14.80 ± 0.79	12.67 ± 0.82
कान की लम्बाई (सेमी)	19.20 ± 0.63	19.33 ± 0.62
पूँछ की लम्बाई(सेमी)	17.20 ± 0.33	15.67 ± 0.31

बुन्देलखंडी नर

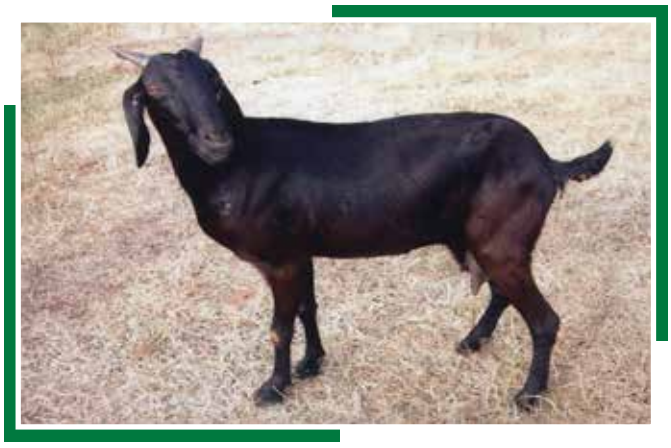

बुन्देलखंडी मादा

प्रजनन गुण

बुन्देलखंडी बकरे/ बकरियों में अन्य बकरी नस्लों से मिलते जुलते प्रजनन गुण पाए गए हैं (सारणी 2)। इन बकरियों में प्रथम समागम की औसत आयु 14-19 माह होती है। लगभग 19-24 माह की औसत आयु में इन बकरियों में पहला ब्यांत हो जाता है। ये बकरियां यूँ तो वर्ष भर मद प्रदर्शित करती हैं परन्तु अप्रैल और मई के महीने में अधिकतर बकरियां मद में आती हैं। मद के दौरान बकरियों में पूँछ हिलाना, आवाज निकालना, नर के करीब जाना, बार-बार पेशाब करना आदि लक्षण प्रदर्शित होते हैं। ये बकरियाँ अधिकतर अक्टूबर एवं नवम्बर माह में बच्चे देती हैं। सामान्यतः इन बकरियों में एक ही बच्चा होता है परन्तु लगभग 20 प्रतिशत बकरियों में दो या अधिक बच्चे देने की क्षमता भी होती है। नर बकरे लगभग 2 वर्ष की आयु में प्रजनन योग्य हो जाते हैं एवं प्रत्येक नर बकरे का प्रयोग 25-30 बकरियों के प्रजनन के लिए किया जा सकता है।

सारणी 2. बुन्देलखंडी बकरी के प्रजनन गुण

प्रजनन गुण	औसत
मादा की प्रथम समागम पर आयु	14-19 माह
प्रथम ब्यांत पर आयु	19-24 माह
गर्भकाल	5 माह
ब्यांत अन्तराल	9 ½ माह
प्रति मादा बच्चों की औसत संख्या	1.2

दुग्ध उत्पादन क्षमता

बुन्देलखंडी बकरियों को मुख्यतः मांस के लिए पाला जाता है। ये बकरी लगभग 85 से 108 दिनों के दुग्ध काल में 43 से 63 लीटर तक दूध देती है। प्रायः इनका दूध इनके बच्चों के लिए ही उपयोग किया जाता है। इनके दूध में वसा आदि की मात्रा सारणी 3 में प्रदर्शित की गयी है।

सारणी 3. बुन्देलखंडी बकरी में दुग्ध उत्पादन

	औसत
दैनिक दुग्ध उत्पादन (ग्राम)	628.00 ± 40
दुग्ध काल (दिन)	101.42 ± 5.32
वसा %	3.88 ± 0.07
एस.एन.एफ. %	9.31 ± 0.21

मांस उत्पादन क्षमता

लगभग 9 माह से 1 वर्ष की आयु में किसानों द्वारा इसे मांस के लिए बेच दिया जाता है। इस समय इनका वजन लगभग 20 किग्रा होता है। इनमें ड्रेसिंग प्रतिशत 45.46% होता है। इनके मांस में 76.4% नमीं, 20.2% प्रोटीन एवं 3.3% वसा पायी जाती है। बुंदेलखंड क्षेत्र में इस काले रंग की बकरी का दाम अन्य नस्ल की तुलना में अधिक मिलता है।

आवास व्यवस्था एवं अन्य प्रबंधन

इन बकरियों को मुख्यतः चरागाहों या जंगलों में चरा कर पाला जाता है। दिन के समय इनको प्रायः खुले बाड़ों में रखा जाता है एवं रात को कमरों में बंद कर दिया जाता है। ज्यादातर किसान बकरियों के लिए कच्चे फर्श वाले आवास बनाते हैं। छोटे किसान (3-4 बकरी वाले) बकरियों को अपने घर में ही बांध कर रखते हैं। छोटे किसान अन्य किसानों की बकरियों के साथ मिलाकर अपनी बकरियों को चराने के लिए भेजते हैं। बकरियों का प्रजनन गाँव में ही उपलब्ध किसी अच्छे बकरे से कराया जाता है। बच्चों को 3 माह की उम्र तक माँ के साथ ही रखा जाता है। केवल दुधारू पशुओं को ही दाना खिलाया जाता है। बकरियों को खिलाये जाने वाले प्रमुख आहार में फसल अवशेष जैसे दलहनी या अनाज फसलों का भूसा और पेड़ों की पत्तियां जैसे बरगद, पीपल, बेर, बबूल, पाकड़, नीम, महुआ, सिरिस इत्यादि शामिल हैं।

बुंदेलखंड क्षेत्र के कृषकों द्वारा पाली जा रही बुंदेलखंडी बकरियां

संस्थान में पाली जा रहीं बुन्देलखंडी बकरियों का समूह

संस्थान के चरागाह में चरती हुयी बुन्देलखंडी बकरियों का समूह

भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसन्धान संस्थान, झाँसी में इस नस्ल की लगभग 200-250 बकरियों के समूह को अखिल भारतीय समन्वित परियोजनान्तर्गत (AICRP) के अंतर्गत अध्ययन के लिए रखा गया है। जहाँ इन्हें खुले आवास व्यवस्था में आयु वर्ग के आधार पर पृथक रखा जाता है। नर एवं मादा बकरियों को अलग-अलग बाड़ों में रखते हैं। 3 माह की आयु में मेमनों को बकरी से अलग कर दिया जाता है। बकरियों को सुबह चरागाहों में चराया जाता है एवं इसके बाद उन्हें पूरक रातब (दाना) दिया जाता है। समय-समय पर कृमिनाशन एवं टीकाकरण भी किया जाता है।

नस्ल पंजीकरण / संरक्षण एवं सुधार कार्यक्रम

अखिल भारतीय समन्वित परियोजनान्तर्गत भारतीय चरागाह एवं चारा अनु. संस्थान, झाँसी में इस नस्ल के सुधार एवं संरक्षण पर कार्य किया जा रहा है। इसके अंतर्गत चिन्हित गावों में पशुपालकों को उत्तम नर बकरों का वितरण किया गया है। ग्रामीण पशुपालकों के पास उपलब्ध बुन्देलखंडी नस्ल की बकरियों का अभिलेखन कर आंकडें एकत्रित किये जा रहे हैं। इस नस्ल के पशुओं के संरक्षण के लिए पशुपालकों को जाग्रत किया जा रहा है। साथ ही पशुओं के स्वास्थ सुधार हेतु टीकाकरण एवं कृमिनाशक दवा भी प्रदान की जा रही है। इस नस्ल के पंजीकरण के लिए भी सतत् प्रयास किया जा रहा है।

इन सभी गतिविधियों का मूल उद्देश्य बुंदेलखंड क्षेत्र में पायी जाने वाली इस नस्ल की बकरी का संरक्षण एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करना है।

शूकरों की प्रमुख विदेशी और भारतीय नस्लें

केशर परवीन, आकांक्षा राठौण और दीप्ति किरण बरवा

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.) - 491001

छत्तीसगढ़ एक उन्नतशील राज्य है तथा इसका 41.18% क्षेत्र वनाच्छादित है। छत्तीसगढ़ राज्य की 32.5% आबादी जनजातीय है। पशुपालन ग्रामीणों, गरीबों एवं जनजातीय क्षेत्रों में बकरी पालन, मुर्गी पालन, एवं शूकर पालन आजीविका और रोजगार एक महत्व पूर्ण स्त्रोत है। पशुपालन फसल की विफलता में आय के नुकसान को भरने में एक महत्वपूर्ण और मजबूत आधार है। शूकर पालन जनजातियों में बहुत लोकप्रिय है, क्योंकि यह व्यवसाय आसानी से कम भूमि निवेश और परिचालन व्यय के आवश्यकता के बगैर किया जाता सकता है। शूकर छोटी पीढ़ी अन्तराल (generation interval) में पाला जाने वाला पशु है तथा महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

शूकर पालन की विशेषताएँ

उत्तम खाद्य परिवर्तन क्षमता: शूकरों में उत्तम खाद्य परिवर्तन क्षमता है तथा यह निम्न गुणवता वाले खाद्य पदार्थों को भी श्रेष्ठ मांस में परिवर्तित करता है। शूकरों में अन्य उत्पादन करने वाले जीवों से अधिक सजीव अर्जित करने की योग्यता होती है। एक वयस्क शूकर 3-3.5 किग्रा खाद्य से एक किग्रा भार अर्जित कर सकता है।

शीघ्र वसा संचित करने की क्षमता: शूकरों में अन्य उत्पादन करने वाले जीवों से तेज वसा संचित करने की क्षमता होती है।

उत्तम प्रजनन क्षमता: शूकरों में उत्तम प्रजनन क्षमता होती है। एक मादा शूकर एक बार में 6-12 शावकों को जन्म दे सकती है, जो अन्य किसी भी जुगाली करने वाले जानवरों से सबसे अधिक है। यह गुण शूकरों को अन्य जीवों से अलग बनाता है।

कम लागत वाला व्यवसाय: शूकर पालन कम लागत में शुरू होने वाला व्यवसाय है। शूकरों में न्यूनतम साधनो में भी कुशलता पूर्वक निर्वाह करने की क्षमता होती है। इसलिए शूकर पालन शुरू करने के लिए निमाण कार्यों अथवा उपकरणों के लिए बहुत कम निवेश की जरूरत होती है।

उत्तम प्रतिसारण क्षमता: शूकरों में औसतन मांस प्रतिसारण क्षमता 80% तक होती है जोकि अन्य उत्पादन करने वाले जीवों जैसे बकरी (50%) और भेडों (40-45%) से अधिक होती है।

इस लेख में शूकरों की प्रमुख विदेशी और भारतीय नस्लों के बारे में जानकारी दी गई है।

शूकरों की प्रमुख विदेशी नस्लें

लार्ज वाईट यार्कशायर

लार्ज वाईट यार्कशायर शूकरों का उद्भव स्थल इंग्लैंड सामराज्य का यार्कशायर नामक स्थान है। यार्कशायर प्रांत में उद्भव के कारण ही इन शूकरों का नाम यार्कशायर पड़ा। लार्ज वाईट यार्कशायर पूरे विश्व में शूकरों की सबसे लोकप्रिय प्रजाति है, और इन्हें प्रायः निम्न अनुवांशिक वाले शुअर प्रजातियों के उन्नति कार्यक्रमों के लिये उपयोग किया जाता है। लार्ज वाईट यार्कशायर शूकर के शरीर का रंग सफेद होता है। कुछ लार्ज वाईट यार्कशायर शूकरों के शरीर पर कालें रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इन काले धब्बों को फ्रेकल्स कहा

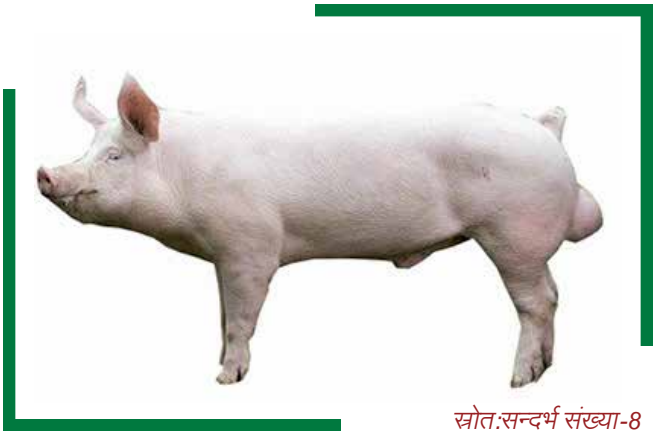

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-8

जाता है। लार्ज वाईट यार्कशायर शूकर का शरीर ऊँचा एवं ठोस होता है। इनकी चमड़ी गुलाबी एवं झुर्रिया रहित होती है। इनका मुख लम्बा, चौड़ा और जरा सा रकाबी होता है। इन शूकरों की पीठ समतल होती है एवं कान क्षैतिज होते हैं। व्यापारिक तरीकों में इन शूकरों का इस्तेमाल उच्च गुणों के मांस उत्पादन के लिए किया जाता है। एक वयस्क नर लार्ज वाईट यार्कशायर शूकर का वजन 300-400 किग्रा तथा एक वयस्क मादा लार्ज वाईट यार्कशायर शूकर का वजन 230-320 किग्रा तक हो सकता है।

टैमवर्थ

टैमवर्थ शूकर का मूल स्थान ग्रेट ब्रिटेन साम्राज्य का टैमवर्थ शहर है। वर्तमान में टैमवर्थ आयरलैंड देश में स्थित है। टैमवर्थ राज्य में उद्भव होने की वजह से ही इन शूकरों का नाम टैमवर्थ पडा। टैमवर्थ शूकरों की सबसे सक्रिय नस्ल हैं। टैमवर्थ शहर में इन शूकरों को आईरीश ग्रेजर के नाम से संबोधित किया जाता हैं। टैमवर्थ शूकरों का रंग सुनहरा लाल या गहरा लाल होता है। इनकी शरीर ठोस मजबूत और गहरा होता है। इनकी थूथन लम्बी होती है। टैमवर्थ शूकर श्रेष्ठ (उत्तम) क्वालिटी का मांस उत्पादन करता है। इनका उपयोग कम चर्बी वाले बैकोन उत्पादन के लिए किया जाता है। एक व्यस्क नर टैमवर्थ शूकर का वजन 350-370 किग्रा तथा व्यस्क मादा टैमवर्थ शूकर का वजन 250-300 किग्रा तक हो सकता है। इन शूकरों का इस्तेमाल नस्ल सुधार प्रोग्राम जैसे संकरण तथा उपग्रेडिंग में भी होता है।

हैम्पशायर

हैम्पशायर शूकर का मूल स्थान यूनाईटेड स्टेस ऑफ अमेरिका का हैम्पशायर शहर में विकसित होने की वजह से इन शूकरों का नाम हैम्पशायर पड़ा। हैम्पशायर एक मध्यम आकार का शूकर है। इनका रंग काला होता है। इनके शरीर पर सफेद पट्टी होती है जो इनके शरीर के आगे वाले हिस्से प्रायः अग्र पायों पर घेराबंदी करती हुई प्रतीत होती है। हैम्पशायर नस्ल अपने ठोस शरीर, बल, प्रजनन क्षमता जैसी विशेषताओं के लिए मशहूर है। एक व्यस्क नर हैम्पशायर शूकर का औसतन वजन 200-300 किग्रा तक हो सकता है।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-6

डयूरोक

डयूरोक शूकरों का मूल स्थान पूर्वी अमेरीका राज्य का कार्न बेल्ड्ड नामक स्थान है। डयूरोक नस्ल को जरसी रेड और डयुरोस प्रजातियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न किया गया है। इस कारण से इस नस्ल को डयुरोस-जरसी के नाम से संबोधित किया जाता है। डयुरोक एक विशाल आकृति वाला शूकर है। यह अपने उत्तम वजन अनुपात, आहार रूपान्तरण क्षमता, शीघ्र परिपक्वता और श्रेष्ठ मांस उत्पादन क्षमता एवं उत्तम प्रजनन क्षमता के लिए मशहूर/ प्रसिद्ध है। डयूरोक प्रायः सुनहरा लाल या चेरी लाल रंग का होता है। नर डयूरोक शूकर का वजन 400 - 420 किग्रा तथा मादा का वजन 300 - 350 किग्रा तक पाया गया है।

लैंडरेस

लैंडरेस शूकरों का मूल स्थान उत्तरी यूरोप का डेनमार्क राज्य है। यह विश्व का सर्वश्रेष्ठ गुणवत्ता वाला मांस उत्पादन करने वाला

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-4

शूकर है। लैंडरेस शूकरों का रंग सफेद होता है तथा इनके शरीर में ब्लैंक बाल फ्रेक्ल्स नहीं होते। इनके कान लटके तथा कतरे हुए प्रतीत होते हैं। इनका मुख चौड़ा और जरा सा रकाबी होता है। इन शूकरों की पीठ लम्बी और समतल होती है एवं कान क्षैतिज

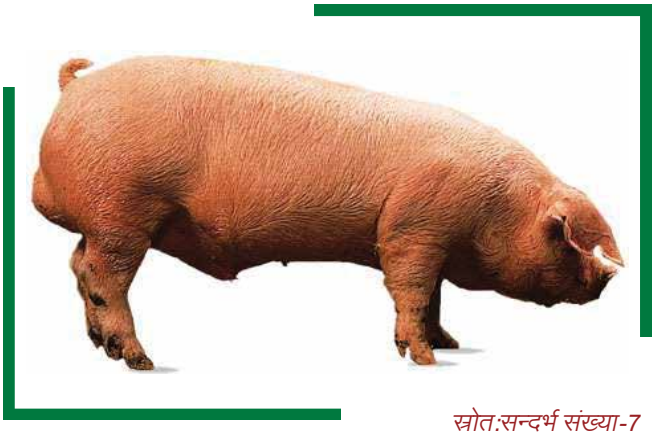

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-7

होते हैं। एक व्यस्क नर लैंडरेस शूकर का वजन 300-400 किग्रा तथा एक व्यस्क मादा लैंडरेस शूकर का वजन 230-320 किग्रा तक हो सकता है।

बर्कशायर

बर्कशायर शूकरों का मूल स्थान ईंग्लैंड का बर्कशायर शहर है। बर्कशायर शहर में उत्पत्ति होने की वजन से ही इन शूकरों का नाम बर्कशायर पड़ा। इसके शरीर में छः स्थानों पर (चारों पायों, नाक

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-3

शूकरों की प्रमुख भारतीय नस्लें

और पूछं) सफेद धब्बे पाये जाते हैं। एक वयस्क नर बर्कशायर शूकर का वजन 275-375 किग्रा तथा मादा बर्कशायर का वजन 200-290 किग्रा तक पाया गया है।

भारतीय नस्लें

अंडमानी

भारतीय शूकर की यह नस्ल अंडमान द्वीप में पाई जाती है। अंडमानी शूकर का शरीर भारी और ठोस होता है। इनके शरीर का रंग काला या ग्रे होता है।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-1

अंगामाली

अंगामाली शूकर भारत के केरल, कर्नाटक, तमीलनाडु और महाराष्ट्र राज्यों में पाए जाते हैं। इनका, रंग प्रायः काला या ग्रे होता हैं कुछ अंगमाली शूकर में सफेद धब्बे भी पाये जाते हैं।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-2

धुंघरू

घुंघरू शूकरों का रंग प्रायः काला या भूरा होता है। तथा इनके पिछले पायों पर सफेद धब्बे पाए जाते हैं। इनका माथा बुलडाग के समान होता है। तथा मुख और गर्दन की चमडी लटकी हुई होती है। इनका शरीर, लम्बा तथा गहरा होता है। कान, बडे, लम्बे और लटके हुए होते हैं। एक वयस्क धुंघरू शूकर का वजन 130-150 किग्रा तक हो सकता है।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-5

नियांग - मेघा

नियाग मेघा शूकर का मूल स्थान मेघालय राज्य है। यह शूकर मध्यम आकार का होता है तथा इसके शरीर का रंग काला तथा माथे पर हीरे या तारे के आकार के सफेद धब्बे पाये जाते हैं। पूँछ के अंतिम सिरे पर सफेद चमकदार बाल होते हैं। इनके पीठ पर ब्रिसटल्स होते हैं। इनके कान छोटे, क्षैतिज और उर्ध्वाधर होते हैं तथा उदर लटका हुआ होता है।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-10

डूम

डूम शूकर का मूल स्थान त्रिपुरा राज्य के उत्तरी और दक्षिण प्रांत हैं। इनका रंग काला या ग्रे होता है। एक वयस्क डूम शूकर का औसत वजन 50 किग्रा तक होता है।

माली

माली शूकर का मूल स्थान त्रिपुरा राज्य है। इनका रंग प्रायः काला होता है तथा कुछ जानवरों के माथे और पूँछ पर सितारे के आकार के सफेद धब्बे पाये जाते हैं। माली शूकर का औसत वजन 50 किग्रा तक होता है।

निकोबारी

निकोबारी शूकर का मूल स्थान निकोबार द्वीप है। एक वयस्क निकोबारी शूकर का वजन 50-80 किग्रा तक हो सकता है।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-??

सुहा

सुहा शूकर का मूल स्थान त्रिपुरा राज्य है। इनका रंग प्रायः काला होता है। परन्तु माथे, पूँछ, टखने, उदर और नाक पर सितारे या हीरे के आकार के सफेद धब्बे पाये जाते हैं। यह एक छोटे आकार का शूकर है। एक व्यस्क सुहो शूकर का वजन 40-60 किग्रा तक हो सकता है।

पीगमी हौग

पीगमी हौग शूकर का मूल स्थान नेपाल तथा भारत के सिक्कम, और असम राज्य है। इनके शरीर का रंग काला या भूरा होता है। गले के निचले भाग और पीठ पर लम्बे और खुरदरे बाल पाये जाते हैं। एक वयस्क पिगमी हौग शूकर का औसतन वजन 7.5 किग्रा होता है।

स्रोत:सन्दर्भ संख्या-11

संदर्भ

1. https://www.researchgate.net/figure/Figure-1-Andaman-Desi-pig-Andaman-wild-pig-Nicobari-pig-Andaman-Desi-pig-and-pure-and_fig1_273667616
2. http://vechur.org/ankamali-pigs/
3. https://www.nepork.org/breeds-of-swine-berkshire/
4. https://www.britannica.com/animal/Duroc
5. https://icar.org.in/node/8078
6. https://www.britannica.com/animal/Hampshire-breed-of-pig
7. https://www.britannica.com/animal/Landrace
8. https://www.apnikheti.com/en/pn/livestock/pig/large-white-yorkshire
9. https://icar.org.in/node/443
10. http://allpedia.dkart.in/livestock/breeds/pig-breeds/9372-niang-megha-pig.html
11. https://en.wikipedia.org/wiki/Pygmy_hog
12. https://www.lakedistrictwildlifepark.co.uk/animals/tamworth-pig/

गंगातीरी गायों के उत्पादन एवं प्रजनन क्षमताओं पर ब्याँत मौसम और ब्याँत संख्या का प्रभाव

विकास कुमार[1], रामपाल सिंह[1], केशर परवीन[2], नीरज[1], रमेश पांडे[1], रवि रंजन[1], अनुज कुमार शुक्ला[1] एवं रूबी कुमारी[1]

[1]पशुपालन एवं डेयरी विभाग, सैम हिगीनबॉटम कृषि विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.) - 211008

[2]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.) - 491001

भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं यहाँ के 78% लोग गावों में निवास करते हैं। जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है इसलिए ये पूर्ण रूप से कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। कृषि एवं पशुपालन का सम्मिलित रूप किसानों की आय को बढ़ावा देता है। भारत में गायों की कुल 50 सुपरिभाषित नस्लें है, साथ ही साथ बहुत सी ऐसी गायों की प्रजातियाँ है जिन्हें अभी भी परभाषित करना शेष है। गंगातीरी गाय को पूर्वी हरियाणा या शाहाबादी के नाम से भी जाना जाता है। ये गाय गंगा और घाघरा नदियों के दोआब क्षेत्र में पाई जाती है। ये क्षेत्र उत्तर प्रदेश के वाराणासी, गाजीपुर, बलिया एवं चन्दौली जिले और बिहार के भभुवा, सासाराम, आरा, बक्सर एवं छपरा जिले हैं। गंगातीरी मध्यम आकार की बहुत ही सुन्दर नस्ल है। दोआब क्षेत्र के वातावरण में काफी विभिन्नता है, जहाँ गर्मी के दिनों में तापमान 45°C तथा ठंड के दिनों में तापमान 10°C से नीचे तक चला जाता है। वातावरण में इतनी विभिनता होने के बावजूद ये गाय समान दूध उत्पादन करती रहती है। इससे यह पता चलता है कि यह गाय गर्म तथा ठंडे इलाकों में अच्छे से पाली जा सकती है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा इस नस्ल का पंजीयन किया गया है, तथा यह नस्ल भारत की 39वीं पंजीकृत गोवंश की नस्ल है। इसका पंजीकरण क्रमांक INDIA_CATTLE_2003_GANGATIRI_03039 है।

सामग्री एवं क्रियाविधि

वर्तमान अध्ययन पशुपालन विभाग उत्तर प्रदेश शासन के तहत पशुधन सह कृषि फार्म, अराजी लाईन वाराणसी में रखी गयी 40 गंगातीरी गायों पर किया गया है। इन गंगातीरी गायों ने वर्ष 2003 से वर्ष 2010 के मध्य में ब्याँत किया है। इस अध्ययन में गंगातीरी गायों के प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता तथा उन पर मौसम (season of calving) और ब्याँत संख्या (parity) के प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

गंगातीरी गाय

गंगातीरी सांड

उत्पादन मापदंड

- प्रथम ब्याँत का कुल दुग्ध उत्पादन
- प्रथम ब्याँत का दुग्ध काल
- द्वितीय ब्याँत का कुल दुग्ध उत्पादन
- द्वितीय ब्याँत का दुग्ध काल
- तृतीय ब्याँत का कुल दुग्ध उत्पादन
- तृतीय ब्याँत का दुग्ध काल
- प्रथम शुष्क अवधि
- द्वितीय शुष्क अवधि

प्रजनन मापदंड

- प्रथम ब्याँत अंतराल
- द्वितीय ब्याँत अंतराल

सभी उत्पादन एवं प्रजनन आँकडों को ब्याँत होने के तीन मौसमों ग्रीष्मकालीन, वर्षाकालीन एवं शीतकालीन तथा ब्याँत संख्या को तीन -प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्ग में विभाजित किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण - गंगातीरी गाय के आँकड़ों का विश्लेषण एस.पी. एस.एस. (SPSS) सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर द्वारा किया गया है।

परिणाम एवं विवेचना - गंगातीरी गायों के विभिन्न प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता के मापदंडों के औसत मान तालिका 1 में दर्शाये गए हैं। इस अध्ययन में गंगातीरी गायों में प्रथम ब्याँत की औसत आयु 1456 दिन पाई गई है। गंगातीरी गायों में औसत प्रथम, द्वितीय और तृतीय ब्याँत का कुल उत्पादन क्रमशः 1070, 855, 1030 किग्रा तथा प्रथम, द्वितीय और तृतीस ब्याँत दुग्ध काल क्रमशः 309, 239 एवं 249 दिन पाया गया है। पहली एवं दूसरी दुग्ध शुष्क अवधि क्रमशः 170 और 160 दिन तथा प्रथम एवं द्वितीय ब्याँत अंतराल क्रमशः 469 दिन और 398 दिन है।

तलिका 1. गंगातीरी गायों के विभिन्न प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता के मापदंडों का औसत मान

प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता के मापदंड	औसत मान और प्रमाप विभ्रम
प्रथम ब्याँत की आयु	1456 ± 125 दिन
प्रथम ब्याँत दुग्ध उत्पादन	1070 ± 215 किग्रा.
प्रथम ब्याँत दुग्ध काल	309 ± 35 दिन
द्वितीय ब्याँत दुग्ध उत्पादन	855 ± 105 कि.ग्रा.
द्वितीय ब्याँत दुग्ध काल	239 ± 25 दिन
तृतीय ब्याँत दुग्ध उत्पादन	1030 ± 115 किग्रा
तृतीय ब्याँत दुग्ध काल	249 ± 18 दिन
प्रथम शुष्क अवधि	170 ± 55 दिन
द्वितीय शुष्क अवधि	160 ± 85 दिन
प्रथम ब्याँत अंतराल	469 ± 46 दिन
द्वितीय ब्याँत अंतराल	398 ± 24 दिन

प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता पर ब्याँत के मौसम और ब्याँत संख्या का प्रभाव

गंगातीरी गायों के विभिन्न प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता के मापदंडों पर मौसम और ब्याँत संख्या के प्रभाव के लीस्ट स्क्वायर औसत मान तलिका 2 में दर्शाएं गए हैं। ब्याँत देने के मौसम का प्रभाव द्वितीय ब्याँत अंतराल को छोडकर बाकी सभी उत्पादन एवं प्रजनन मापदंडों पर सार्थक नहीं पाया गया है। ब्यांत संख्या का प्रभाव सभी उत्पादन एवं प्रजनन मापदंडों पर सार्थक पाया गया हैं। वर्तमान अध्ययन के परिणाम डांगी व अन्य (2013), गांधी और राजा (2015), सिंधहरे व अन्य (2015), आमबोरे व अन्य (2017), बसक व अन्य. (2018), चौधरी व अन्य (2019) और रतवान व अन्य (2020) के परिणाम के समान ही हैं।

तलिका 2. गंगातीरी गायों के विभिन्न प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता के मापदंडों पर ब्याँत मौसम और ब्याँत संख्या के प्रभाव का लीस्ट स्क्वायर औसत मान

ब्याँत के मौसम का प्रभाव

प्रथम ब्याँत कुल दुग्ध उत्पादन (किग्रा)	
ब्याँत मौसम	**औसत मान**
शीतकालीन	1011.71 ± 24.8
ग्रीष्मकालीन	1022.89 ± 112.5
वर्षाकालीन	1381.17 ± 78.1
द्वितीय ब्याँत कुल दुग्ध उत्पादन (किग्रा)	
शीतकालीन	822.67 ± 78.5
ग्रीष्मकालीन	1082.62 ± 117.23
वर्षाकालीन	667.21 ± 74.2
तृतीय ब्याँत कुल दुग्ध उत्पादन (किग्रा)	
शीतकालीन	1078.63 ± 74.2
ग्रीष्मकालीन	1049.33 ± 44.5
वर्षाकालीन	754.52 ± 65.22
प्रथम ब्याँत दुग्ध काल (दिन)	
शीतकालीन	292.50 ± 16.88
ग्रीष्मकालीन	317.80 ± 88.5
वर्षाकालीन	357.33 ± 55.6
द्वितीय ब्याँत दुग्ध काल (दिन)	
शीतकालीन	219.52 ± 44.32
ग्रीष्मकालीन	289.22 ± 36.55
वर्षाकालीन	240.57 ± 45.12
तृतीय ब्याँत दुग्ध काल (दिन)	
शीतकालीन	263.680 ± 24.2
ग्रीष्मकालीन	239.75 ± 62.3
वर्षाकालीन	187.60 ± 45.21
प्रथम शुष्क अवधि (दिन)	
शीतकालीन	165.87 ± 74.2
ग्रीष्मकालीन	197.60 ± 46.7
वर्षाकालीन	142.83 ± 36.22

द्वितीय शुष्क अवधि (किग्रा)	
ब्याँत मौसम	**औसत मान**
शीतकालीन	154.87 ± 78.5
ग्रीष्मकालीन	148.401 ± 11.2
वर्षाकालीन	192.00 ± 45.22
प्रथम ब्याँत अंतराल (दिन)	
शीतकालीन	459.45 ± 54.7
ग्रीष्मकालीन	518.00 ± 64.22
वर्षाकालीन	429.66 ± 66.25
द्वितीय ब्याँत अंतराल (दिन)	
शीतकालीन	371.00 ± 25.0
ग्रीष्मकालीन	433.20 ± 25.0
वर्षाकालीन	437.57 ± 71.45
ब्याँत संख्या का प्रभाव कुल दुग्ध उत्पादन (दिन)	
ब्याँत संख्या	औसत मान
प्रथम	1069.92 ± 114.5
द्वितीय	854.76 ± 47.2
तृतीय	1029.82 ± 128.8
शुष्क अवधि (दिन)	
प्रथम	170.350 ± 14.75
द्वितीय	159.75 ± 27.2
तृतीय	152.84 ± 48.8
दुग्ध काल (दिन)	
प्रथम	308.55 ± 44.35
द्वितीय	239.38 ± 77.2
तृतीय	248.63 ± 58.8
ब्याँत अंतराल (दिन)	
प्रथम	469.62 ± 14.35
द्वितीय	401.38 ± 27.2
तृतीय	398.20 ± 38.8

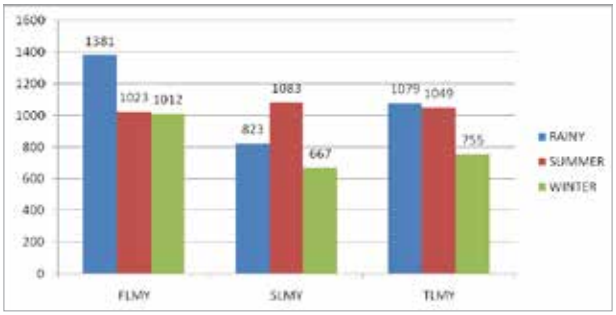

गंगातीरी गायों के ब्याँत के कुल दूध उत्पादन पर ब्याँत देने के मौसम का प्रभाव

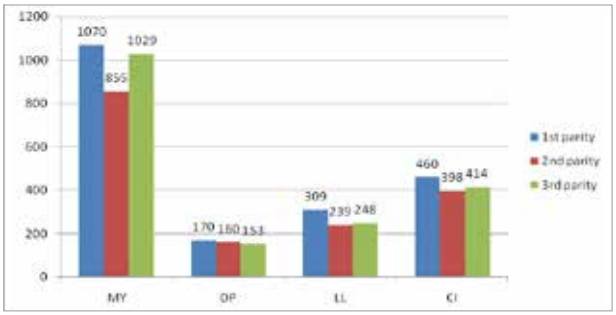

गंगातीरी गायों के प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता पर ब्याँत संख्या का प्रभाव

संदर्भ

Ambhore, G. S, Singh, A, Deokar D. K, Gupta A. K, Singh, M and Prakash, V. (2017) First lactation production and reproduction performance of Phule Triveni cattle in hot arid region of Maharashtra. *Indian Journal of Animal Sciences* 87 (1): 105–108.

Basak, S. and Das D. N. (2018) Effect of parity, period and season of calving on production and reproduction traits on Deoni Cattle. *Journal of Animal Health and Production* 6(1): 1-4.

Choudhary, G, Pannu, U, Gahlot, G. C. and Meena S. (2019) Effect of Genetic and Non-Genetic Factors on First Lactation Production Traits in Tharparkar Cattle. *International Journal of Current Microbiology and Applied Sciences* 8(2): 2160-2164.

Dangi, P.S, Singh, R, Pundir, R. K, Singh, A, Chaudhary, V and Verma, N. K (2013) Study of various performance traits in Rathi cattle. *Indian Journal of Animal Research* 47(4):321-326.

Ratwan P, Chakravarty, A. K, K, M, Sharma, N. and Joshi, P (2020) Genetic analysis of first lactation test day traits in Sahiwal cattle. *Indian Journal of Animal Sciences* 90 (1): 99–101.

Shingare, V.M, Chauhan, D.S, Bhise, B.R and Ghosh, N (2015). Estimates of genetic parameters and trends of lactation performance traits of Deoni cattle. *Theriogenology Insight*. 5 (2): 69-79.

आभार

इस लेख के सभी लेखक पशुपालन विभाग उत्तर प्रदेश शासन एवं पशुधन सह कृषि फार्म, अराजी लाईन, वाराणसी को आभार प्रगट करते हैं।

मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूं पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं सह नहीं सकता

– आचार्य विनोबा भावे

आधुनिक भेड़ पालन से किसानों के आर्थिक सुधार में अविकानगर का अभिनव प्रयास

राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्र एवं अजय कुमार शिंदे

भाकृअनुप - केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर - 304501

भारत में भेड़ पालन परिदृश्य

भेड़ पालन को भारत के पांरपरिक व्यवसाय के रुप में जाना जाता है। देश के छोटी जोत व खेतिहर लोग प्राचीन समय से पारिवारिक पोषण की आवश्यकता और व्यावसायिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए भेड़ को घरेलू पशु के रुप में पाल रहे हैं। भेड़ एक छोटे आकार का शांत स्वभाव वाला पशु है और पशुपालन में भेड़ पालन तुलनात्मक रूप से एक आसान और सरल व्यवसाय है। भेड़ पालन के लिए कम निवेश की आवश्यकता होती है। इससे कम से कम समय में निवेश का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

पिछली पशुगणना (2012) की तुलना में 2019 में देश में भेडों की संख्या (7.24 करोड़) में 14.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जो स्पष्ट रुप से भारत में भेडों की बढ़ती माँग को दर्शाती है। भेड़ एक बहुपयोगी व बहु-आयामी पशु है तथा यह मांस, ऊन, दूध, खाद और खाल के लिये पाली जाती है।

भारत में उपलब्ध भेड़ मांस एवं ऊन के लिए जानी जाती हैं। भारत में पाई जाने वाली भेड़ें ज्यादातर पहाड़ियों, शुष्क, अर्द्ध-शुष्क, भीषण ठंडे और तटीय इलाकों में पाई जाती हैं। भारत के कुछ इलाकों जैसे कि आन्ध्रप्रदेश के अनंतपुर में बार-बार सूखा पड़ने से फसल बर्बाद हो जाती हैं। इन परिस्थितियों में उनके लिए भेड़ पालन एक आशा की किरण हैं। यह वृत्तांत भेड़ के अनुकूलन क्षमता की मिशाल है। भारत में उपलब्ध भेड़ों की 44 नस्लें उनकी विविधता को दर्शाती हैं। दक्षिणी भारत में देश की 70 प्रतिशत भेड़ उपलब्ध हैं, जोकि विशेष रूप से मांस उत्पादन हेतु पाली जाती हैं। 15 प्रतिशत भेड़ राजस्थान, गुजरात और उत्तरप्रदेश में हैं जो कि कालीन ऊन के लिए जानी जाती है और 6 प्रतिशत उत्तरी भारत में हैं जिससे महीन ऊन का उत्पादन किया जाता है।

भारतीय जलवायु भेड़ पालन को व्यवसाय के रुप में स्थापित करने के लिए बहुत उपयुक्त है। बकरियों की तुलना में चारे का उपयोग भेड़ों द्वारा बेहतर तरीके से किया जाता है। बकरियां पेड़ों पर चढ़कर वनस्पति को नुकसान पहुचाती हैं जबकि भेड़ कांटेदार और वनस्पति के अवशेष को कुशलतापूर्वक खाती हैं। गरीब, भूमिहीन और सीमांत किसानों के लिए अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए भेड़ पालन एक बेहतरीन लाभकारी व्यवसाय है।

भेड़ पालन की चुनौतियां

- नई पीढ़ी का भेड़ पालन से लगाव कम हो रहा है और वे इसको अपनाने में अनिच्छुक रहते हैं।
- भेड़ ज्यादातर चराई करके अपना पेट भरती है। तेजी से लुप्त हो रही बारानी भूमि, चरागाह और उनकी उर्वरता किसानों को भेड़ पालन छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं।
- समय पर पशु स्वास्थ्य सेवाओं की कमी भी भेड़ पालन के लाभ को कुछ सीमा तक कम कर देती है।
- ऊन से होनी वाली कमाई लाभदायक नहीं है। ऊन कतरन में प्रति बार 18-20 रुपये प्रति पशु खर्च होता है, जिससे कि (400-600 ग्राम) ऊन मिलती है, जबकि ऊन की बिक्री की कीमत 35-40 रुपये प्रति किलोग्राम मिलती है।
- ऊन के लिए कोई भी न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं है। इसलिए बहुत कम उम्र में किसान मेमनों को बेच देता है।
- भेड एवं उसके उत्पादों का बिक्री के लिए कोई भी संगठित बाजार उपलब्ध नहीं है।
- किसानों द्वारा अनियंत्रित और अव्यवस्थित प्रजनन करवाने से भेड़ों की नस्लों में सुधार नहीं हो पाता है एवं मेमनों का वजन उचित नहीं आता है।

किसान का सीधे रूप से मंडी से जुड़ाव न होने के कारण वह बिचौलियों पर निर्भर रहता है, जिससे उसे उचित मूल्य से बहुत कम कीमत में अपना उत्पाद बेचना पड़ता है।

प्रतिकार

- किसी भी पेशे/व्यवसाय का भविष्य उसको समाज में दिये जाने वाले सम्मान से पता चलता है। भेड़ पालन को भी एक अलग पहचान की जरुरत है। सरकार के स्तर पर नई योजनाओं की शुरूआत की आवश्यकता है जो कि किसान को आत्मनिर्भर बनाने में मदद करे। प्रधानमंत्री द्वारा हाल ही में प्रारंभ किया गया आत्मनिर्भर भारत अभियान भेड़ पालकों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प है।
- प्राकृतिक संपदा जैसे चारागाहों की कमी से निपटने के लिए चरवाहों को कुछ भूमि उपलब्ध करवाने की आवश्यकता है। चरवाहों को भी मौसमी अनिश्चयता को देखते हुए फसल वृद्धि करने की जरुरत है।
- मौसम के अनुसार सामयिक/ऋतु-संबंधी रोगों की रोकथाम के लिए समय पर रोग निवारक टीकों को उपयोग में लेने की आवश्यकता है। संस्थान द्वारा प्रस्तुत स्वास्थ्य पंचाग को उपयोग में लेकर स्वास्थ्यगत नुकसानों से बचा जा सकता है।
- भेड़ पालन द्वारा मुख्य लाभ मांस से हो रहा है, इसलिए किसानों को मांस देने वाली भेडों की नस्ल का चयन करना चाहिए। वैज्ञानिकों को भी सही नस्ल के चयन में किसानों को उचित सलाह देनी चाहिए। भेड़ों को विकसित करने की शोध क्रिया पर जोर देने की आवश्यकता है इसके अलावा भेड़ के दूध और खाद का किस तरह मूल्य संवर्धन किया जा सके उस पर भी काम करने की जरुरत है।
- बिचौलियों की मदद न ले कर किसान को मंडी की सटीक जानकारी रखने की जरुरत है। उभरते हुए किसानों को सरकार द्वारा आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रदान करके भेड़ पालन को बढ़ावा दिया जाने से भेड़ पालन से और उम्मीदें बढ़ेंगी।
- सामान्यतः किसान पूरे झुंड को एक साथ एक ही खरीददार को बेच देता है। लेकिन अगर भेड़ के शारीरिक भार के हिसाब से उसकी मूल्य निर्धारण करे तो उसे ज्यादा मुनाफा होगा।

हाल के वर्षो में विकसित नई संकर भेड़ें

आधुनिक प्रजनन तकनीक द्वारा स्थानीय नस्लों में सुधार, बहुप्रज मेमनें, मांस की गुणवत्ता में सुधार और ऊन उत्पादन में बढ़ोतरी दिखी है। अविकानगर संस्थान ने इस दिशा में कई नस्लों का विकास किया है जैसे कि भारत मेरिनो, अविकालिन, अविवस्त्र, अविमांश और हाल ही में अविशान।

भारत मेरिनो: यह भेड़ रैम्बूले और मेरिनो मेंढ़े के साथ स्थानीय चोकला और नाली भेड़ का प्रजनन करवाकर विकसित की गई है। इसको 75 प्रतिशत विदेशी वंशानुक्रम पर मानकीकृत किया गया है। इसे उत्कृष्ट महीन ऊन पाने हेतु विकसित किया गया है। इनसे उपलब्ध ऊनी रेशे का व्यास 19-20 माईक्रोन है और प्रत्येक भेड़ का वार्षिक ऊन उत्पादन 2.5 किलोग्राम है। इस भेड़ के अनुकूलन को देखकर इसे शीत जलवायु वाले क्षेत्रों में वितरित किया गया है ताकि इनकी पूर्ण उत्पादकता का लाभ मिल सके।

दुम्बा: मोटी वसा पूंछ वाली भेड़

मद समकालन से प्राप्त मेमनें

अविकालीन: इस नस्ल का विकास रैम्बूले एवं मालपुरा नस्ल का प्रजनन करवाकर किया गया है। यह नस्ल दोहरा लाभ देती है। स्थानीय नस्ल मालपुरा की तुलना में ऊन एवं मांस दोनों की गुणवत्ता में सुधार आया है, इसमें 50 प्रतिशत विदेशी वंशानुक्रम है, इसकी ऊन से बेहतरीन कालीन बनाया जाता है। इससे उपलब्ध ऊनी रेशा 30 माईक्रोन व्यास का होता है और एक साल में एक भेड़ 2 किलोग्राम ऊन देती है।

अविशान: भेड़ों में बहुप्रजकता बढ़ने से आजीवन उत्पादन में बढ़ोतरी होती है, क्योंकि भेड़ पालक की ज्यादातर आय मेमनों को और व्यस्क भेड़ों को बेचने से प्राप्त होती है। मांस की माँग और बहुप्रजकता को ध्यान में रखते हुए अविकानगर ने अविशान नामक भेड़ विकसित की है। इसमें 12.5 प्रतिशत गैरोल, 37.5 प्रतिशत मालपुरा एवं 50 प्रतिशत पाटनवाड़ी नस्ल के जीन हैं। इसके पास ज्यादा बच्चे देने की क्षमता के साथ, ज्यादा दूध और मांस देने की क्षमता तथा वातावरण के प्रति अनुकूल सामर्थ्य भी है। इसकी बहुप्रजकता संस्थान के फार्म में 74 प्रतिशत है जबकि किसानों के रेवड़ में 60 प्रतिशत प्राप्त हुई है। स्थानीय नस्ल मालपुरा की तुलना में यह 46 प्रतिशत ज्यादा वजन भार प्राप्त करती है। संस्थान द्वारा 600 अविशान नस्ल की भेड़ें 10 राज्यों में वितरित की गई हैं, जिससे कि उन क्षेत्रों में मांस के उत्पादन में तेजी से वृद्धि देखी गई है।

भेड़ों की शान-अविशान द्वारा प्राप्त एक ब्यांत के चार मेमनें

सफलता गाथा: राजस्थान के टोंक जिले के एक छोटे से गाँव कुहाड़ा बुजुर्ग के श्री हीरालाल जाट जिनक पास 35 भेड़ें थीं, संस्थान द्वारा उनकी सभी भेड़ों में स्पंज तकनीक से समकालीन मद लाया गया और संस्थान में विकसित एक अन्य तकनीक-भेड़ों में कृत्रिम प्रजनन तकनीक से भेड़ों में गर्भधारण करवाया गया। 33 भेडों में मद परिलक्षित हुआ और 28 स्वस्थ मेमनों का लाभ उन्हें पांच महीने बाद प्राप्त हुआ। इन्हीं मेमनों को श्री हीरा लाल द्वारा 6 महीने तक रख कर बाजार में बेचा गया और उससे उन्हें रुपये 20000/- का लाभ मिला। इस प्रकार विकसित तकनीकियों का सही उपयोग कर अधिक से अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

टोंक जिले के रिंडलिया गांव के श्री गोपाल जाट ने संस्थान से 34 अविशान भेड़ें लेकर अपने रेवड़ में पालन किया। उसमें से 21 भेडों में गर्भाधान किया जिनमें से 9 भेडों ने जुड़वा, दो भेडों ने ट्रिप्लेट (3 बच्चे) और दस भेडों ने एक-एक बच्चा जन्मा, जिनको बेचकर उनको अतिरिक्त आमदनी प्राप्त हुई।

भेड़ पालन से कैसे बढ़ाएं आय

प्रगतिशील किसानों द्वारा सही नस्लों की पहचान, चयनित प्रजनन का अभ्यास एवं नई तकनीकियों का चयन करने से भविष्य में भेड़पालन व्यवसायिक स्तर पर अभूतपूर्व ऊँचाइयों पर जा सकता है। नई तकनीक जैसे कि कृत्रिम प्रजनन, समकालीन मद, कृत्रिम खीस का उपयोग, मेंमनाप्राश जैसे पुनर्गठित दूध का पाउडर (मेंमनों का वजन बढ़ाने के लिए) उपयोग में लेकर भेड़ पालन से आय को बढ़ाया जा सकता है। अनुसंधान द्वारा नई-नई तकनीकी विकसित की जा रही हैं, ताकि भेडों से ज्यादा मेंमने मिलें, विपणन तक मेंमनों में लाभकारी बढ़ोतरी दिखे, रोगों से बचाव कर पायें, ज्यादा से ज्यादा भेड़ों का लाभदायक प्रबंधन किया जाये एवं उच्च तापमान में अनुकूलन किया जा सके। भविष्य में किसानों द्वारा परंपरागत भेड़ पालन छोड़कर व्यवसायिक भेड़ पालन को अपनाने के लिए अविकानगर स्थित संस्थान द्वारा निम्न तकनीकियों का विकास किया गया है:

- उच्च नस्लों की भेड़ों की पैदावार।
- मांस उत्पादन हेतु पालन और खान-पान पद्धति में सुधार।
- भेड़ों में मदसमकालन।
- भेड़ों में कृत्रिम गर्भाधान।
- मोटी वसा पूँछ वाली दुम्बा भेड़ का रखरखाव।

- मांस और दूध उत्पादों का मूल्य संवर्धन।
- ऊन और ऊनी उत्पादों का मूल्य संवर्धन।
- त्वरित गर्भाधान।
- परजीवी प्रबंधन तकनीकी से मृत्यु दर में कमी।
- क्षेत्रवार खनिज मिश्रण की प्रस्तुति।
- ऊन द्वारा जैविक खाद का निर्माण।
- जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप भेड़ अनूकुलन के लिए उपाय एवं प्रबंधन।

भावी सम्भावनाएं

वर्तमान परिस्थितियों में जहां जलवायु में बदलाव, वातावरणीय प्रदूषण, प्राकृतिक संपदा की कमी, संक्रामक रोगों का बढ़ना और परिवर्तनशील अर्थव्यवस्था का बोलबाला है, ऐसे समय में किसान को एक सतत् आमदनी के श्रोत की जरुरत है। भविष्य में भेड़ सहायक संगठन/स्वयं सहायता समूहों के गठन की आवश्यकता है जिससे कि किसान अपने पशुओं और उनके उत्पादों को उचित मूल्य पर बेच सकें। आज के समाज में भेड़ की विशेष उपयोगिता में जैसे कि भेड़ के दूध के पौष्टिक और औषधीय गुण, भेड़ की खाद, जैविक मांस, मोटी ऊन का उपयोग, बहुप्रजता वाली बेहतर नस्लों के विकास पर शोध की आवश्यकता है। किसान बाजार उन्मुखी उत्पाद बनाकर (रेडी टू ईट, क्रियाशील खाद्य) ज्यादा लाभ पा सकते हैं। किसानों की कुशलता बढ़ाने के लिए संस्थान द्वारा समय-समय पर प्रशिक्षण शिविरों और वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया जाता है। अब वो दिन दूर नहीं जब नई पीढ़ी भी भेड़ पालन को व्यवसायिक रूप में अपनायेगी और इसको अपने जीवनयापन का माध्यम बनायेगी।

संस्थान द्वारा लाभार्थी प्रगतिशील भेड़ पालक

चराई व्यवस्था में पाली जाने वाली देशी भारतीय गाय के दूध की श्रेष्ठता के वैज्ञानिक साक्ष्य

रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत, रीना अरोड़ा एवं मधु सूदन टांटिया
भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

गाय मानव जीवन का अभिन्न अंग है। गाय एवं मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध हजारों वर्षों से चला आ रहा है क्योंकि गाय से हमें दूध, खाद एवं भारवाही एवं कृषि शक्ति की प्राप्ति होती है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में गाय पाली जाती रही है जहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों तथा वहाँ पाई जाने वाली वनस्पतियों की विविधता के कारण कालांतर में गाय की कई नस्लों का विकास हुआ। भारत में गाय की जैव विविधता 50 परिभाषित नस्लों में परिलक्षित होती है (www.nbagr.res.in)। इनमें से अधिकतर भारवाही नस्लें हैं, कुछ दोहरे उद्देश्य वाली (दूध तथा भारवाही) नस्लें हैं जैसे कि कांकरेज, हरियाणा तथा अंगोल और केवल पाँच ही प्रसिद्ध दुधारू नस्लें हैं : थारपारकर, साहिवाल, लाल सिन्धी, गिर और राठी। यही कारण है कि लगभग एक सदी पहले भारत में दूध उत्पादन में वृद्धि हेतु विदेशी गायों के साथ क्रॉस-ब्रीडिंग कार्यक्रम की शुरुआत की गई। इन्हीं प्रयासों का परिणाम है कि भारत आज विश्व में सर्वाधिक दूध उत्पादन करने वाला अग्रणी देश बन गया है। पशुधन गणना 2019 के अनुसार वर्तमान में भारत में 19.25 करोड़ गोवंश हैं जिनमें से 14.21 देशी गोवंश तथा 5.04 विदेशी (बॉस टॉरस) एवं संकर गोवंश हैं।

भारतीय चिकित्सा पद्धति 'आयुर्वेद' में भारतीय देशी गाय के दूध के गुणों का वर्णन मिलता है। आज भी देश के जनमानस में यह धारणा है कि बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए देशी भारतीय गाय (बॉस इण्डिक्स) का दूध विदेशी गायों तथा संकर गायों के दूध की अपेक्षा अधिक गुणवान होता है। प्राचीन काल की पशु पालन प्रबन्धन प्रथाएँ भी दूध की गुणवत्ता में भिन्नता का कारण हो सकती हैं। आज के दौर में गाय पालने की गहन प्रबन्धन प्रणाली प्रचलित है। वहीं दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. में लिखे गए 'ऋग्वेद संहिता' ग्रन्थ में गायों के विस्तीर्ण प्रबन्धन प्रणाली के बारे में उल्लेख किया गया है। जिसके अंतर्गत गायें सूर्यास्त से गोधूलि तक चरागाह एवं जंगलों में स्वछंद विचरण कर पेट भरा करती थी (ऋग्वेद मंत्र 10-169 और 10-1692)।

विभिन्न देशों में दूध की सरंचना भिन्न-भिन्न होती है। वैज्ञानिक प्रमाण गाय के दूध में अन्तर का कारण वहाँ पर पाई जाने वाली अलग-अलग गाय की नस्लों एवं खान-पान व्यवस्था को मानते हैं। इसके अतिरिक्त देशी (बॉस इण्डिक्स) एवं विदेशी (बॉस टॉरस) गाय के दूध में भी अन्तर के प्रमाण मिलते हैं। जैविक दूध के लिए विस्तीर्ण प्रबन्धन में पाली जाने वाली गायों के दूध पर भी आजकल बहुत ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है क्योंकि इस प्रकार से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ही दूध प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ऐसे दूध को अधिक पौष्टिक तथा स्वास्थ्य वर्धक माना जाता है। परन्तु इस प्रकार के अध्ययन अधिकांशतय: यूरोप एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में ही किये गए हैं। एशिया महाद्वीप से इस प्रकार की जानकारी लगभग नगण्य ही है।

हमारे देश में गाय के दूध की सरंचना को प्रभावित करने वाले कुछ वैज्ञानिक अध्ययनों का वर्णन मिलता है परन्तु ये विभिन्न स्थानों पर विभिन्न पर्यावरण और प्रबन्धन परिस्थितियों में किए गए शोध कार्यों पर आधारित हैं। अतः इनको साक्ष्य मानकर पारम्परिक रूप से उत्पादित दूध तथा गहन प्रबन्धन में पाली गई गायों के दूध का तुलनात्मक अध्ययन वैज्ञानिक रूप से अमान्य हो जाता है। भारत में डेयरी व्यवसाय पश्चिमी देशों की तरह बड़े पैमाने का उद्यम नहीं है। इसके अतिरिक्त एक ही स्थान पर देशी, विदेशी तथा संकर गायों का प्रबन्धन भी आम नहीं है। अतः इनके दूध की गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन करना और भी कठिन हो जाता है। जहाँ तक परम्परागत रूप से विस्तीर्ण प्रबन्धन में पलने वाली गायों का प्रश्न है, तो उनके दूध की गुणवत्ता की जानकारी तो है ही नहीं। अतः राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के तत्वाधान में एक विस्तृत अनुसंधान परियोजना की परिकल्पना की गई। इस अध्ययन का

प्रमुख उद्देश्य भारतीय, विदेशी और उनकी संकर गायों की व्यापक दूध सरंचना का विस्तृत तुलनात्मक आंकलन, एक समान गहन उत्पादन प्रबंध के अंतर्गत पाली जाने वाली गायों पर किया गया। दूसरी ओर, विस्तीर्ण प्रणाली में पलने वाली देशी गाय के दूध को भी उसी प्रकार जांचा गया जिससे कि भारतीय गोवंश के दूध कि श्रेष्ठता के बारे में वैज्ञानिक साक्ष्य प्राप्त किये जा सकें। यह अध्ययन इस प्रकार का अब तक का सबसे विस्तृत आंकलन है।

गायों का चयन और प्रबन्धन

(अ) गहन प्रबंध प्रणाली: स्वदेशी (साहिवाल), विदेशी (होल्स्टीन फ्रीजियन) और उनकी संकर (50%) गायों को सरकारी पशुधन फार्म, हिसार से चुना गया। इस फार्म का रखरखाव हरियाणा सरकार के पशुपालन और डेयरी विभाग द्वारा किया जाता है। गायों को सघन प्रबन्धन प्रणाली के अनुसार ही पाला गया। दूध की सरंचना को प्रभावित करने वाले कारकों जैसे कि: मौसम, पर्यावरण समता, चारा, स्वास्थ्य, ब्यांत इत्यादि को एक समान रखते हुए सुबह तथा शाम के दूध को विश्लेषण के लिए एकत्रित कर संग्रहित किया गया।

(ब) विस्तीर्ण प्रबंध प्रणाली: किसानों द्वारा पाली जाने वाली देशी गायों को चुना गया। यह किसान के घर से सटे हुए स्थानीय संसाधनों से बनाए गए बाड़ों में रहती थीं। गाय सुबह से शाम तक चरने चली जाती थी। इनको किसी प्रकार का अनुपूरक चारा एवं दाना नहीं दिया जाता था। इन गायों को भारतीय शास्त्रों में वर्णित गायों के समकक्ष माना जा सकता है क्योंकि उनको भी इसी प्रकार से पाला जाता था।

दूध का रासायनिक विश्लेषण: दूध के नमूनों का विस्तृत परीक्षण भारतीय मानक ब्यूरो तथा नेशनल एक्रीडिएशन बोर्ड फॉर टेस्टिंग से मान्यता प्राप्त प्रयोगशाला, पंजाब बायोटेक्नोलॉजी इनक्यूबेटर, मोहाली, पंजाब में किया गया। इन सभी आकलनों से चरने वाली देशी गाय के दूध की श्रेष्ठता के वैज्ञानिक साक्ष्य प्राप्त हुए जोकि अग्रलिखित हैं:

देशी गायों का विस्तीर्ण प्रबंधन

1) **व्यापक घटकों की सरंचना:** तालिका 1 में दूध के व्यापक घटकों का औसत मान प्रस्तुत किया गया है। गहन प्रबन्धन में फार्म पर पलने वाली साहिवाल गाय के दूध में वसा, कुल ठोस तथा लैक्टोस की मात्रा होल्स्टीन फ्रीजियन (एच.एफ.) गाय की तुलना में (पी<0.05) अधिक पायी गयी। प्रोटीन की मात्रा तीनो प्रकार के दूध में एक समान ही थी क्योंकि पोषण और प्रबन्धन का दूध की प्रोटीन मात्रा पर प्रभाव नहीं पड़ता है। विस्तीर्ण प्रबन्धन में देशी गायों को चरने दिया जाता है और उनसे प्रोटीन और कुल वसा दोनों से ही समृद्ध दूध की प्राप्ति होती है (तालिका 1)। प्रबन्धन व्यवस्था का कुल लैक्टोज की मात्रा पर भी कोई प्रभाव नहीं पाया गया।

तालिका 1. साहिवाल, होल्स्टीन फ्रीजियन और उनकी संकर गायों तथा चरने वाली देशी गायों के दूध के व्यापक घटकों की सरंचना(%)

	साहिवाल		होल्स्टीन फ्रीजियन		संकर		देशी गाय		स्तर का महत्व
	औसत	एस ई	औसत	एस ई	औसत	एस ई	औसत	एस ई	
कुल ठोस	13.557[a]	0.168	12.618[a]	0.298	12.623[a]	0.600	14.360[a]	0.184	**
प्रोटीन	3.027[a]	0.079	2.790[a]	0.056	3088[a]	0.142	3.371[a]	0.103	**
वसा	4.012[a]	0.066	3.400[a]	0.033	3.600[a]	0.103	4.989[c]	0.164	***
ऐश	0.718[a]	0.009	0.730	0.017	0.718	0.010	0.743	0.013	एन एस
लाक्टोज	5.413[a]	0.063	5.138[a]	0.062	5.318[aa]	0.066	5.391[a]	0.078	*

एन एस, गैर महत्वपूर्ण। एक पंक्ति में विभिन्न सुपरस्क्रिप्ट के साथ, मतलब काफी भिन्न। *पी<0.05, **पी<0.01, ***पी<0.001

2) **फैटी एसिड सरंचना:** वर्तमान अध्ययन में कुल 50 विभिन्न फैटी एसिड से सम्बन्धित लक्षणों का विस्तृत आंकलन किया गया जिसमें 31 भिन्न-भिन्न फैटी एसिड (16 संतृप्त, 7 एकल असंतृप्त एवं 8 बहु असंतृप्त) 10 फैटी एसिड समूह, 8 फैटी एसिड सूचकांक और कोलेस्ट्रोल शामिल हैं। ये परिणाम संक्षेप में तालिका 2 में प्रस्तुत किये गए हैं।

- **गहन प्रबन्धन प्रणाली:** तीनों गायों के समूहों के दूध में कोलेस्ट्रोल की एक समान मात्रा होती है जोकि इसकी रिपोर्ट की गई सीमा 10-14 मिलीग्राम/100 ग्राम दूध के अनुसार ही थी। दूसरी ओर दूध में संतृप्त व असंतृप्त फैटी एसिड की कुल मात्रा में महत्वपूर्ण अन्तर (पी<0.05) पाया गया। होल्सटीन गाय के दूध में कुल संतृप्त फैटी एसिड सबसे अधिक थे जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद नहीं माने जाते। इनके दूध में यह मात्रा (76.3%), संकर गाय (73.3%) व साहिवाल गाय (68%) के दूध से अधिक थी। संतृप्त फैटी एसिड में सबसे अधिक मात्रा क्रमशः पॉमिटिक एसिड, स्टीएरिक तथा मिरिस्टिक एसिड की होती है। यह माना जाता है कि अधिक दूध उत्पादन के लिए गायों के निरंतर चयन से दूध में संतृप्त फैटी एसिड की मात्रा बढ़ जाती है। अतः होल्स्टीन के दूध में इनकी मात्रा बढ़ गई।

  असंतृप्त फैटी एसिड की मात्रा में रूझान संतृप्त फैटी एसिड से ठीक विपरीत पाए गए। साहिवाल गाय के दूध में इनकी मात्रा सबसे अधिक (32.1%), संकर गायों के दूध में कम (26.5%) तथा सबसे कम होल्स्टीन (23.7%) के दूध में पाई गई। यह अन्तर मुख्यतः एकल असंतृप्त फैटी एसिड की मात्रा में भिन्नता के कारण हुआ।

- **विस्तीर्ण प्रबंध प्रणाली:** चरने वाली देशी गायों का दूध फैटी एसिड सरंचना में साहिवाल गाय के दूध से मनुष्य के स्वास्थ्य की दृष्टि से बेहतर पाया गया (तालिका 2)। कुल संतृप्त फैटी एसिड की मात्रा केवल 61.4% ही थी। इनके दूध को असंतृप्त फैटी एसिड का एक संवर्धित स्त्रोत भी माना जा सकता है क्योंकि इनके दूध में एकल असंतृप्त फैटी एसिड (31.4%) तथा बहु असंतृप्त फैटी एसिड (7.2%) गहन प्रबन्धन प्रणाली वाली तीनों वर्गों की गायों की तुलना में बहुलता में थे।

तालिका 2. साहिवाल, होल्सटीन फ्रीज़ियन और उनकी संकर गायों तथा चरने वाली देशी गायों के दूध के कोलेस्ट्रॉल और फैटी एसिड संरचना, फैटी एसिड अनुपात और सूचकांक

	साहिवाल		होल्सटीन फ्रीज़ियन		संकर		देशी गाय		सार्थकता
	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	
कोलेस्ट्रॉल, (मिलीग्राम / 100 ग्राम दूध)	10.69	0.872	11.77	0.670	10.15	0.821	12.33	0.187	एन एस
कुल संतृप्त फैटी एसिड	67.958[a]	0.310	72.268[a]	0.299	73.337[c]	0.367	61.442[d]	0.681	***
लघु श्रृंखला फैटी एसिड (C4-C8)	3.646[a]	0.190	4.620[a]	0.187	3.420[a]	0.389	3.240[a]	0.273	**
मध्यम श्रृंखला फैटी एसिड (C10-C14)	22.039[a]	0.425	24.989[a]	0.743	22.042[a]	0.473	15.104[c]	0.509	***
लंबी श्रृंखला फैटी एसिड (> C16)	37.670[a]	0.497	43.971[a]	1.147	44.540[a]	0.904	40.505[c]	0.374	***
हाइपरकोलेस्टेरोलेमिक फैटी एसिड	34.544[a]	0.271	42.705[a]	0.848	40.705[c]	0.635	30.579[d]	0.519	***
एकल असंतृप्त फैटी एसिड	27.102[a]	0.422	18.820[a]	0.212	22.019[c]	0.287	31.404[d]	0.441	***
बहु असंतृप्त फैटी एसिड	4.998[a]	0.172	4.880[a]	0.113	4.520[a]	0.206	7.182[a]	0.218	***
कुल असंतृप्त फैटी एसिड	32.100[a]	0.336	23.700[a]	0.202	26.539[c]	0.454	38.586[d]	0.558	***
ओमेगा -6 फैटी एसिड	4.022[a]	0.243	4.190[a]	0.092	3.705[a]	0.120	5.395[a]	0.148	***
ओमेगा -3 फैटी एसिड	0.960[a]	0.042	0.770[a]	0.043	0.815[a]	0.032	1.745[c]	0.069	***
ओमेगा -6 / ओमेगा -3 अनुपात	4.188[a]	0.418	5.441[a]	0.345	4.546[a]	0.128	3.091[c]	0.164	***
एथ्रोजेनेसिटी इंडेक्स	45.406[a]	0.642	68.510[a]	2.483	61.681[c]	2.341	33.906[d]	0.815	***

एन एस, गैर महत्वपूर्ण। एक पंक्ति में विभिन्न सुपरस्क्रिप्ट, मतलब काफी भिन्न *पी <0.05, **पी <0.01, ***पी <0.001

3) **फैटी एसिड सूचकांक:** मानव के आहार में ओमेगा-3 और ओमेगा-6 बहु असंतृप्त फैटी एसिड के अनुपात पर आजकल बहुत बल दिया जा रहा है क्योंकि यह स्वास्थ्य से सीधा-सीधा जुड़ा है। ओमेगा-6/ओमेगा-3 फैटी एसिड अनुपात का निम्न होना मानव आहार में वांछनीय है। दूध में पाई जाने वाली वसा की मात्रा को मानव हृदय सम्बन्धित धमनियों में जमने वाली वसा से जोड़कर भी देखा जाता है, जोकि हाइपरकोलेस्ट्रोलीनिक फैटी एसिड: लॉरिक, पॉमिटिक व मिरिस्टिक के कारण होता है। अतः इन तीनों फैटी एसिड की मात्रा पर आधारित एथोरोजीनिक इंडेक्स (ए.आई.) को दूध में विशेष महत्ता दी गई है।

- **गहन प्रबंध प्रणाली:** साहिवाल गाय के दूध में ओमेगा-6/ ओमेगा-3 फैटी एसिड का अनुपात सबसे कम पाया गया जोकि मानव आहार के लिए परिभाषित अनुपात 2:1 से 4:1 के बीच में था (तालिका-2)। सबसे अधिक अनुपात होल्स्टीन के दूध में था। साहिवाल गाय के दूध में संतृप्त फैटी एसिड को असंतृप्त फैटी एसिड में बदलने वाले एन्जाईम की मात्रा भी होल्स्टीन तथा संकर गायों की अपेक्षा अधिक पाई गई। एक ही आहार पर एक ही स्थान पर पलने के बावजूद यह सभी अन्तर साहिवाल, विदेशी व संकर गायों के बीच आनुवंशिक भिन्नता की तरफ इशारा करते हैं।

- **विस्तीर्ण प्रबन्धन प्रणाली:** चरने वाली देशी गायों के दूध में सभी फैटी एसिड सूचकांक, फार्म पर गहन प्रबन्धन में रहने वाली गायों की अपेक्षा कम होते हैं (तालिका -2)। ओमेगा-6/ ओमेगा-3 अनुपात का सबसे कम होना भी चराई के महत्व को उजागर करता है।

4) **खनिज लवण सरंचना:** दूध में पाए जाने वाले खनिज तत्व मानव पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें पाए जाने वाले मुख्य खनिज तत्व; कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम इत्यादि हैं। हालांकि दूध की खनिज सरंचना इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्वों में से पलने के तरीके व भोजन की भिन्नता से सबसे कम प्रभावित होती है। ऐसे ही परिणाम इस अध्ययन में भी देखने को मिले। गहन प्रबन्धन में तीनों वर्गों की गायों में खनिज तत्व दूध में एक समान ही थे (तालिका-3)। जबकि चरने वाली गायों के दूध में खनिज तत्वों की बहुलता पाई गई। इन चरने वाली गायों के दूध को खनिज तत्वों का समृद्ध स्रोत माना जा सकता है। खनिज, मनुष्य के चयापचय में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, अतः चरने वाली गायों का दूध उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य में सकारात्मक योगदान दे सकता हैं जैसे कि हड्डियों तथा नरम उत्तकों की वृद्धि, ऊर्जा संरक्षण व ऊर्जा के उपयोग के लिए। विशेषतय: युवा वर्ग को अधिक मात्रा में फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म खनिज (कॉपर, लौह और जिंक) एंजाइम के सह-कारक के रूप में कार्य करते हैं। उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोगों के लिए भी चरने वाली गायों का दूध लाभकारी हो सकता है क्योंकि सोडियम की मात्रा इनके दूध में कम होती है।

तालिका 3. साहिवाल, होल्सटीन फ्रीज़ियन और उनकी संकर गायों तथा चरने वाली देशी गायों के दूध की खनिज संरचना

खनिज (प्रति 100 ग्राम दूध)	साहिवाल		होल्सटीन फ्रीज़ियन		संकर		देशी गाय		सार्थकता
	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	
जिंक, माइक्रोग्राम	359.532^{a}	16.246	338.780^{a}	13.866	340.520^{a}	17.361	522.308^{b}	36.739	***
आयरन, माइक्रोग्राम	29.942^{a}	1.128	30.245^{a}	1.184	33.610^{a}	1.389	44.878^{b}	2.126	***
सोडियम, मिलीग्राम	41.353^{a}	0.896	47.195^{b}	1.554	48.348^{b}	2.323	25.490^{c}	1.749	***
कैल्शियम, मिलीग्राम	123.177	2.000	122.250	1.955	118.533	2.609	119.098	2.521	एन एस
मैग्नीशियम, मिलीग्राम	13.538	0.410	12.638	0.672	13.420	0.371	13.328	0.598	एन एस
पोटेशियम, मिलीग्राम	143.387	3.921	140.080	5.979	142.895	4.363	146.078	5.463	एन एस
फास्फोरस, मिलीग्राम	97.168^{a}	1.876	98.020^{a}	3.296	96.345^{a}	3.573	108.988^{b}	0.997	*
कॉपर, माइक्रोग्राम	9.732^{a}	0.494	9.975^{a}	0.528	10.988^{ab}	0.751	12.235^{b}	0.645	*

एन एस, गैर महत्वपूर्ण। एक पंक्ति में विभिन्न सुपरस्क्रिप्ट, मतलब काफी भिन्न। * पी <0.05, *** पी <0.001

5) **विटामिन सरंचना:** विटामिन की विस्तृत सरंचना तालिका-4 में संक्षेपित है। साहिवाल गाय के दूध में विटामिन ई की मात्रा (0.018 मिलीग्राम/100 ग्राम दूध), संकर तथा विदेशी गाय की तुलना में अधिक होती है परन्तु शेष सभी विटामिनों की मात्रा तीनो वर्गों की गायों में एक सामान ही होती है। विस्तीर्ण प्रबन्धन में चरने वाली देशी गायों के दूध में सभी विटामिन (विटामिन बी-5 को छोड़कर) गहन प्रबन्धन वाली तीनों वर्गों की गायों के दूध से अधिक होती है (पी<0.05)।

इनके दूध में विटामिन ए, सी, ई और बीटा कैरोटीन दोगुने से भी अधिक मात्रा में होते हैं। ये चारों विटामिन एंटीओक्सिडेंट की श्रेणी में आते हैं, अतः चरने वाली देशी गाय का दूध पीने से शरीर में ओक्सीडेटिव तनाव कम करने में भी मदद मिल सकती है। बीटा कैरोटीन का अधिक होना ही चरने वाली गायों के दूध तथा उससे बनें उत्पादों (खोया, पनीर, मक्खन) के अधिक पीले होने का कारण भी होता है। उपभोक्ता पीले रंग के उत्पादों को जैविक दूध से बना होने का संकेत भी मानते हैं। फलस्वरूप, उनका और अधिक मूल्य भी प्राप्त होता है।

तालिका 4. साहिवाल, होल्सटीन फ्रीज़ियन और उनकी संकर गायों तथा चरने वाली देशी गायों के दूध की विटामिन संरचना

विटामिन (मिलीग्राम/ 100 ग्राम दूध)	साहिवाल		होल्सटीन फ्रीज़ियन		संकर		देशी गाय		सार्थकता
	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	औसत	मानक त्रुटि	
विटामिन ए, माइक्रोग्राम	29.203[a]	1.030	31.398[a]	0.732	30.923[a]	2.006	60.015[b]	2.692	***
विटामिन ई, मिलीग्राम	0.018[a]	0.002	0.013[b]	0.001	0.010[b]	0.000	0.078[c]	0.002	***
बीटा कैरोटीन, माइक्रोग्राम	192.218[a]	8.752	179.309[a]	10.444	178.125[a]	9.781	440.431[b]	15.251	***
विटामिन बी 1, मिलीग्राम	0.050[a]	0.003	0.042[a]	0.006	0.047[a]	0.003	0.065[b]	0.003	*
विटामिन बी 3, मिलीग्राम	0.072[a]	0.005	0.079[a]	0.003	0.080[a]	0.004	0.105[b]	0.008	**
विटामिन बी 5, मिलीग्राम	0.311	0.009	0.323	0.012	0.340	0.011	0.352	0.009	एन एस
विटामिन बी 6, मिलीग्राम	0.040[a]	0.002	0.042[a]	0.002	0.050[b]	0.002	0.053[b]	0.004	**
विटामिन बी 2, माइक्रोग्राम	0.171[a]	0.005	0.173[a]	0.005	0.165[a]	0.005	0.235[b]	0.004	***
विटामिन सी, मिलीग्राम	0.182[a]	0.016	0.164[a]	0.017	0.135[a]	0.016	0.527[b]	0.052	***

एन एस, गैर महत्वपूर्ण। एक पंक्ति में विभिन्न सुपरस्क्रिप्ट, मतलब काफी भिन्न। * पी <0.05, ** पी <0.01, *** पी <0.001

6) **अमीनो एसिड सरंचना:** दूध में पाया जाने वाला प्रोटीन उच्च जैविक मूल्य वाला होता है क्योंकि इसमें मानव के लिए आवश्यक सभी अमीनो एसिड पाए जाते हैं। यह प्रोटीन भारत जैसे विकासशील देश के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ के भोजन में मुख्यतः गेहूँ व चावल से बने खाद्य पदार्थ ही होते हैं जिनमें सभी आवश्यक अमीनो एसिड नहीं पाए जाते। गहन प्रबंध प्रणाली में साहिवाल, विदेशी तथा संकर गाय के दूध में अमीनो एसिड एक समान मात्रा में पाए जाते हैं परन्तु चरने वाली देशी गायों के दूध में कुल (3.61 ग्राम/100 ग्राम दूध) तथा आवश्यक अमीनो एसिड (1.63 ग्राम/100 ग्राम दूध) गहन प्रबन्धन वाली गायों के दूध से (चित्र -1) अधिक होते हैं।

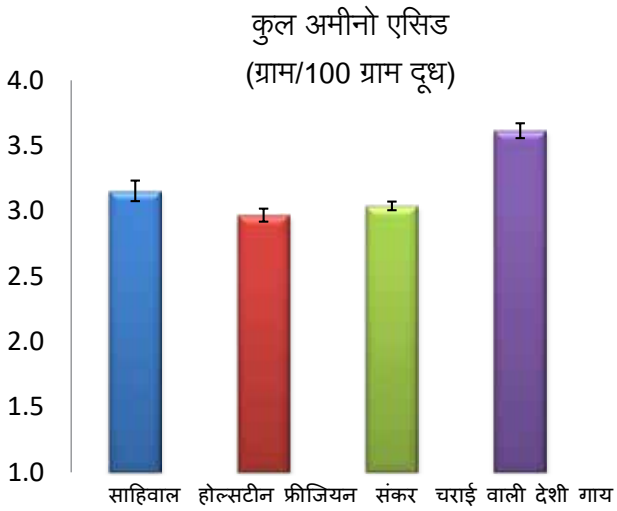

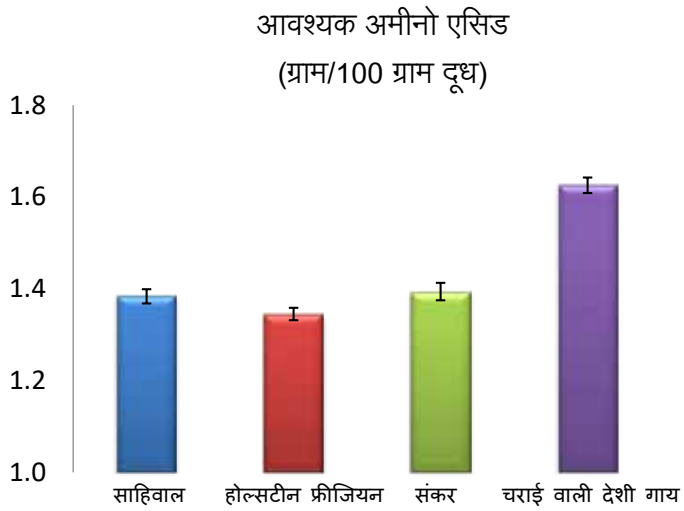

निष्कर्ष

चरने वाली देशी गायों का दूध गहन प्रबन्धन में पलने वाली गायों की अपेक्षा मानव स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अधिक उपयुक्त होता है। इनका दूध प्रोटीन, अमीनो एसिड, वसा, पोषक रूप से वांछनीय फैटी एसिड, विटामिन और खनिज तत्वों का एक बेहतरीन स्रोत है। भारत में दूध की अधिक उत्पादकता, गाय को पालने का उद्देश्य कभी भी नहीं रहा है क्योंकि गाय के दूध की गुणवत्ता के बारे में ही पारम्परिक लोककथाओं में वर्णन मिलता है। यह सम्भव है कि प्राचीन काल में गायों का चारागाहों में चर कर पलना ही उनके दूध के स्वास्थ्यवर्धक गुण का कारण था। आज के युग में भी जैविक दूध उत्पादन पर सारे विश्व में बल दिया जा रहा है। अतः विस्तीर्ण प्रणाली में पलने वाली भारतीय गायों के दूध को विशिष्ट आहार मानकर अधिक मूल्य दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से इनको पालने वाले किसानों को भी लाभ होगा और विदेशी गायों की तुलना में कम दूध देने वाली इस प्रकार की गायों का संरक्षण भी हो सकेगा।

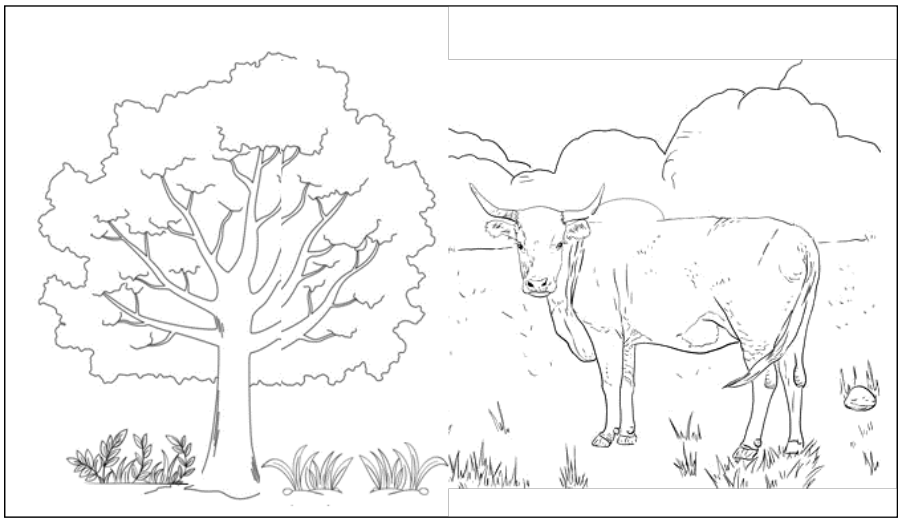

संभवतः प्राचीन काल में गायों का जंगल व चरागाहों में स्वछंद भरण पोषण ही उनके दूध को पौष्टिक तथा औषधीय गुणों से भरपूर 'अमृत' समकक्ष बनता था....

भारत में प्रजनन हेतु सांड़ो की स्थिति एवं उनका प्रबंधन

विकास सचान

मादा पशु रोग विज्ञान विभाग,

उप्र पं दीन दयाल उपाध्याय, पशु चिकित्सा विज्ञान वि वि एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा - 281001

एक सांड़ का महत्व किसी भी मादा पशु झुण्ड के बराबर होता है। अच्छे पशु पैदाईश के लिए केवल माता की शारीरिक स्थिति एवं उसका अच्छी नस्ल का होना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि अच्छे नस्ल के बच्चे के लिए माता एवं पिता दोनों से ही आधे-आधे गुण प्राप्त होते हैं, अपितु अच्छी नस्ल के पशु पैदाईश के लिए सांड़ का उतना ही महत्व होता है जितना कि मादा गाय का। आज-कल गर्भाधान की सबसे लोकप्रिय प्रक्रिया हिमीकृत वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान करने की है जिसमें अच्छी नस्ल के सांड़ के वीर्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है। कई स्थानों पर जहां प्राकृतिक गर्भाधान कराया जाता है वहां भी अच्छी नस्ल एवं स्वस्थ सांड़ की महत्ता होती है। नर सांड़ के उपयोग से होने वाले प्राकृतिक गर्भाधान से गर्भ ठहरने की दर कृत्रिम गर्भाधान की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

तालिका 1. 17वीं (2003), 18 वीं (2007), 19वीं (2012) एवं 20वीं (2019) पशु संगणना के अनुसार भारत में नर पशुओं (गायों और भैंसों) की स्थिति

		2003	2007	2012	2019
संकर/विदेशी सांड़	कुल (मिलियन)	4.94	6.84	5.97	3.46
	प्रजनन हेतु (मिलियन)	0.21	0.46	0.31	-
	प्रतिशत	4.25	6.72	5.19	-
देशी सांड़	कुल (मिलियन)	77.53	76.8	61.95	43.94
	प्रजनन हेतु (मिलियन)	2.03	2.2	2.08	-
	प्रतिशत	2.61	2.86	3.35	-
नर भैंस	कुल (मिलियन)	17.88	19.6	16.10	9.28
	प्रजनन हेतु (मिलियन)	0.64	0.9	0.83	-
	प्रतिशत	3.58	4.60	5.15	-

18वीं एवं 19वीं संगणना के अनुसार संकर/विदेशी सांड़, देशी सांड़ एवं नर भैंसों की कुल संख्या कम हुई है, परन्तु महत्वपूर्ण यह है कि 17 वीं पशु संगणना से लेकर 19वी संगणना तक देशी नर सांडो और नर भैसों का प्रजनन हेतु उपयोग की प्रतिशतता में वृद्धी हुई है। आज के समय में जहाँ कृत्रिम गर्भाधान की उपयोगिता बहुत तेजी से बढ़ी है वहीं उपर्युक्त आंकड़े बताते हैं कि आज भी कई क्षेत्रों में कृत्रिम गर्भाधान के लिए नर पशुओं का उपयोग किया जा रहा है। अर्थात नर पशु जिन्हें प्रजनन हेतु उपयोग किया जाता है उनका उचित प्रबंधन अतिआवश्यक है। प्रजनन हेतु उपयोग होने वाले सांड़ के रख रखाव एवं प्रबंधन से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे कि:

- नर पशु प्राकृतिक रूप से उत्तेजित प्रकृति के होते हैं, अतः उन्हें हमेशा जंजीर अथवा रस्सी से बाँध कर रखना चाहिए। नाक के छल्ले का इस्तेमाल अति आवश्यक है।

- उसे ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहां सीधी धूप एवं सीधी बारिश नहीं आती हो। गर्मी के मौसम में तेज एवं सीधी लू तथा सर्दी में सीधी लगने वाली ठंडी हवा से बचाना चाहिए।
- उसे मजबूत एवं कम से कम 6-7 फूट ऊँची चार दीवारी वाले बाड़े में रखना चाहिये। उसमें कुछ स्थान ढ़का एवं कुछ स्थान खुला होना चाहिए जिससे सांड़ पर्याप्त धूप ले सकें जोकि शरीर में कैल्सियम एवं विटामिन डी के लिए अति आवश्यक है। बाड़ा हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिए।
- फर्श पक्का एवं फिसलन रहित होना चाहिए जिससे सांड़ आसानी से घूम सकें तथा सफाई भी आसानी से की जा सके।
- सांड़ बाड़े में हर हफ्ते कम से कम एक बार अच्छी तरह सफाई करके चूने का छिड़काव करना लाभदायक रहता है।
- पानी निकासी का उचित प्रबंध होना चाहिए। सांड़ बाड़े में पानी का ठहराव नहीं होना चाहिए।
- सांड़ को प्रतिदिन कम से कम एक बार नहलाना चाहिए, गर्मी में दो या तीन बार भी नहलाया जा सकता है। नहलाने के साथ-साथ ब्रश का उपयोग करके शरीर की सफाई करनी चाहिए। यह प्रक्रिया शरीर में रक्त संचार को बेहतर करती है और किसी प्रकार के चोट अथवा घाव को भी आसानी से देखा जा सकता है।
- सांड़ को प्रतिदिन व्यायाम का प्रबंध करना चाहिए। 1 से 2 किलोमीटर प्रतिदिन टहलाना पर्याप्त होता है। इससे शरीर में उर्जा एवं स्फूर्ति बनी रहती रहती है जोकि प्रजनन के लिए अति आवश्यक है।
- प्रतिदिन कम से कम 15 किलो हरा चारा, 6-7 किलो सूखा भूसा एवं 2-5 किग्रा दाना देना चाहिए। साफ़ एवं स्वच्छ पानी की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में हर समय होनी चाहिए। पानी प्रतिदिन बदलते रहना चाहिए।
- प्रजनन हेतु सांड़ की आयु कम से कम 2 से 2.5 साल तथा वजन लगभग 280 किग्रा होना चाहिए।
- सांड़ के लिंग निकलने के स्थान के बालों को हर महीने काटते रहना आवश्यक है। उनकी लम्बाई लगभग 2 सेमी होनी चहिये। अधिक छोटे बाल जलन तथा खुजली पैदा कर सकते है एवं अधिक बड़े बाल होने से गोबर, धूल इत्यादि गन्दगी चिपकी रह सकती है।
- एक सांड़ को परिपक्व होने के बाद 4 से 5 साल तक प्रजनन के लिए उपयोग किया जा सकता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ वीर्य की गुणवत्ता तथा सांड़ की प्रजनन करने की इच्छा एवं क्षमता क्षीण होती जाती है।
- प्रजनन के समय किसी प्रकार का तनाव जैसे अचानक तेज ध्वनि, अपरचित व्यक्ति का पास खड़े होना, डंडे का प्रयोग करना इत्यादि सर्वथा उचित नहीं होता है।

शिश्न के स्थान के बालों की सफाई

फब्बारे के उपयोग से नहाते हुए

- सांड़ को सदैव मधुर वाणी या ध्वनि से पुकारना, शोर ना करना, उत्तेजित ना करना, मार-पीट ना करना, तनावपूर्ण स्थितियां पैदा ना करना आदि प्रबंधन को आसान बनाता है।
- प्रजनन के लिए एक सांड़ का प्रयोग प्रतिदिन एक या दो मादा पशुओं को गाभिन करने के लिए करना चाहिए। अच्छे परिणाम तथा प्रजनन क्षमता को संतुलित रखने के लिए एक दिन के अंतर पर विश्राम देना उचित रहता है जिससे गर्भ ठहरने के आसार अधिक होते हैं। परन्तु किसी भी सांड़ को अधिक और प्रतिदिन वीर्यदान या अधिक दिनों तक बिना वीर्यदान के रखने से प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है साथ ही साथ वीर्य की गुणवत्ता भी गिर जाती है।
- पशुचिकित्सक की सलाह से अन्तः तथा वाह्य परिजीवों को मारने की दवा एवं नियमित रूप से बीमारियों के टीके लगवाने चाहिए।
- सांड़ के आचरण में परिवर्तन, खाने पीने में परेशानी, गोबर या पेशाब में अवांछनीय परिवर्तन एवं बुखार इत्यादि की स्थिति में तुरंत इलाज का प्रबंध करना चाहिए।
- रात के समय में कोई आवारा पशु, आवारा कुत्ते इत्यादि सांड़ बाड़े के आस-पास ना आ सके ऐसा प्रबंध करना चाहिए।
- पशुपालक या सांड़ की देखरेख करने वाले व्यक्ति का आवास सांड़ बाड़े से बहुत दूर नहीं होना चाहिए, जिससे वह किसी आकस्मिक स्थिति में तुरंत सांड़ के लिए उपलब्ध रह सके।

इन कुछ आधारभूत बातों का ध्यान रखने से सांड़ का प्रबंधन आसान बनाया जा सकता है तथा उनकी प्रजनन क्षमता का अधिकतम एवं समुचित उपयोग किया जा सकता है।

गौ कोलोस्ट्रम की संरचना और इसके लाभ: एक समीक्षा

मोनिका सोढ़ी, प्रिंस विवेक, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

गाय के दूध में उपस्थित पोषक तत्वों के कारण, सदियों से इसे प्रकृति का सर्वोतम आहार माना गया है। यह प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण तथा विटामिन्स सहित कई पोषक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षो में यह भी पता चला है कि गाय के दूध में एंटिथ्रोम्बोंटिक, एंटिहाइपरटेंसिव, इम्म्युनो-मोडूलेट्री, एंटिमाईक्रोंबियल, एंटिऑक्सीडेंट, व कैंसर रोधक गुण भी पाये जाते हैं। भारतीय गायों के दूध में उपस्थित रोग प्रतिरोधक क्षमता व बीटा केसीन की ए2- एलील की शत प्रतिशत उपस्थिति के कारण इसे विदेशी नस्लों के दूध की तुलना में उत्तम माना जा रहा है। पूरे विश्व में कई तरह के दुधारू जानवर पाले जाते हैं जिनमें गाय, भैंस, भेड़, व बकरी प्रमुख हैं, लेकिन इन सभी में गाय को महत्वपूर्ण माना गया है। भारत में गाय के दूध को अमृत का दर्जा दिया जाता है। वैसे तो हमारे देश में संकर और विदेशी नस्ल की गाय भी उपलब्ध हैं, परन्तु देशी गाय के दूध को बेहतर माना गया है। इसके सेवन से कई तरह की बिमारियों से लड़ने की क्षमता आती है।

हाल ही में गाय के दूध के अलावा गौ (बोवाइन) कोलोस्ट्रोम या खीस के सेवन को भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है। प्रकृति ने स्तनधारी जीवों को अपने नवजात शिशुओं के पोषण के लिए स्वयं के शरीर से ही स्तनग्रन्थियों द्वारा दुग्ध क्षरण होने की क्षमता दी है। स्तनधारी मादा पशु बच्चा जनते ही खास प्रकार का दूध उत्पन्न करने लगती है जिसे उपयोग कर नवजात बछड़े की वृद्धि सुचारू रूप से होती है। प्रसव के बाद के इसी पहले दूध को कोलोस्ट्रम कहा जाता है। कोलोस्ट्रोम या खीस नवजात शिशु की प्राथमिक आहारीय आवश्यकताओं का पूरक है। यह पीले से नारंगी रंग का गाढ़ा व चिपचिपा प्रदार्थ होता है, जो गर्भावस्था के अंतिम चरण में स्तन ग्रंथियो के द्वारा निर्मित होता है और इसका स्त्राव नवजात के जन्म के बाद दो-तीन दिनों तक रहता है (ब्रियन अट आल, 2015)। यह नवजात बछड़े के पोषण, विकास और रोग प्रतिरक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोलोस्ट्रोम या खीस में प्रोटीन्स के साथ-साथ सभी खनिज भी भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं, जो नवजात के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अति आवश्यक होते हैं। चिकित्सा और जन-कल्याण के लिए कोलोस्ट्रम के उपयोग की प्रथा हजारों साल से चली आ रही है। आयुर्वेदिक चिकित्सक और भारत के ऋषि अतीत में 5000 वर्ष पूर्व से औषधीय प्रयोजनों के लिए कोलोस्ट्रम का उपयोग कर रहे हैं। आयुर्वेद महाकाव्य भवप्रकाश में गौ कोलोस्ट्रम की महत्ता का स्पष्ट रूप से वर्णन है। विभिन्न शोध पत्रों से पता चला है जिन नवजात बछड़ों को जन्म के बाद कोलोस्ट्रोम या खीस पान नहीं कराया जाता उनमें बिमारियों के संक्रमण का खतरा अधिक होता है और कई बार उनकी मृत्यु तक हो जाती है।

गौ कोलोस्ट्रम एक ऐसा जैविक भोजन है जिसमें पौषक तत्वो एवं प्रतिरक्षा कारकों की प्रचुर मात्रा होती है, जो नवजात बछड़े में निष्क्रिय प्रतिरक्षा (पैसिव इम्युनिटी) में मुख्य भूमिका निभाते हैं। कोलोस्ट्रोम में रोग प्रतिरोधक लयूकोसाईट, विभिन्न प्रकार की एंटीबॉडीस, साईटोकाईंस, केमोकाईंस और इम्युनोग्लोबुलिन्स (आईजी जी, आईजी एम, आईजी ए) पाए जाते हैं। कोलोस्ट्रम में मौजूद रोगाणुरोधी कारक संक्रमण के खिलाफ नवजात की रक्षा करने के लिए कार्य करते हैं, विशेष रूप से जन्म के बाद पहले हफ्तों में, साथ ही साथ यह बछड़े के जठरांत्र प्रणाली के विकास में सहायता करते

है (निकोलिक एट अल, 2017)। कोलोस्ट्रम की संरचना प्रजाति, नस्ल, खाद्य प्रबंधन और प्रोसेसिंग विधि के प्रभाव से बदल सकती है (तालिका 1, मेन्चेट्टी एट अल, 2016)। गौ कोलोस्ट्रम में औसत वसा और प्रोटीन मात्रा दूध में पाये जाने वाली वसा और प्रोटीन से कहीं अधिक होती है (तालिका 1)। कोलोस्ट्रम की समृद्ध संरचना जैसे की उच्च मात्रा में उपस्थित ठोस, प्रोटीन, इम्युनोग्लोबुलिन, वसा और वृद्धि कारक तत्व (ग्रोथ फैक्टर) इत्यादि, उपयोग न केवल फार्मास्यूटिकल्स उत्पाद बल्कि खाद्य सप्लीमेंट के रूप में भी किया जा सकता है (मार्निला और कोरहोनेन, 2011; युर्चेको एट अल 2016)। इसका कैंसर, अल्सर, एड्स, कोरोनरी हृदय रोग, मस्तिष्क रोग आदि के उपचार हेतु औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जाने लगा है। मनुष्यों के लिए गौ कोलोस्ट्रम के लाभों पर सम्पूर्ण रूप से अध्ययन किया जाना बाकी है। अत:यह जानना अति आवश्यक है कि कोलोस्ट्रोम/ खीस क्या है और इसके मुख्य अवयव कौन कौन से हैं? वर्तमान समीक्षा का उद्देश्य कोलोस्ट्रम की पोषण संरचना, इसमें उपस्थित अवयव, यौगिकों और अन्य विकास कारक तत्वों का अध्ययन तथा इन सबकी मानव विकास के लिए उपभोग की संभावना तलाशना है।

गौ कोलोस्ट्रम/ खीस की संरचना

खीस स्तनधारियों में प्रसव के बाद का पहला गाढ़ा दूध है। इसकी संरचना परिपक्व (मैच्योर) दूध से भिन्न है, क्योंकि इसमें ठोस प्रोटीन, इम्युनोग्लोबुलिन्स, वसा, अमिनो अम्ल, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण, विटामिन्स तथा विकास कारक तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं (मार्निला और कोरोहेन, 2011)। संरचना में अंतर के कारण गौ खीस और परिपक्व दूध के जैविक गतिविधियों में भी अंतर पाया गया है (मैकग्राथ एट अल।, 2016)। जैसा कि कहा गया है किसी भी खाद्य पदार्थ का पौषणिक मान उसमें विद्यमान विभिन्न अवयवों तथा घटकों के पौषणिक मान पर निर्भर करता है। गौ कोलोस्ट्रम के पौषणिक मान पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न अवयवों के घटकों की विशिष्ट महत्ता निम्नवत वर्णित है:

कोलोस्ट्रम में शर्करा (कार्बोहाइड्रेट)

लैक्टोज

खीस में पाई जाने वाली मुख्य शर्करा लैक्टोज है, किन्तु दूध की अपेक्षा लैक्टोज का स्तर खीस में कम पाया गया है। प्रसव के प्रारंभिक दूध में लैक्टोज का स्तर काफी कम (1.2%) होता है, तत्पश्चात इसमें निरंतर वृद्धि होती है जबतक कि इसका स्तर सामान्य मान तक नहीं पहुंच जाता (अल-फतह एट अल 2012). लैक्टोज दूध के आसमाटिक दबाव को नियमित करता है। अत: यह पानी की आमद, दूध की कुल मात्रा और दूध में केसिन के स्तर को नियंत्रित करता है। लैक्टोज का स्तर कम होने के कारण कोलोस्ट्रम में ओस्मोरगुलेटरी गतिविधियाँ अनुपस्थित होती हैं जिसके परिणामस्वरूप इसमें पानी कम मात्रा में होता है और यह बेहद चिपचिपा होता है (ब्लेक एट अल। 2009)। लैक्टोज का मुख्य कार्य भी वसा की तरह ही शरीर के लिए ऊर्जा पैदा करना है। परंतु अन्य डाइसैकराइडस की तरह बिना ग्लूकोस एवं गैलेक्टोज में टूटे यह आंतों द्वारा शरीर में अवशोषित नहीं हो पाता है। लैक्टोज आंतो के आखिरी हिस्सों में आकर शरीर के लिए कई उपयोगी कार्य करता है। इसकी उपयोगिता निम्नवत है:

- पाचन तंत्र में जिस किण्वक से यह विघटित हो सकता है उसकी शरीर में कमी होने के कारण यह शीघ्र नही पच पाता। आँतों में लैक्टोज किण्वन से कुछ वांक्षित जीवाणुओं की वृद्धि होती है, जो कुछ पानी में घुलनशील विटामिन का संश्लेषण करते हैं शरीर के विकास तथा वृद्धि के लिए यह गुणकारी है।
- आँतों से कैल्सियम, फास्फोरस तथा अन्य खनिज जैसे मैग्नीशियम इत्यादि के अवशोषण में लैक्टोज एवं एमीनो लैक्टोज की उपयोगिता काफी अच्छी तरह से सिद्ध की जा चुकी है।
- लैक्टोज चूँकि आँतों में अम्लीय दशा उत्पन्न कर देता है जिसकी वजह से आँतों में गैस पैदा करने वाली प्रोटीन का किण्वन भी रुक जाता है। इससे शरीर में विषैले पदार्थ एवं गैस कम बनते हैं।
- गैलेक्टोज जोकि लैक्टोज के विघटन से प्राप्त होता है, मस्तिष्क के आवश्यक अवयव- सेरी ब्रोसाइड बनाने में सहायक होता है, अत: यह मस्तिष्क विकास में प्रमुख भूमिका निभाता है।
- ऐसा पाया गया है कि दुग्ध वसा तथा लैक्टोज के मिश्रण के सेवन से शरीर की वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी होती है।
- यह शरीर में कुछ हद तक वसा संग्रह को रोकता है।

ऑलिगोसेकेराइड्स

लैक्टोज के अलावा, खीस में कुछ अन्य शर्कराएं जैसे ग्लूकोज, फ्रुक्टोज, ग्लूकोसामाइन, गैलेक्टोसामाइन, एन-एसिटाइल्युरैमिनिक एसिड और ऑलिगोसेकेराइड्स भी पाये जाते हैं। खीस में ओलिगोसेकेराइड की मात्रा लगभग 0.7 से 1.2 ग्राम/एमएल तक

आँकी गई है जबकि दूध में यह केवल ट्रेस मात्रा होते हैं (गोपाल और गिल 2000)। आज तक, गौ खीस में 40 ओलिगोसेकेराइड की पहचान की गई है (बाराइल एट अल 2010) । इनमें 3' सियालिलैक्टोज़, 6' सियालिलैक्टोज़, 6' सियालिलैक्टोसामाइन और डिसइलेक्टैक्टोस प्रमुख ऑलिगोसेकेराइड हैं । इनका स्तर खीस में प्रसव के तुरंत बाद उच्चतम होता है और 48 घंटे के बाद एकदम घट जाता है जबकि तटस्थ ओलिगोसेकेराइड के स्तर में वृद्धि होती है । 3' सियालिलैक्टोज़ कुल ओलिगोसेकेराइड का लगभग 70% होता है। हालाँकि ओलिगोसेकेराइड की मात्रा बहुत कम होती है लेकिन इनका योगदान बड़ी आँतों में कुछ लाभदायक जीवाणुओं के पनपने में पाया गया है।

कोलोस्ट्रोम/ खीस में प्रोटीन्स

खीस में प्रोटीन्स ~15 प्रतिशत तक पाई जाती हैं। किसी भी खाद्य पदार्थ में कुल प्रोटीन से अधिक महत्वपूर्ण उसकी गुणवत्ता है। अर्थात उसमें कितने आवश्यक एमीनो अम्ल हैं और उसकी शरीर के लिए उपयोगिता (बायलोजिकल मान) कितनी है? एक अच्छी किस्म की प्रोटीन में सभी आवश्यक एमीनो अम्ल अच्छी मात्रा में होने चाहिए, ऐसा होने पर उसकी बायलोजिकल मान भी अधिक हो जाती है। खीस में प्रोटीन सभी आवश्यक एमीनो अम्ल से भरपूर होते हैं। ये एमीनो अम्ल शरीर में किसी क्रिया से नही बन पाते। अत: इनका आहार में रहना आवश्यक है। शरीर के लिए 10 एमीनो अम्ल की आवश्यकता होती है और यह सभी खीस में प्रचुर मात्रा में पाए जाते है इसलिए कोलोस्ट्रम के प्रोटीन की गुणवत्ता अच्छी मानी गई है।

खीस में केसीन की सांद्रता दूध की तुलना में अधिक होती है। सोबिसुक-सजुल एट अल (2013) ने बताया कि प्रारंभिक पोस्ट-पार्टम दूध में अल्फा एस केसिन की मात्रा कम होती है और समय के साथ बढ़ती रहती है, इसके विपरीत कापा केसिन की मात्रा प्रसव के शुरुआती समय में ज्यादा होती है और समय के साथ कम होती रहती है जबकि बीटा केसिन की मात्रा स्थिर रहती है। खीस में पाये जाने वाले इम्युनोग्लोबुलिन्स मुख्यत: तीन प्रकार के हैं : आईजीजी, आईजी एम, आईजी ए जोकि कुल प्रोटीन का 70-80% होता है जबकि दूध में यह कुल प्रोटीन का केवल 1% व् व्हेय प्रोटीन का 6% होते हैं। कोलोस्ट्रम में इम्युनोग्लोबुलिन्स की इस उच्च मात्रा (30 से 200 एमजी/एमएल) का विशेष महत्व है क्योंकि यह नवजात बछड़े को पैसिव प्रतिरक्षा (इम्युनिटी) प्रदान करती है (झांग एट अल 2011)। अलग अलग इम्युनोग्लोबुलिन्स में से, कोलोस्ट्रम में, आईजीजी1 की मात्रा का सबसे अधिक (75%) समावेश है, इसके बाद क्रमशः आईजीएम, आईजीए और आईजीजी2 की मात्रा पाई जाती है। इन सभी इम्युनोग्लोबुलिन्स की मात्रा में प्रसव के बीतते समय के साथ गिरावट आती जातीं है (कोरोहेन एट अल 2000)। आईजीजी का उपयोग एक अत्यंत प्रभावी एंटीमाइक्रोबियल एजेंट के रूप में किया जा सकता है क्योंकि यह आंतों के माइक्रोबायोटा में रेजिस्टेंस का कारक नहीं बनता।

बीटा-लैक्टोग्लोबुलिन (ß-lg) और अल्फा-लैक्टाल्बुमिन (ß-la) की सांद्रताभी कोलोस्ट्रम में दूध की तुलना में अधिक पाई गई है (जार्जिएव 2008) । कोलोस्ट्रम में बीटा-लैक्टोग्लोबुलिन की प्रारंभिक सांद्रता 7.9 से 30 एमजी/एमएल तक उल्लेखित है जबकि इसकी औसत मात्रा पहले दूध में 14 एमजी/एमल, और इसके बाद तेजी से गिरते हुए दूसरे से चौथे दूध में 8 एमजी/एमएल तक दर्ज की गई है । 16 वें दुहने तक इसकी कमी क्रमिक होती है तथा इसकी औसतन मात्रा 5 एमजी/एमएल तक पाई गई है। इसी तरह की प्रवृत्ति गौ सीरम एल्ब्यूमिन की सांद्रता में भी देखी गई है । खीस में गौ सीरम एल्ब्यूमिन का स्तर (2.63 एमजी/एमएल) दूध की तुलना में अधिक पाया गया है। यह स्तर प्रसव के 24 घंटे के भीतर काफी कम हो जाता है और दूसरे सप्ताह तक इसका मान कम हो कर सामान्य (0.2 एमजी/एमएल) तक पहुंच जाता है (झांग एट अल। 2011)। कोलोस्ट्रम में सीरम एल्ब्यूमिन छोटे अणुओं यानी एडिपोसाइट्स से निकले फ्री फैटी एसिड के परिवहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (झांग एट अल 2011)।

खीस की संरचना में लैक्टोफेरिन, लैक्टोपरोक्सीडेज और लाइसोजाइम, जिनमें रोगाणुरोधी और एंटीवायरल विशेषताएं होती हैं, का महत्वपूर्ण योगदान है । लैक्टोपरोक्सीडेज लिपोसैकेराइड गठबंधन पर काम करता है और बैक्टीरिया के विकास को नियंत्रित करता है, जबकि लैक्टोफेरिन में कई -ग्रामपॉजिटिव और ग्राम नेगेटिव बैक्टीरिया को नियंत्रित करने के साथ-साथ एंटीवायरल विशेषताएँ भी होती हैं। लाइसोजाइम ग्राम पॉजिटिव बैक्टीरिया के पेप्टिडोग्लाइकेन घटक पर कार्य करता है और बैक्टीरिया को समाप्त करता है। खीस के रोगाणुरोधी, एंटिफंगल और एंटीवायरल क्रियाएं एस्चेरिचिया कोलाई, रोटावायरस और क्रिप्टोस्पोरिडियम जैसे कुछ रोगजनकों के विनाश का कारक भी बनती हैं (बाग्वे एट अल ।, 2015)। विसन (2012) के अनुसार, मानवीय आहार में गौ कोलोस्ट्रम का उपयोग करने से प्रतिरक्षात्मक शक्ति में वृद्धि का एक कारण पाचन प्रक्रिया के बाद

भी कुछ बायोएक्टिव घटकों का संभावित अस्तित्व है जो प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में योगदान देने में सक्षम होते हैं। लैक्टोफेरिन स्तनधारी मूल का एक आयरन -बाध्यकारी ग्लाइकोप्रोटीन है जो स्तन ग्रंथि की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूध में लैक्टोफेरिन की सांद्रता 0.02 से 0.75 एमजी /एमएल तक होती है जबकि कई शोधकर्ताओं ने कोलोस्ट्रम में लैक्टोफेरिन की सांद्रता दूध की तुलना में 30-100 गुणा अधिक पाई है (सोबिसुक-सजुल एट अल 2013; इंडिक और फिलॉन्जी 2005)। विभिन्न निष्कर्षों से संकेत मिलता है की लैक्टोफेरिन की सांद्रता सोमेटिक सेल स्कोर, बीएसए स्तर और उत्पादित दूध की मात्रा पर निर्भर करती है (चेंग एट अल। 2008)। आमतौर पर, कोलोस्ट्रम में लैक्टोफेरिन की सांद्रता 1.5 से 5 एमजी /एमएल तक होती है। इनके इलावा कोलोस्ट्रम में माइनर प्रोटीन्स की भी पहचान की गई है। निस्सन एट अल (2002) ने 2 डी मास स्पेक्ट्रोमेट्री तकनीक का इस्तेमाल कर कोलोस्ट्रम में कुल 403 माइनर प्रोटीन्स की पहचान की थी।

कोलोस्ट्रम में लिपिड्स

कोलोस्ट्रम वसा ऊर्जा का अच्छा श्रोत है। प्रोटीन एवं शर्करा की अपेक्षा दो गुना से ज्यादा ऊर्जा प्रतिग्राम वसा से प्राप्त होती है। 5 प्रतिशत वसा वाले एक लीटर दूध से लगभग 450 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। आवश्यक वसीय अम्ल जैसे लिनोलिक अम्ल शरीर द्वारा नही बनाया जा सकता है। इसीलिए आहार में इसकी उपस्थिति आवश्यक है। ये आवश्यक अम्ल शरीर के कई तंत्रों की बनावट के लिए अत्यंत उपयोगी होते हैं। कई वैज्ञानिकों का तो यहाँ तक कहना है की शरीर के लिए जरुरी कुल ऊर्जा का 1-3 प्रतिशत आवश्यक वसीय अम्लो द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए। कोलोस्ट्रम वसा में पाए जाने वाला स्टेराल जिसमें कोलेस्ट्राल मुख्य है कि भी मानव पोषण में काफी उपयोगिता है। इससे विभिन्न किस्मों के हार्मोन्स बनने में सहायता मिलती है। विटामिन डी की भी संरचना इसी द्वारा होती है। विभिन्न कोशिकाओं की बनावट में भी इसे पाया गया है।

अलग-अलग फैटी एसिड की मात्रा के संदर्भ में विभिन्न वैज्ञानिकों ने बताया कि प्रसव के पहले सप्ताह में स्टीयरिक एसिड, ओलिक एसिड और शॉर्टचैन फैटी एसिड (सी4-सी 10) का अनुपात कोलोस्ट्रम में कम होता है और फिर यह धीरे-धीरे बढ़ता है। इस के विपरीत सी12- सी16 की सापेक्ष मात्रा, (विशेष रूप से मैरिस्टिक और पामिटिक एसिड की) जो शुरू में उच्च पाई गई, समय के साथ कम हो जाती है। कोलोस्ट्रम में C18: 0 और C18: 1 का स्तर भी ज्यादा पाया गया है। कोलोस्ट्रम में लंबी श्रृंखला के फैटी एसिड उच्च स्तर में मौजूद होते हैं क्योंकि, प्रसव के समय, गाय एक नकारात्मक ऊर्जा संतुलन में होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप वसा ऊतक फैटी एसिड का चयापचय होता है, नतीजन प्राप्त लंबी श्रृंखला के फैटी एसिड का दूध वसा में जमाव हो जाता है। लंबी श्रृंखला फैटी एसिड के उच्च स्तर शॉर्ट-चेन फैटी एसिड के संश्लेषण को भीरोकते हैं।

कोलोस्ट्रम में पाए जाने वाले वसा के मुख्य कार्य निम्नवत है:

- वसा कोलोस्ट्रम में सूक्ष्म गोलिकाओं के रूप में रहती है। जिसकी वजह से पाचन तंत्रों में किण्वन क्रिया को ज्यादा स्थान मिलता है इसी वजह से यह जल्दी पच जाती है।
- यह ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण श्रोत है।
- कोलोस्ट्रम/खीस में पाए जाने वाले स्टेराल हार्मोन्स बनाते है।
- कोलोस्ट्रम में उपस्थित कम अणुभार वाली वसीय अम्लें पाचन तन्त्र से कैल्सियम के अवशोषण में वृद्धि करती है।
- वसा घुलनशील विटामिन की भी आपूर्ति करती है।

कोलोस्ट्रम में मौजूद कुछ वसा, जैसे संयुग्मित लिनोलिक एसिड, कैंसर को रोकने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (गोधिया और पटेल, 2013)। गौ कोलोस्ट्रम के लिपिड प्रोफाइल में संतृप्त (सैचुरेटेड) फैटी एसिड की की मात्रा कम आँकी गई है जबकि मोनोअनसैचुरेटेड और पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड की मात्रा तुलनात्मक रूप से काफी अधिक होती है। दूध की तुलना में सैचुरेटेड फैटी एसिड की कम मात्रा के कारण और साथ ही साथ लिनोलिक-संयुग्मित एसिड जैसे अनसैचुरेटेड फैटी एसिड की उच्च मात्रा के कारण कोलोस्ट्रम एक संभावित फंक्शनल खाद्य विकल्प के रूप में उभरा है।

कोलोस्ट्रम में खनिज प्रदार्थ

गौ कोलोस्ट्रम में सभी प्रमुख खनिज पदार्थ जैसे कैल्सियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, सोडियम, क्लोराइड, पोटैशियम, एवं सल्फर शरीर की आवश्यकता के अनुसार अच्छी मात्रा में पाए जाते है। दूसरी श्रेणी (माइनर) के खनिजों में जिंक, आयोडीन, मैगनीज, फ़्लोरिन, मालीविडिनम एवं कोवाल्ट भी अच्छी मात्रा में पाए जाते है। इसी प्रकार सूक्ष्म श्रेणी के सभी खनिज लवण भी आवश्यकता के अनुरूप ही कोलोस्ट्रम में पाए जाते है और इनकी मात्रा दूध से

अधिक होती है। जैसे की कोलोस्ट्रम में कैल्शियम और फॉस्फेट की औसत सांद्रता दूध में पाइ जाने वाले सांद्रता से लगभग 4 गुना और 5 गुना होती है। केहो एट अल (2007) ने बताया कि कोलोस्ट्रम में तांबा, लोहा, जस्ता और मैंगनीज का औसत स्तर दूध की तुलना में क्रमश: 1.7-, 10.7-, 10.9- 3.3 गुना अधिक है। कोलोस्ट्रम में उपस्थित खनिज पदार्थ नवजात बछड़े शरीर के पोषण में काफी उपयोगी है। शरीर अलग-अलग कार्यों को करने के लिए खनिजों का उपयोग करता है जैसे कि- हार्मोन बनाने एवं मजबूत हड्डियों के निर्माण से लेकर तंत्रिका आवेगों को संचारित करने तक। इन खनिज तत्वों की उपयोगिता निम्न बिन्दुओं से आंकी जा सकती है:

- ज्यादातर खनिज कई किस्म के किण्वक के कार्यो का संचालन करते है।
- शरीर में अम्ल एवं क्षारीय समीकरण को बनाए रखने में इनका काफी योगदान है।
- आवश्यक तत्वों को कोशिका के अंदर पहुँचाने का कार्य भी खनिज पदार्थ ही करते है।
- शरीर के कई हिस्सों जैसे हड्डियां एवं दांतों की बनावट में भी खनिज पदार्थो का हाथ होता है।
- कुछ खनिज जैसे कोबाल्ट, विटामिन बी 12 की संरचना में भी उपयोगी होते हैं। इसी प्रकार लोहा हिमोग्लाबुलिन की बनावट का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।
- कुछ खनिज कई परिस्थितयों में बफर का कार्य करते है, यानि पी.एच. स्तर को बढ़ने या घटने से रोकते है।
- ऊर्जा के चयापचयन में फास्फोरस एटीपी की प्रमुख भूमिका होती है।

कोलोस्ट्रम में विटामिन्स

विटामिन्स ऐसे कार्बनिक पदार्थ है जो कि शरीर द्वारा नही बनाए जा सकते है। इसलिए आहार में इनका मिलाया जाना आवश्यक है संयोग वसा दूध में सभी आवश्यक विटामिन्स प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। दूध को आहार का एक हिस्सा बनाने पर शरीर की सभी विटामिन्स की आवश्यकताएं लगभग पूरी हो जाती है। वसा विलेय तथा जल विलेय विटामिन किसी अन्य खाद्य पदार्थ में इतनी अधिक मात्रा में नही पाए जाते है जितना की दूध में। इसलिए विटामिन्स की उपस्थिति से दूध के पोषक मान में काफी बढ़ोत्तरी होती है। शरीर की सामान्य वृद्धि, उत्तम स्वास्थ्य तथा प्रजनन क्षमता को सुचारू रूप से चलते रहने के लिए इन विटामिन्स की विशेष आवश्यकता होती है। विटामिन्स विभिन्न उपाचयन की क्रियाओं को नियमित करने में सहयोग देते हैं। इनके अभाव से शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग लक्षण प्रगट होने लगते है जैसे – रतौधी, रिकेट्स, खून का न जमना, बांझपन, स्कर्वी इत्यादि। विटामिन ए दूध में विभिन्न रूपों जैसे की रेटिनॉल, रेटिनोइक एसिड, रेटिनाइल एस्टर के साथ-साथ प्रोविटामिन ए कैरोटीनॉयड जैसे बीटा–कैरोटीन, में मौजूद होता है। कई लेखकों ने खीस में विटामिन ए का स्तर अधिक होने की जानकारी दी है (डिबियर एट अल 2005)। विटामिन ए और कैरोटीनॉयड की मात्रा में लैक्टेशन के पहले कुछ दिनों के भारी कमी आ जाती है फिर 5 दिनों के तत्पश्चात इनकी मात्रा स्थिर हो जाती है। इसी प्रकार विटामिन डी और विटामिन ई का स्तर कोलोस्ट्रम में दूध की तुलना में कहीं अधिक होता है (ब्रायन एट अल 2016)।

एस्कॉर्बिक एसिड (विटामिन सी) की कोलोस्ट्रम में खास महत्तता है क्यूंकि नवजात बछड़ा लगभग 3 सप्ताह की उम्र तक विटामिन सी को संश्लेषित नहीं कर करता है। इसका एक मात्र स्त्रोत इस दौरान पिया गया दूध होता है। विटामिन सी की सांद्रता दूध में 1.65 से 2.75 मिलीग्राम/100 ग्राम तक होती है। कोलोस्ट्रम में विटामिन सी की औसत मात्रा 2.11 मिलीग्राम/100 ग्राम जोकि दूध की तुलना में थोड़ी अधिक होती है। बी समूह के विटामिन्स जैसे की - थायमिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, बायोटिन, पैंटोथेनिक एसिड, फोलेट, पाइरिडोक्सिन, विटामिन बी 6, कोबालिन और विटामिन बी 12 भी कोलोस्ट्रम में पाये जाते हैं। इनमें से थायमिन, राइबोफ्लेविन, फोलेट, विटामिन बी 6 और बी 12 की मात्रा दूध की तुलना में कोलोस्ट्रम में अधिक होती है, इसके विपरीत पैंटोथेनिक एसिड और बायोटिन का स्तर कोलोस्ट्रम में कम होता है जबकि नियासिन की मात्रा दूध एवं कोलोस्ट्रम में लगभग एक समान होती है (केहो एट अल 2007)।

गौ कोलोस्ट्रम, मानव कोलोस्ट्रम की तुलना में अधिक प्रभावी होता है और अक्सर बिमारियों के इलाज के लिए इसके सप्लीमेंट के रूप में प्रयोग का सुझाव दिया जाता रहा है। संक्रमणों से होने वाली बीमारी को कम करने के लिए भी इसका एक उपचार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। कोलोस्ट्रम में मौजूद आवश्यक पोषक तत्व, वृद्धि कारक, प्रोटीन्स, इम्मुनोग्लॉबिन्स आदि मानव पाचन क्रिया में नष्ट नहीं होते और मानव शरीर में अवशोषण (अब्सॉर्प्शन) के लिए जैविक रूप से सक्रिय रहते हैं। इसमें प्रतिरक्षा कारकों की सांद्रता बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए, मानव कोलोस्ट्रम में आईजीजी (सबसे

महत्वपूर्ण इम्युनोग्लोबुलिंस) केवल 2% होता है, जबकि गौ कोलोस्ट्रम आईजीजी लगभग 86% होता है। हालांकि, मनुष्यों के लिए प्रभावी और सक्रिय घटक होने के लिए, गौ इम्युनोग्लोबुलिन्स को पर्याप्त मात्रा में जैविक रूप से सक्रिय होना चाहिए। इस क्षेत्र में अनुसंधान करने की आवश्यकता है। अभी तक कोलोस्ट्रम के साथ जुड़े साइड इफेक्ट्स के बारे में कोई रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है और इसलिये बोवाइन कोलोस्ट्रम स्वास्थ्य के क्षेत्र में अहम भूमिका निभा सकता है। इसके अलावा, इसमे मौजूद बायोएक्टिव अणुओं को मानवीय उपयोग के लिए औद्योगिक रूप से पृथक और शुद्ध भी किया जा सकता है ताकि इसका उपयोग न्यूट्रास्युटिकल उत्पाद के रूप में किया जा सके।

विश्व स्तर पर, कुछ वैज्ञानिक समूहों ने विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य लाभ के लिए कोलोस्ट्रम के महत्व को समझा गया है और दूध में उपस्थित बायोएक्टिव पेप्टाइड्स के क्षेत्र में अनुसंधान तेज गति से बढ़ रहा है। हाल ही में, (लेस्तक एट अल, 2013) से पता चला है कि कोलोस्ट्रम में संयुग्मित लिनोलेनिक एसिड (सीएलए) में कार्सिनोजेनिक गुण होते हैं। इसी तरह गिबन्स एट अल, (2015) ने बताया है कि कोलोस्ट्रम में उपस्थित बायोएक्टिव पेप्टाइ लैक्टोफेरिन में कैंसर कोशिकाओं के विकास को रोकने की क्षमता होती है। हाल ही में गाय के दूध से प्राप्त लैक्टोफेरिन को सेलुलर मॉडल में एंटीकैंसर एजेंट के रूप में देखा गया है (शर्मा एट अल 2019)। कोलोस्ट्रम का उपयोग रुमेटीइड गठिया जैसे ऑटोइम्यून विकारों के इलाज के लिए भी किया गया है। कोलोस्ट्रिनिन (CLN) कोलोस्ट्रम में पाया जाने वाला एक अन्य स्वास्थ्यवर्धक यौगिक है जिसमें अल्जाइमर रोग में सकारात्मक परिणाम के लिए उपयोग किया जा सकता है (सज़निस्ज़्लो एट अल, 2009)। इसी प्रकार पटेल और राणा (2006) ने गौ कोलोस्ट्रम का उपयोग 551 बच्चों पर जोकि यूटीआई व डायरिया से पीड़ित थे, प्रभावी ढंग से किया। आनंद एट अल (2015) ने दिखाया कि गौ कोलोस्ट्रम में मौजूद लैक्टोफेरिन, प्लाज़मोडियम, लीशमैनिया और ट्रिपैनोसोमा जैसे कई परजीवी संक्रमणों के खिलाफ काम करता है। हालांकि बोवाइन कोलोस्ट्रम को सुरक्षात्मक माना जाता है, लेकिन इसके वैज्ञानिक आंकड़े सीमित है और इसमें और अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

गौ कोलोस्ट्रम प्रसव के बाद उत्पन्न स्तन ग्रंथि का पहला जटिल जैविक स्राव है, जो संरचना में दूध से काफी अलग होता है। इसमें प्रोटीन्स, इम्युनोग्लोबुलिन्स, विटामिन्स, खनिज, जीवाणुनाशक (लक्टोपेरोक्सिडेसेस, लैक्टोफेरिन और लाइसोजाइम) और विकास कारक तत्वों की मात्रा दूध की अपेक्षा अधिक होती हैं। कोलोस्ट्रोम/खीस के महत्व को देखते को हुए कुछ लोग इसे तरल सोना भी कहते है। अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकला है कि गौ कोलोस्ट्रम की आणविक संरचना मानव कोलोस्ट्रम के समान है। गौ कोलोस्ट्रम में पाये जाने वाले प्रतिरक्षा और वृद्धि कारक सभी उम्र के मनुष्यों के लिए लाभप्रद होते हैं। यह जानते हुए कि कोलोस्ट्रोम/खीस पौषक तत्वो कि अमूल्य निधि है इसके बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। जैसा कि अभी तक के अनुसंधान ने संकेत दिया है कि भारतीय देशी गायों के दूध में विशेष गुण होते हैं, यह बहुत संभावित है कि देशी गायों के कोलोस्ट्रोम/खीस में भी विशेष लाभकारी गुण हैं और इस सन्दर्भ में विशेष शोध की आवश्यकता है।

तालिका 1. विभिन्न प्रजातियों के कोलोस्ट्रम की सरंचना

पोषक तत्व	गौ कोलोस्ट्रम	भैंस कोलोस्ट्रम	भेड़ कोलोस्ट्रम	मानव कोलोस्ट्रम
वसा (%)	6.7%	7.6 - 11.31	4.1	3-5%
प्रोटीन (%)	14.9%	4.3%	3.4	0.8-0.9%
लैक्टोज (%)	2.5%	7.4%	4.7	6.9-7.2%
आईजीजी 1 (मि.ग्रा./मि.ली.)	35.0	-	-	-
आईजीजी 2 (मि.ग्रा./मि.ली.)	16.0	-	-	-
आईजीए (मि.ग्रा./मि.ली.)	1.7	-	-	-
आईजीएम (मि.ग्रा./मि.ली.)	4.3	-	-	-
लैक्टोफेरिन (मि.ग्रा./मि.ली.)	0.8	-	-	-

-:ज्ञात नहीं; संदर्भ: बागवे व अन्य

तालिका 2. गौ कोलोस्ट्रम और दूध के महत्वपूर्ण पोषण तत्व एवं उनकी मात्रा

पोषण तथ्य	कोलोस्ट्रम/लीटर	दूध/लीटर
शुष्क पदार्थ	153-245 ग्रा.	122 ग्रा.
क्रूड प्रोटीन	41-140 ग्रा.	34 ग्रा.
लैक्टोज	27-46 ग्रा.	46 ग्रा.
क्रूडवसा	39-44 ग्रा.	37 ग्रा.
क्रूडएश	5-20 ग्रा.	7 ग्रा.
कार्बोहाइड्रेट	150-200 ग्रा.	-
इम्युनोग्लोबुलिन-जी	250 ग्रा.	
इम्युनोग्लोबुलिन-जी-1	50-90 ग्रा.	0.30-0.40 ग्रा.
इम्युनोग्लोबुलिन-जी-2	1.52 ग्रा.	0.03-0.08 ग्रा.
इम्युनोग्लोबुलिन-ए	3-6.5 ग्रा.	0.04-0.06 ग्रा.
इम्युनोग्लोबुलिन-एम	3.8-6 ग्रा.	0.03-0.06 ग्रा.
लैक्टोफेरिन	1.5-5 ग्रा.	0.1-0.3 ग्रा.
लेक्टोपेरोक्सिडेज	30 मि.ग्रा.	20 मि.ग्रा.
लाइसोजाइम	0.14-0.7 मि.ग्रा.	0.07-0.06 मि.ग्रा.
रेटिनोल	0.005 माइक्रोग्राम	-
टोकोफेरोल	0.003 माइक्रोग्राम	-
बीटा-कैरोटीन	0.0007 माइक्रोग्राम	-
विटामिन- ई	0.08 माइक्रोग्राम	-
थायमीन	0.0009 माइक्रोग्राम	-
रिबोफ्लाविन	0.005 माइक्रोग्राम	-
नियासीन	0.0003 माइक्रोग्राम	-
विटामिन बी12	0.0006 माइक्रोग्राम	-
फोलीक एसिड	-	-
पायरिडोक्स्ल	0.0002 माइक्रोग्राम	-
पायरिडोक्सामीन	0.0002 माइक्रोग्राम	-
पायरिडोक्जिन	0.00004 माइक्रोग्राम	-
पैंटोथेनीक एसिड	0.005 माइक्रोग्राम	-
इंटरल्यूकिन-1बीटा	840 मि.ग्रा.	3 माइक्रोग्राम
इंटरल्यूकिन-1आरए	5.2 मि.ग्रा.	27 माइक्रोग्राम
इंटरल्यूकिन-6	77 माइक्रोग्राम	0.15 माइक्रोग्राम
टीएनएफ़-अल्फा	926 माइक्रोग्राम	3.3 माइक्रोग्राम
आईएफ़एन-गामा	260 माइक्रोग्राम	0.21 माइक्रोग्राम
आईजीएफ़-1	100-200 माइक्रोग्राम	<25 माइक्रोग्राम
आईजीएफ़-2	200-600 माइक्रोग्राम	<10 माइक्रोग्राम
जीएच	<1 माइक्रोग्राम	<0.03 माइक्रोग्राम

संदर्भ: ब्लूम एट अल, 2000; गोपाल एट अल, 2000; एल्फस्ट्रेंड एट अल, 2002

टेबल 3. गौ खीस और दूध में पाये जाने वाले महत्वपूर्ण एमीनो अम्ल

पोषण तत्त्व	कोलोस्ट्रम (ग्राम/किलोग्रा.)	दूध (ग्राम/किलोग्रा.)
एसपारटिक एसिड	42.95	28.83
थ्रेओनिन	33.26	14.64
सेरिन	44.95	19.74
ग्लूटामिक एसिड	88.84	91.12
प्रोलीन	25.96	56.98
सिस्टीन	8.51	2.39
ग्लाइसिन	15.65	5.96
एलानिन	15.79	11.42
वैलिन	28.33	16.95
मेथिओनिन	9.31	12.0
आइसोल्यूसिन	15.1	13.67
ल्यूसिन	47.30	35.94
टायरोसिन	39.56	15.34
फेनिलएलानिन	25.22	17.16
हिस्टिडिन	14.60	12.12
लायसिन	40.90	28.51
अर्जीनिन	14.40	10.22

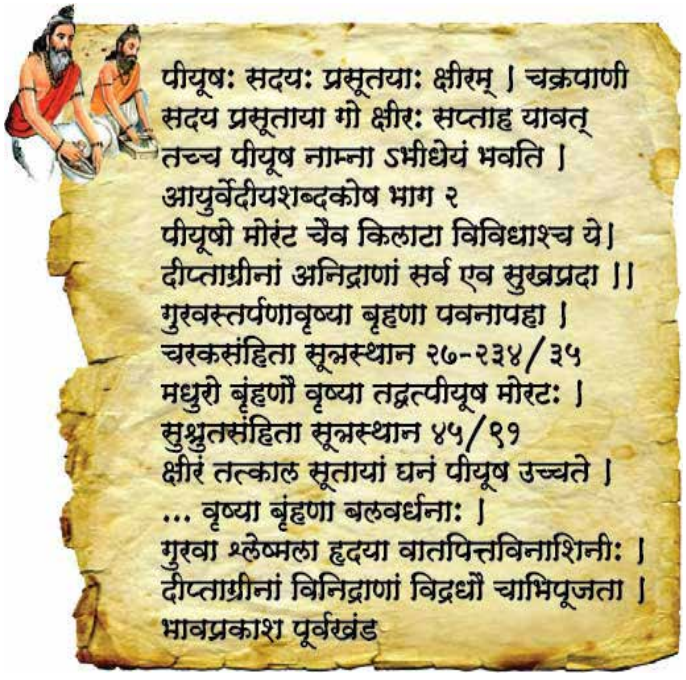

संदर्भ

कोलोस्ट्रम. मार्निला पी, कोरोहेन एच (2002). डेयरी विज्ञान विश्वकोश

ब्लेक जी टी, व्हीलर एम बी, हैनसेन एल बी, चेस्टर-जोन्स एच, मिलर डी जे (2009). दूध में लैक्टोज सिंथेस घटक: गायों की नस्लों में लैक्टेशन के विभिन्न चरणों के दौरान अल्फा-लैक्टाल्बुमिन और बीटा 1,4 गैलेक्टोट्रांसफेरेज का स्तर. रिप्रोडकशन इन डोमेस्टिक ऐनिमलस 44, 241-247

गोपाल पी के, गिल एच एस (2002). गोजातीय दूध और कोलोस्ट्रम में ओलिगोसैकेराइड्स और ग्लाइकोकोनजुगेट्स । ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ नुट्रिशन. 84, 69-74

बाराइल डी, मरोत्ता एम, चू सी, मेहरा आर, ग्रिम आर, लेब्रिला सी बी, जर्मन जे बी (2010). होलस्टीन-फ्रीजियन गायों में लैक्टेशन के पहले तीन दिनों के कोलोस्ट्रम में न्यूट्रल और अम्लीय ओलिगोसेकेराइड्स के स्तर का स्पेक्ट्रोमेट्री माइक्रोफ्लूडिक

चिप और टाइम ऑफ़ फ्लाइट मास्स स्पेक्ट्रोमेट्री के उपयोग द्वारा अनुमान. जर्नल ऑफ़ डेयरी साइंस. 93, 3940-3949

जियोंग एसजी, हैम जेएस, किम डीएच, एएन सीएन, चाय एचएस, यू वाईएम, जंग ए, क्वोन आईके, ली एसजी (2009). ग्योंगगी प्रांत की गाय के कोलोस्ट्रम में दुहने के समय भौतिक रासायनिक गुण। कोरियाई जर्नल ऑफ़ फूड साइंस 29, 445-446

कोरोहेन एच, मार्निला पी, गिल एच.एस. (2000). दूध में इम्युनोग्लोबुलिन और अन्य पूरक कारक। ब्रिटिश जर्नल न्यूट्रिसन 84, 75-80

चेंग जेबी, वांग जेक्यू, बू डीपी, लियू जीएल, ज़हाँग सीजी, वी हाय, ज़होउ एलवाई, वांग जेजेड. (2008). गोजातीय दूध में लैक्टोफेरिन को प्रभावित करने वाले कारको की साद्रता। जर्नल ऑफ़ डेयरी साइंस 91, 970-976

केहोए एसआई, जयाराओ बीएम, हेन्रीच्स एजे (2007). पेंसिल्वेनिया फार्म पर गोजातीय कोलोस्ट्रम की संरचना और प्रबंधन विधिओं का सर्वेक्षण। जर्नल ऑफ़ डेयरी साइंस 90, 4108-4116

डेबियर सी, पॉटीयर जे, गोफ़े सीएच, लारेंडेल वाई(2005). कोलोस्ट्रम और दूध में विटामिन ए और ई के अप्रत्याशित व्यवहार के बारे में अब तक की जानकारी। लाईवस्टॉक एंड प्रोडक्सन साईंस 98, 135-147

अनामिका दास डी और सेठ आर(2017)॰ स्किम्ड कोलोस्ट्रम पाउडर की गुणवत्ता विशेषताओं का अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ केमिकल स्टडीज 3(5): 17-20

निकोलिक आई, स्टोजानोविक आई, वुजिकिक एम, फागोन पी, मैंगानो के, स्टोसिकग्रूजिकिक एस, निकोलेट्टी एफ, और सकसिडा टी. (2017). कृन्तकों में गोजातीय कोलोस्ट्रम व्युत्पन्न द्वारा टाइप 1 मधुमेह के विकास की रोकथाम। इम्यूनोबायोलॉजी 222, (2) 272-279

मैकग्राथ बी ए., फॉक्स पी एफ, मैकस्वीनी पी एल एच और केली ए एल (2016). गोजातीय कोलोस्ट्रम की संरचना और गुण: एक समीक्षा। डेयरी विज्ञान और प्रौद्योगिकी 96, (2) 133-158

बग्वे एस, थरप्पल एल जे, कौर जी और बुट्टर एच एस(2015). बोवाइन कोलोस्ट्रम: एक पोषक तत्व। जर्नल ऑफ़ कॉम्प्लिमेंटरी एंड इंटेग्रटीवे मेडिसिन, 12, (3) 175-185

मार्निला पी और कोरहोनेन एच (2011) कोलोस्ट्रम. डेयरी विज्ञान विश्वकोश सैन डिएगो: अकादमिक प्रेस: द्वितीय संस्करण: 591-597 द्वारा फ़्यूक्वे जे डब्ल्यू, फॉक्स पी एफ और मैकस्वीनी पी एल एच.

मेन्शेट्टी एल, ट्रिना जी, टॉमसेलो जी, कैसाग्रेन्डे-प्रोएटीटी पी, लियोनार्डी एल, बारबेटो ओ, और ब्रेक्शिया जी (2016). जठरांत्र रोगों में कोलोस्ट्रम के संभावित लाभ। फ्रंटियर्स इन बायोसाइंस 8, (1) 331-351

सोबजुक-सूजल एम, वेलगोज-ग्रोथ जड, रोंस्की एम और रेमिनीस्की ए (2013). जर्सी एवं पोलिश होलस्टीन फ्रीजियन गायों के कोलोस्ट्रम में बायोएक्टिव प्रोटीन की सांद्रता में परिवर्तन। तुर्किश जर्नल ऑफ़ वेटरनरी एंड एनिमल साइंस 37, 43-49

ज़हाँग एल वाई, वांग जे क्यू, यांग वाई एक्स, बू डी पी, ली एस एस, ज़होउ एल वाई (2011). गोजातीय व्हेय प्रोटीन में कोलोस्ट्रम से दूध में परिवर्तन तक का तुलनात्मक प्रोटिओमिक विश्लेषण। एशियन ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ़ एनिमल साइंस 24, 272- 278

इंडिक एच ई, फिलोंजी ई एल (2005). ऑप्टिकल बायोसेंसर विश्लेषण द्वारा गोजातीय दूध, कोलोस्ट्रम और शिशु फार्मूले में लैक्टोफेरिन के स्तर का निर्धारण। इंटरनेसनल डेयरी जर्नल 15, 429-438

ब्लम जे डब्ल्यू, हैमोन एच एम (2000बी). कोलोस्ट्रम का नवजात बछड़ों की जठरांत्र और एंडोक्राइन, चयापचय तथा पोषण मापदंडों पर प्रभाव। लाइवस्टॉक प्रोडक्स्न साईंस 66, 151-159

एल्फस्ट्रैंड एल, लिंडमार्क-मैनसन एच, पॉलसन एम, न्यबर्ग एल, एकेसन बी (2002). गोजातीय कोलोस्ट्रम में मौजूद इम्मुनोग्लोबुलिंस, वृद्धि कारक और वृद्धि हार्मोन पर प्रसंस्करण के प्रभाव। इंटरनेशनल डेयरी जर्नल 12, 879-887

एलिसॉन्डो-सालाजार जे ए, हेनरिक्स ए जे (2008). समीक्षा: गोजातीय कोलोस्ट्रम पर उष्मा का प्रभाव। प्रोफेशनल एनिमल साइंटिस्ट 24, 530-538

माइक्रो आर.एन.ए - पशुधन प्रजातियों में मांसपेशियों की वृद्धि एवं विकास के नव आणविक नियंत्रक

मंदीप कौर, आशीष कुमार, राकेश कुमार, पूजा छाबड़ा, सोनिका अहलावत, अनीता यादव एवं रीना अरोड़ा

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

परिचय

माइक्रो आर.एन.ए (miRNA) 19-22 न्युक्लियोटाइड की लम्बाई वाले छोटे-छोटे आर.एन.ए अणु होते हैं जिनका जीन (gene) नियंत्रण करने वाले आणविक के रूप में महत्व बढ़ता जा रहा है। केंचुए (सी. एलेगंस) में लिन-4 माइक्रो आर.एन.ए की खोज के बाद हजारों माइक्रो आर.एन.ए एवं उनके लक्ष्यों की पहचान कर ली गई है। वे पौधों एवं स्तनधारी जन्तुओं के क्रमानुगत विकास में सरंक्षित पाए गए हैं। एम. आर.एन.ए. के विपरीत माइक्रो आर.एन.ए किसी प्रोटीन की संरचना निर्धारित नहीं करता बल्कि ट्रांसक्रिप्शन के बाद जीन की अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता है। वे 3'UTR के साथ आंशिक संपूरकता द्वारा लक्षित जीन की अभिव्यक्ति को रोकते हैं। प्रस्तावित तंत्र के अनुसार संभवतः ट्रांसलेशन प्रक्रिया को शुरुआती स्तर पर ही रोकने के बाद एम.आर.एन.ए. का पतन होता है। एक अकेला माइक्रो आर.एन.ए अनेक एम.आर.एन.ए. को नियंत्रित कर सकता है जिसके चलते जीन अभिव्यक्ति तंत्र को प्रभावित करता है। इस प्रकार, कुछ माइक्रो आर.एन.ए के अभिव्यक्ति रूप के अध्ययन से जीवन की अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हो सकती हैं। माइक्रो आर.एन.ए को कोशिकीय गतिविधियों के साथ-साथ बिमारियों के पूर्व-सूचक चिन्हक के रूप में मान्यता दी जा सकती है।

भेड़ और बकरी की मांसपेशियों से अंतिम उत्पाद के रूप में मांस का उत्पादन होता है जो कि आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण होता है। मांस की गुणवत्ता चारा, आयु, लिंग, प्रबंधन, पशुवध एवं प्रसंस्करण के साथ-साथ आनुवंशिक कारकों पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार मांस की गुणवत्ता पोषण, वातावरण एवं मांसपेशियों में अभिव्यक्त जींस के सामूहिक प्रभावों का परिणाम है। मांसपेशियों के विकास के दौरान होने वाली आणविक गतिविधियां, वसा जमाव, पोस्टमार्टम प्रोटियोलिसिस एवं ऊर्जा उपापचय मांस गुणवत्ता के महत्वपूर्ण आनुवंशिक निर्धारक है। विशिष्ट फिनोटाइप्स में आकस्मिक परिवर्तनों की खोज से इस क्षेत्र में शोध को बढ़ावा मिला है। मांस गुणवत्ता के लिए बायोमार्कर की उपलब्धता से चयनात्मक प्रजनन के द्वारा रुमिनेंट मांस में सुधार हुआ है। गौवंश, शूकर एवं भेड़ों के मांस की गुणवत्ता को परखने के लिए विशिष्ट आनुवंशिक परीक्षण (मायोमाक्स, जीनस्टार, सायर ट्रेस इत्यादि) उपलब्ध हैं। चयनात्मक प्रजनन से मांस की गुणवत्ता सुधारने में बहुत अधिक समय की जरुरत होती है अतः मांस गुणवत्ता में विभिन्नता उत्पन्न करने वाले आनुवंशिक कारकों को बेहतर ढंग से समझने के प्रयास किए गए हैं। इस क्षेत्र में अनुसंधान से कैलपिजी, कार्वेल या रिब आई मांसपेशीय जीन (12 वीं और 13 वीं पसली के बीच आँख रूपी मांसपेशी, *longissimus dorsi*) के साथ-साथ मायोस्टैटिन जीन के परिवर्तन (Mutation) को पहचाना जा सका है। कुछ विशिष्ट जींस के अतिरिक्त माइक्रो आर.एन.ए अणुओं का एक ऐसा वर्ग है जो मांसपेशियो में वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करता है। मांसपेशियों के विकास की महत्तवपूर्ण गतिविधियों को नियंत्रित करने वाले अनेक माइक्रो आर.एन.ए की खोज की जा चुकी है। इसलिए वे इन गुणों के लिए आणविक चिन्हक के रूप में बड़ी संभावना प्रस्तुत करते हैं। अस्थि मांसपेशी के विकास में मुख्य नियंत्रक के रूप में अनेक माइक्रो आर.एन.ए की पहचान हो चुकी है। अब माइक्रो आर.एन.ए को अस्थि मांसपेशी के कार्यों में आणविक संचालक के रूप में मान्यता प्राप्त हो रही है।

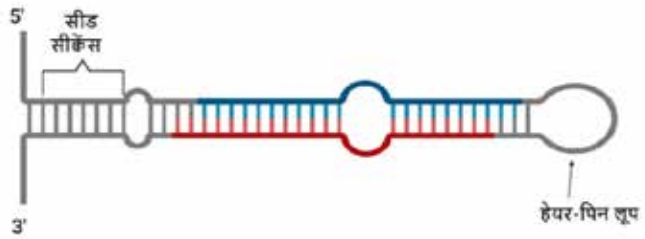

चित्र 1. माइक्रो आर.एन.ए की आकृति

माइक्रो आर.एन.ए की उत्पत्ति

प्राथमिक माइक्रो आर.एन.ए (pri-miRNA) केन्द्रक में सबसे पहले ट्रांसक्राइब होने वाला 100-1000 किलोबेस (kb) लम्बा एक ट्रांसक्रिप्ट है। प्राथमिक माइक्रो आर.एन.ए दोहरी लड़ी का बना होता है जिसकी संरचना हेयरपिन जैसी होती है। प्राथमिक माइक्रो आर.एन.ए को फिर 60-70 किलोबेस न्युक्लियोटाइड लम्बे टुकड़ों में काटा जाता है जिन्हें अग्रगामी माइक्रो आर.एन.ए (pre-miRNA) कहा जाता है। यह कटाई माइक्रोप्रोसेसर नाम के एक प्रोटीन कोम्प्लेक्स द्वारा की जाती है जिसमे एक दोहरे लड़ का आर.एन.ए से बंधने वाला प्रोटीन DGCR8 और राइबोन्युक्लिएज III एन्डोन्युक्लिएज होता है जिसे द्रोषा कहा जाता है। एक्स्पोर्टिन-5 (XPO5) की मदद से अग्रगामी माइक्रो आर.एन.ए को कोशिका द्रव्य में भेज दिया जाता है। कोशिका द्रव्य में अग्रगामी माइक्रो आर.एन.ए को 19-25 न्युक्लिओटाइड लम्बाई वाले दोहरे स्ट्रैंड के छोटे टुकड़ों में काटा जाता है जिन्हें माइक्रो आर.एन.ए कहा जाता है। यह कटाई डाईसर-1 नाम के दूसरे राइबोन्युक्लिएज III एन्डोन्युक्लिएज द्वारा पूरी की जाती है। दोहरे स्ट्रैंड के माइक्रो आर.एन.ए का एक स्ट्रैंड (3p या यात्री स्ट्रैंड) सामान्यत: निम्नकोटी का होता है जबकि दूसरा स्ट्रैंड (5p या अग्रणी स्ट्रैंड) आर.एन.ए द्वारा प्रेरित साइलेंसिंग कोम्प्लेक्स (RISC) के साथ जुड़ जाता है। माइक्रो आर.एन.ए - आर.एन.ए द्वारा प्रेरित साइलेंसिंग कोम्प्लेक्स, आर्गोनॉट प्रोटीन (Ago2) के साथ मिलकर लक्षित मैसेंजर आर.एन.ए (mRNA) की ट्रांसलेशन को नियंत्रित करते हैं।

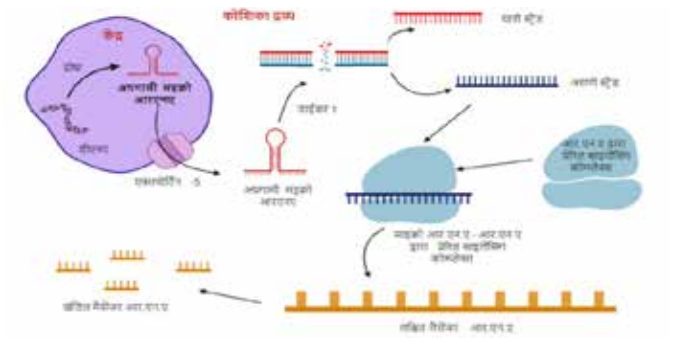

चित्र 2. माइक्रो आर. एन. ए की उत्पत्ति और कार्रवाई की व्यवस्था

माइक्रो आर.एन.ए नाम पद्धति

माइक्रो आर.एन.ए को उनकी खोज के क्रमानुसार संख्यांकित किया गया है, जैसेकि ओएआर–एमआईआर–206 (Oar-mir-206) की खोज ओएआर–एमआईआर–208 (Oar-mir-208) से पहले हुई थी। नाम के पहले तीन अक्षर उस जंतु के नाम से लिए गए है जिसमें माइक्रो आर.एन.ए की मूल खोज हुई हो। ओ ए आर –एम आई आर – 206 में ओ ए आर ओविस एरिस (भेड़) का सूचक है। इसी प्रकार यदि माइक्रो आर.एन.ए मानव या बकरी में उत्पन्न हुए हो तो उनके नाम के पहले तीन अक्षर एच एस ए (होमो सेपियन्स) या सी एच आई (केपरा हिरकस) होंगे। माइक्रो आर.एन.ए के नाम में एक बड़ा अक्षर "आर" परिपक्वता का प्रतीक है जैसे कि oar-miR-206 (ओएआर–एमआईआर–206) जबकि oar-mir-206 बताता है कि या तो यह प्राथमिक ट्रांसक्रिप्ट है या कोई माइक्रो आर.एन.ए जीन। जब दो माइक्रो आर.एन.ए का अनुक्रम लगभग एक जैसा हो तो क्रम निर्धारित करने के लिए नाम में दी हुई संख्या के अन्त में कोई अक्षर जोड़ दिया जाता है जैसे कि oar-miR-133a और oar-miR-133b। दूसरी ओर यदि दो माइक्रो आर.एन.ए का एक जैसा अनुक्रम (सीक्वेंस) अलग-अलग अग्रगामी माइक्रो आर.एन.ए से उत्पन्न होता है तो नाम में उपलब्ध संख्या के पीछे एक और संख्या जोड़ दी जाती है जैसे कि oar-miR-125b-1 और oar-miR-125b-2।

पशुधन प्रजातियों में माइक्रो आर.एन.ए

पशुओं में रुपरेखा अध्ययन से पता चला है कि माइक्रो आर.एन.ए प्रजाति एवं उत्तक विशिष्ट होते हैं जिसका अर्थ है कि माइक्रो आर.एन.ए पशुओं की आवश्यक जैविक प्रतिक्रियाओं जैसे मांसपेशी एवं शरीर के अंगो का विकास, रोग-प्रतिरोधकता तथा उपापचय इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अधिकतम युकेरियोटिक जीनोम में सैंकड़ों कोडिड माइक्रो आर.एन.ए पाए गए हैं और यह भी संभव है कि अभी और बहुत सारे माइक्रो आर.एन.ए खोजे जाएंगे। मिरबेस एक ऑनलाइन डाटाबेस है जिसमे प्रकाशित माइक्रो आर.एन.ए का सम्पूर्ण विवरण विद्यमान है।

तालिका. पशुधन में माइक्रो आर.एन.ए डाटाबेस (निरबेस)

पशु	अग्रगामी माइक्रो आर.एन.ए	परिपक्व माइक्रो आर.एन.ए
गाय	1064	1025
घोडा	715	690
भेड़	106	153
बकरी	267	436
शूकर	408	457

मायोमीर (MyomiR)

माइक्रो आर.एन.ए हृदय एवं अस्थि की मांसपेशियों में अति समृद्ध होते हैं तथा मायो एम् आई आर (मायोमीर-myomir) कहलाते हैं। पेशीजनन अर्थात मांसपेशियों के सृजन, को प्रभावित करने वाले जीन को नियंत्रित करके मायोमीर मांसपेशियों के विकास एवं कार्यों के अनेक पहलुओं को प्रभावित करते हैं। ऐसा देखा गया है कि कुछ माइक्रो आर.एन.ए की अभिव्यक्ति उत्तक विशिष्ट होती है। एक ऐसा माइक्रो आर.एन.ए जो मायोसिन हैवी चेन जीन में कोडिड हो तथा मांसपेशी उत्तक विशिष्ट हो उसे मायो माइक्रो आर.एन.ए कहा जाता है। वे मांसपेशियों के प्रसार एवं विकास में शामिल होते हैं। मांसपेशीय उत्तक विशिष्ट आठ माइक्रो आर.एन.ए की पहचान कर ली गई है जिनके नाम miR-1, miR-133a, miR133b, miR-206, miR-208a, miR-208b, miR-486 तथा miR-499 हैं। इनमे से कुछ मायोमीर के ट्रांसलेशन साथ-साथ हुए हैं जैसे कि miR-206 एवं miR-133b, miR-1-1 एवं miR-133a-2। अभी तक उपलब्ध सभी प्रमाण संकेत करते हैं कि अस्थि मांसपेशियों के विकास को नियंत्रित करने में माइक्रो आर.एन.ए बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं।

मांसपेशियों के सृजन में माइक्रो आर.एन.ए का योगदान

मायो-जेनेसिस यानि मांसपेशियों के सृजन, की मुख्य जींस जैसे *HDAC4, SRF, MEF2, MAP4K3, SH3BGRL3* इत्यादि को miR-1, miR-133 तथा miR-206 नियंत्रित करते हैं, miR-1 तथा miR-206 मांसपेशियों में बहुत अधिक पाए जाते हैं तथा संयोजन में कार्य करते हैं। miR-208b एवं miR-499 मांसपेशियों के विकास को नियंत्रित करते हैं तथा मायो ब्लास्ट क्रमिक विकास के दौरान दोनों मायोमीर का स्तर बढ़ जाता है। ये मायोमीर मायो जेनेसिस लिप्यंतरण (transcription) को नियंत्रित करने वाले कारको (MRFS) के साथ मिलकर मायोसाईट के प्रसार एवं क्रमिक विकास को नियंत्रित करते हैं।

हाल ही में किए गए अध्ययनों ने मांसपेशीय विशिष्ट माइक्रो आर.एन.ए पर प्रकाश डाला है जो मांसपेशी के कार्यों के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करते हैं जिनमे मयोब्लास्ट प्रसार, विभेदीकरण, संकुचनशीलता और तनाव संवेदनशीलता शामिल हैं। पशुधन उत्पादन में अस्थि मांसपेशियां मांस में विकसित होती हैं जो मानव उपभोग के लिए महत्वपूर्ण होता है। ट्रांसक्रिप्शन के बाद माइक्रो आर.एन.ए जीन अभिव्यक्ति को नियंत्रित करके, मायोब्लास्ट प्रसार और क्रमिक विकास की प्रक्रिया के संचालन से पेशीजनन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये मांसपेशी के भार, फाइबर के प्रकार एवं मांसपेशी से संबंधित बीमारियों को भी प्रभावित करते हैं। मांसपेशी विशिष्ट miR-206 के बारे में कहा गया है कि यह सेटेलाईट कोशिकाओं के कल्चर में लगभग अनुपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त, miR-1 विकास के विभिन्न चरणों में औसत दर्जे में तथा व्यस्क में अधिकतम मात्रा में उपलब्ध पाया गया है। जबकि miR-133 की उपस्थिति व्यस्क मांसपेशियों में औसत दर्जे की और भ्रूण तथा नवजात विकास में नगण्य या बहुत ही थोड़ी मात्रा में पाई गई है। दूसरे माइक्रो आर.एन.ए, miR-24, miR-27 की अधिकतम उपस्थिति प्रसारित सेटेलाईट कोशिकाओं और वयस्क में जबकि miR-368, miR-376 और miR-423-5p की अधिकतम उपस्थिति नवजात में देखी गई। इनमे से कुछ माइक्रो आर.एन.ए के असामान्य नियंत्रण से अन्त: कोशिकीय संकेतन तंत्र भंग हो सकता है जिसके परिणाम स्वरूप रोग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

मायोसाइट प्रसार एवं मांसपेशियों के क्रमिक विकास में माइक्रो आर.एन.ए

मुख्य रूप से miR-29 परिवार के माइक्रो आर.एन.ए मांसपेशियों के विकास में शामिल होते हैं। miR-29 हृदय की मांसपेशियों एवं रक्त वाहिकाओ की कोमल मांसपेशियो की कोशिकाओं के कार्यो में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा दर्शाया गया है कि मायोटोनिक कुपोषण टाइप-1 में, miR-29b तथा miR-29c कम पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, miR-29 डुचेने मांसपेशीय कुपोषण में कम नियंत्रित होता है, और इसकी अभिव्यक्ति की पुनर्स्थापना से, मायोजेनिक क्रमिक विकास को प्रोत्साहित करके तथा फाईब्रोजेनिक विकास को बाधित करके, कुपोषण की अवस्था में सुधार हो सकता है। ये परिणाम अस्थि की मांसपेशियों में एक महत्वपूर्ण नियंत्रण कर्ता के रूप में miR-29 की भूमिका का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मांसपेशी-विशिष्ट माइक्रो आर.एन.ए, miR-1, miR-206 और miR-133, अस्थि मांसपेशी के क्रमिक विकास में सबसे अधिक लक्षण निर्धारित करने वाले माइक्रो आर.एन.ए हैं। मांसपेशियों के क्रमिक विकास की अनेक प्रक्रियाओं जैसे कि एकान्तरिक जोड़ (alternative splicing),डी.एन.ए संश्लेषण और कोशिका मृत्यु (cell apoptosis) पर इनका समग्र प्रभाव होता है। मायोजेनिक कारकों के साथ परस्पर क्रिया के माध्यम से मांसपेशियों के क्रमिक विकास के लिए अनेक गैर मांसपेशीय विशिष्ट माइक्रो आर.एन.ए की आवश्यकता होती है। उभरते हुए प्रमाणों ने यह साबित किया है कि अस्थि मांसपेशी के क्रमिक विकास में माइक्रो आर.एन.ए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अनेक दूसरे माइक्रो आर.एन.ए, जैसे कि miR-703, miR-122a, miR-9-2 और miR-805 इत्यादि अल्पतम नियंत्रित माइक्रो आर.एन.ए हैं। ये शायद ही कभी क्रमिक विकास की प्रक्रिया में भाग लेते हों। कुछ माइक्रो आर.एन.ए जैसे कि miR-699a अस्थि मांसपेशियों के क्रमिक विकास को रोकने में सक्षम पाए गए हैं और अस्थि मांसपेशियों के क्रमिक विकास के दौरान उन्होंने कम अभिव्यक्ति दर्शाई। पूर्व अनुसंधानों से यह स्थापित हुआ है कि अस्थि मांसपेशियों के क्रमिक विकास में केवल 'सकारात्मक' माइक्रो आर.एन.ए की ही आवश्यकता नहीं होती बल्कि ऐसे 'निष्पक्ष' या 'नकारात्मक' माइक्रो आर.एन.ए की भी जरुरत होती है जो इस प्रक्रिया के दौरान न्यूनतर हो जाते हैं।

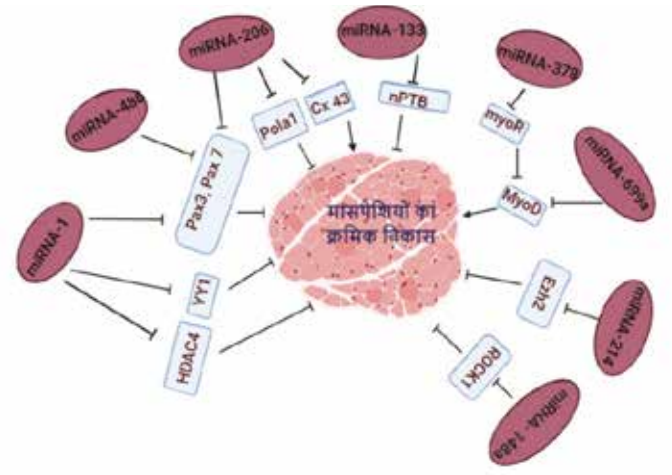

चित्र 3 : मांसपेशीय प्रसार एवं क्रमिक विकास का माइक्रो आर.एन.ए विनियमन

मांसपेशीय क्रमिक विकास में गैर-मायोमीर नियन्त्रण

मांसपेशीय विकास प्रक्रिया में अनेक गैर-मायोमीर भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अनेक शोध कर्ताओं ने बताया कि ये गैर-मांसपेशी-विशिष्ट माइक्रो आर.एन.ए असंख्य तरीकों से अस्थि मांसपेशीय क्रमिक विकास को नियंत्रित करते हैं। मांसपेशीय क्रमिक विकास से संबंधित जींस जैसे *MyoD, MEF2, Pax3* और *YY1* का नियंत्रण इन्ही माइक्रो आर.एन.ए द्वारा किया जाता है। दूसरे जींस जैसे कि *IGF-2* और *Cdc25A* (कोशिका चक्र से संबंधित फोस्फेटेजिज) भी इन माइक्रो आर.एन.ए के निश्चित लक्ष्य हैं। यद्यपि ये माइक्रो आर.एन.ए मांसपेशी-विशिष्ट अभिव्यक्ति नहीं देते और क्रमिक विकास पूरा होने के बाद इनमे से कुछ अदृश्य भी हो जाते हैं फिर भी अस्थि मांसपेशीय क्रमिक विकास के विनियमन में इनकी भूमिका अटल है। उदाहरण के तौर पर miR-24 का अवरोध MEF2D, Myf5, MyoD, Myogenin और MHC की अभिव्यक्ति को बहुत कम कर देता है और इस प्रकार मायोब्लास्ट क्रमिक विकास को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। miR-214, miR-26a और अनेक दूसरे गैर-मायोमीर को संयमित करना भी इस प्रक्रिया को बाधित कर सकता है।

माइक्रो आर.एन.ए में मांस की गुणवत्ता से सम्बंधित एस.एन.पी

हालांकि माइक्रो आर.एन.ए अनुक्रम सामान्य आबादी में संरक्षित होता है, लेकिन विज्ञान संबंधी सबूत बताते हैं कि इनमें व्यापक आनुवंशिक विविधताएं मौजूद हैं। ये विविधताएं कई जैविक कार्यों को प्रभावित कर सकती हैं। इन miRNA जीनों की आनुवंशिक भिन्नता उनके लक्ष्य की अभिव्यक्ति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है और, परिणामस्वरूप, कंकाल की मांसपेशियों की वृद्धि और विकास पर। सर्वप्रथम यह प्रदर्शित किया गया कि माइक्रो आर.एन.ए से संबंधित एसएनपी फिनोटाइप को प्रभावित कर सकते हैं। जैसे मनुष्य में miR-189 में एक उत्परिवर्तन *SLITRK1* जीन के बाध्यकारी साइट को प्रभावित कर टॉरेट सिंड्रोम नामक रोग से जुड़ा हुआ है। इस खोज के बाद से, miRNA जीन के आनुवंशिक रूपांतरों पर व्यापक रूप से शोध किया गया है और कई आनुवंशिक परिवर्तनों को महत्वपूर्ण कार्यों के लिए दिखाया गया है। शूकरों में अनुसंधान से यह भी

पता चला है कि miR-1, miR-133b और miR-206 में SNPs मांसपेशियों के फाइबर और मांस की गुणवत्ता के लक्षणों को प्रभावित करते हैं। शूकरों में पाए जाने वाले mir206/mir133B समूह के mir206 में एस.एन.पी बहुरूपता मांसपेशीय फाइबर संयोजन, मांस गुणवत्ता और लीन मांस उत्पादन से सम्बद्ध है। वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित आंकड़े यह संकेत करते हैं कि शूकर mir206/mir133B समूह में बहुरूपता ऐसे जेनेटिक कारक है जो मांसपेशियों एवं मांस गुणवत्ता लक्षणों को प्रभावित करते हैं। टेक्सेल भेड़ में हाइपर मसलिंग mir-1 और mir-206 के लिए लक्षित साइट के परिवर्तित अनुक्रम का परिणाम है, जो मायोस्टैटिन जीन-13 के निषेध का कारण बनता है। टेक्सल भेड़ में मायोस्टैटिन जीन की जीडीएफ-8 एलील का चरित्र-चित्रण एक अनट्रांसलेटिड क्षेत्र में 'जी' के 'ए' में परिवर्तन द्वारा होता है। यह म्यूटेशन अस्थि मांसपेशियों में अत्याधिक अभिव्यक्त माइक्रो आर.एन.ए के लिए लक्ष्य स्थल का सृजन करती है। इससे मायोस्टेटिन जीन की ट्रांसलेशन प्रक्रिया बाधित हो जाती है और इस प्रकार यह टेक्सल भेड़ में मांसपेशीय अतिवृद्धि में योगदान देती है। ये भी सुझाव दिया गया है कि शूकर में पाया जाने वाला miR-208b एस.एन.पी माइक्रो आर.एन.ए बायोजेनेसिस के विनियमन द्वारा *SOX-6* की अभिव्यक्ति को भिन्न-भिन्न रूप से रोकता है जिसके द्वारा *MYH7* की अभिव्यक्ति तथा मांसपेशीय फाइबर एवं मांस गुणवत्ता लक्षणों को प्रभावित करता है। मानव एवं चूहों के एस.एन.पी डेटाबेस के विश्लेषण परिणाम यह दर्शाते है कि माइक्रो आर.एन.ए बाइंडिंग साईट का सृजन अथवा विनाश करने वाली अनेक म्यूटेशन होती हैं और संभवत: फिनोटिपिक विविधताओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं।

माइक्रो आर.एन.ए की रुपरेखा अपेक्षाकृत एक नया कार्य-क्षेत्र है जो तेजी से आगे बढ़ रहा है। नेक्स्ट जेनरेशन सिक्वेंसिंग टेक्नोलोजी के प्रयोग से हम विभिन्न शरीर-क्रिया सम्बन्धी प्रक्रियाओं में माइक्रो आर.एन.ए की भूमिका के बारे में गहराई से जान सकेंगे। पशुधन प्रजातियों में किए गए असंख्य रुपरेखा अध्ययनों ने दर्शाया है कि संरक्षित एवं प्रजाति-विशिष्ट माइक्रो आर.एन.ए की एक विस्तृत एवं विविध श्रृंखला अभिव्यक्त होती है। यद्यपि पशुधन जीनोम में कोडित माइक्रो आर.एन.ए के लक्षणों के वर्णन में कुछ सफलता प्राप्त हुई है फिर भी उनकी कार्यात्मक भूमिका समझने के लिए बहुत सारा कार्य किया जाना शेष है। इस प्रकार, मांसपेशियों की आनुवंशिक रुपरेखा का ज्ञान पशुधन प्रजातियों के विकास एवं मांस उत्पादन की उन्नति में सहायक हो सकता है।

सन्दर्भ

बार्टेल, डी.पी.(2004). माइक्रोआरएनए: जीनोमिक्स, जैवजनन, तंत्र और कार्य। सेल, **116**, 281–297।

बर्नार्ड, सी., कैसरमालेक, आइ., ले-कुंफ, एम., डबरोउक, एच., रेनैंड, जी. और होक्केट, जे.एफ.(2007). गोमांस संवेदी गुणवत्ता के नए संकेतक विशिष्ट जीन की अभिव्यक्ति से प्रकट होते हैं। जर्नल ऑफ़ एग्रीकल्चरल एंड फ़ूड केमिस्ट्री, **55** (13), 5229-37।

चेन, जे.एफ., मेंडल, ई.एम., थॉमसन, जे.एम., वू, क्यू., कैलिस, ते., हैमंड, एस.एम., कॉनलन, एफ.एल. और वांग, डी.जेड.(2006). कंकाल की मांसपेशी प्रसार और विभेदन में माइक्रोआरएनए-1 और माइक्रोआरएनए-133 की भूमिका। नेचर जेनेटिक्स, **38**, 228-233।

क्लॉप, ए., मार्सेक, एफ., टेकेडा, एच., पिरोट्टिन, डी., टोरिडोर, एक्स., बीबे, बी., बुइक्स, जे., केमेंट, एफ., एल्सन, जे.एम., ईचेन, एफ., लार्ज़ुल, सी., लावेल, ई., मीश, एफ., मिलेंकोविक, डी., टोबिन, जे., चैरली, सी. और जॉर्जेस, एम.(2006). मायोस्टैटिन जीन में एक संभावित अनुचित माइक्रोआरएनए लक्ष्य साइट बनाने वाला उत्परिवर्तन भेड़ में मांसलता को प्रभावित करता है। नेचर जेनेटिक्स, **38**, 813–818।

कॉकटेल, एन.ई., जैक्सन, एस.पी., शाय, टी.एल., नील्सन, डी., मूर, एस.एस., स्टील, एम.आर., बारेंड्स, डब्ल्यू., ग्रीन, आर.डी. और जॉर्जेस, एम.(1994). गोजातीय डीएनए मार्करों का उपयोग करके भेड़ (Ovis) में कैलिपीज जीन के क्रोमोसोमल स्थानीयकरण। प्रोसीडिंग्स ऑफ़ दी नेशनल अकादमी ऑफ़ साइंसेज यु. एस. ए, **91**, 3019-3023।

क्रिप्पा, एस., कैसानो, एम., मेसिना, जी., गैलि. डी., गल्वेज़, बी.जी., कर्क, टी., अल्टमोर, सी., रोंज़ोनी, एफ., टोलेन, जे., गिजेबर्स, आर., डेबीसर, जेड., जांस्स, एस., ज़ुपान, बी., ज़ज़ा, ए., कोसु, जी. और संपोलासी, एम.(2011). माइक्रोआरएनए 669s और माइक्रोआरएनए 669q प्रसवोत्तर हृदय पूर्वजों में कंकाल की मांसपेशी विभेदन को रोकते हैं। जर्नल ऑफ़ सेल बायोलॉजी, **193**, 1197-1212।

डारनेल, डी.के., कौर, एस., स्टेंसलाव, एस., कोनीजेका, जे.एच., यात्स्कीवीच, टी.ए. और एंटिन, पी.बी.(2007). गीशा: चिकन भ्रूण

के लिए सीटू संकरण जीन अभिव्यक्ति संसाधन में। साइटोजेनेटिक एंड जीनोम रिसर्च, **117**, 30-5।

डे, बी.के., गगन, जे. और दत्ता, ए.(2011). मीर -206 और -486 ने पैक्स 7 को डाउनग्रेड करके मायोब्लास्ट विभेदन को प्रेरित किया। मॉलिक्यूलर एंड सेलुलर बायोलॉजी, **31**, 203-214।

डोंग, एच., लेई, जे., डिंग, एल., वेन, वाई., जू, एच. और झांग, एक्स.(2013). माइक्रोआरएनए: फंक्शन, डिटेक्शन और बायोएनालिसिस। जर्नल ऑफ़ दी अमेरिकन केमिकल सोसाइटी, **113**, 6207-6233।

ईसेनबर्ग, आइ., अलेक्जेंडर, एम.एस. और कुंकल, एल.एम.(2009). सामान्य और रोगग्रस्त कंकाल की मांसपेशी में माइक्रोआरएनए। जर्नल ऑफ़ सेलुलर एंड मॉलिक्यूलर मेडिसिन, **13**, 2-12।

फेंग, वाई., काओ, जे.एच., ली, एक्स.वाई. और झाओ, एस.एच.(2011). माइक्रोआरएनए -214 अभिव्यक्ति का निषेध प्रसार और C2C12 मायोब्लास्ट के विभेदन को दबाता है। सेल बायोकेमिस्ट्री एंड फंक्शन, **29**, 378-383।

गुलर, आई. और रसेल, ए.पी.(2010). कंकाल की मांसपेशी में माइक्रोआरएनए: विकास, रोग और कार्य में उनकी भूमिका और विनियमन। जर्नल ऑफ फिजियोलॉजी, **588** (21), 4075-4087।

हैमिल्टन, ए.जे. और बॉलकॉम्बे, डी.सी.(1999). पौधों में पोस्टट्रांसक्रिपेशनल जीन सिलेन्सिंग में छोटे एंटीसेंस आरएनए की एक प्रजाति। साइंस, **286**, 950-952।

होरक, एम., नोवाक, जे. और बिएनर्तोवा-वास्कू, जे.(2016). कंकाल मांसपेशियों के विकास में मांसपेशी विशिष्ट माइक्रोआरएनए। डेवलपमेंटल बायोलॉजी, **410** (1), 1-13।

किम, एच.के., ली, वा.स., शिवप्रसाद, यू., मल्होत्रा, ए. और दत्ता, ए.(2006). मांसपेशी विशिष्ट माइक्रोआरएनए एमआईआर-206 मांसपेशियों के विभेदन को बढ़ावा देता है। जर्नल ऑफ़ सेल बायोलॉजी, **174**, 677-687।

किम, वी.एन., हान, जे. और सिओमी, एम.सी.(2009). जानवरों में छोटे आरएनए का बायोजेनेसिस। नेचर रिव्यू मॉलिक्यूलर बायोलॉजी, **10**, 126-139।

किम, जे.एम., लिम, के.एस., हांग, जे.एस., कांग, जे.एच., ली, वा.क्स. और हांग, के.सी.(2015). पोर्सिन एमआईआर-208b में एक बहुरूपता माइक्रोआरएनएन बायोजेनेसिस और सॉक्स-6 और ऍमवाईएच7 की अभिव्यक्ति के साथ मांसपेशियों फाइबर विशेषताओं और मांस की गुणवत्ता पर प्रभाव के साथ जुड़ा हुआ है। एनिमल जेनेटिक्स, **46**, 73-77।

ली, आर.सी. और एम्ब्रोस,वी.(2001). कैनोरहैब्डिटेगेन्स में छोटे आरएनए का एक व्यापक वर्ग। साइंस, **294** (5543), 862-864।

ली, आर.सी., फेंबौम, आर.एल. और एम्ब्रोस, वी.(1993). सी. एलेगंस हेट्रोक्रोनिक जीन लिन-4 लिन-14 के लिए एंटीसेंस पूरकता के साथ छोटे आरएनए एन्कोड करता है। सेल, **75**, 843-854।

ली, वाई., एएचन, सी., हान, जे., चोई, एच., किम, जे., यिम, जे., ली, जे., प्रोवोस्ट, पी., रैडमार्क, ओ., किम, एस. और किम, वी.एन. (2003). परमाणु आरऍनएजे III ड्रोशा माइक्रोआरएनए प्रसंस्करण शुरू करता है। नेचर, **425**, 415-419।

ली, जे., किम, जे., लिम, के., हांग, जे. और ली, वाई.(2012). मांसपेशी फाइबर और मांस की गुणवत्ता के लक्षणों पर पोर्सिन माइक्रोआरएनए मीर 206/ मीर 133B क्लस्टर में बहुरूपता के प्रभाव। एनिमल जेनेटिक्स।

लुंड, ई., गुटिंगर, एस., कैलाडो, ए., डाहलबर्ग, जे.ई. और कुटाय, यू.(2004). माइक्रोआरएनए अग्रदूतों का परमाणु निर्यात। साइंस, **303**, 95-98।

मैककार्थी, जे.जे. और एसेसर, के.ए.(2007). कंकाल मांसपेशी हाइपरट्रॉफी के दौरान माइक्रोआरएनए-1 और माइक्रोआरएनए-133ए अभिव्यक्ति में कमी आई है। जर्नल ऑफ़ एप्लाइड फिजियोलॉजी, **102**, 306–313।

मैकडानेल्ड, जी.टी., एमिथ, पी.एल., डूमिट, ई.एम., माइल्स, आर.जे., कोटिन्हो, एल.एल., सोनस्टेगार्ड, एस.टी., मटुकुमाल्ली, के.एल., नोनेमैन, जे.डी. और विडमैन, टी.आर.(2009). स्वाइन कंकाल मांसपेशियों के विकास के दौरान माइक्रोआरएनए ट्रांसक्रिप्टोम प्रोफाइल। बीएमसी जीनोमिक्स, **10**(77), 1-11।

नया, एफ.जे. और ओल्सन, ई.(1999). कंकाल की मांसपेशियों की वृद्धि और विभेदन को नियंत्रित करने वाले रास्तों को संकेत देने के लिए एक प्रतिलेखन लक्ष्य। करंट ओपिनियन इन सेल बायोलॉजी, **11**, 683-688।

नोवाक, जे., विंक्लार्क, जे., बिएनर्टोवा-वास्कू, जे. और स्लैबी, ओ.(2013). कंकाल मांसपेशियों के विकास और राबदोम्योसर्कोमा पैथोजेंसिसिस में उनकी भूमिकाओं में शामिल माइक्रोआरएनए। पीडियाट्रिक ब्लड & कैंसर, **60** (11), 1739-1746।

निकोल, जी.बी., बुर्किन, एच.आर., ब्रॉड, टी.ई., जोपसन, एन.बी., ग्रीर, जि.जे., बैन, डब्लू.इ., राइट, सी.एस., डोड्स, के.जी., फेनेसी, पी.एफ. और मैकइवान, जे.एसी.(1998). भेड़ में रिब-आई मस्कुलर के लिए कार्वेल लोकोस के लिए माइक्रोसेटेलाइट मार्करों की जेनेटिक लिंकेज, जेनेटिक्स पर 6 वीं विश्व कांग्रेस की कार्यवाही में पशुधन उत्पादन आर्मडेल के लिए लागू। एनएसडब्ल्यू: न्यू इंग्लैंड विश्वविद्यालय, 529-532।

ओ'रुरके, जे.आर., जॉर्जेस, एस.ए, साये, अच्.आर., टैस्कॉट, एस.जे., मैकमैनस, एम.टी., गोल्डहैमर, डी.जे., स्वानसन, एम.एस. और हार्फे, बी.डी.(2007). कंकाल मांसपेशियों के विकास के दौरान डाइसर के लिए आवश्यक भूमिका। डेवलपमेंटल बायोलॉजी, **311** (2), 359-368।

पेरबेलिनी, आर., ग्रीको, एस., सर्रा-फेरारिस, जी., कार्डानी, आर., कैपोग्रोसी, एम.सी. और मोला, जी.(2010). मायोटोनिक डिस्ट्रॉफी टाइप 1 में विशिष्ट माइक्रोआरएनए का डिस्रेगुलेशन और सेलुलर गलत स्थान। न्यूरोमस्कुलर डिसऑर्डर्स, **21**, 81-88।

प्रिचार्ड, सी.सी., चेंग, एच.एच. और तिवारी, एम.(2012). माइक्रोआरएनए प्रोफाइलिंग: दृष्टिकोण और विचार। नेचर रिव्यू जेनेटिक्स, **13** (5), 358-369।

राव, पी.के., कुमार, आर.एम., फरखोदेह, एम., बास्करविले, एस. और लोडिश, एच.एफ.(2006). मायोजेनिक कारक जो मांसपेशियों-विशिष्ट माइक्रोआरएनए की अभिव्यक्ति को विनियमित करते हैं। प्रोसीडिंग्स ऑफ़ दी नेशनल अकादमी ऑफ़ साइंसेज यु. अस. ऐ, **103**, 8721-8726.

रेनहार्ट, बी.जे., स्लैक, एफ.जे., बासन, एम., पासक्विनेली, ए.ई., बेटिंगर, जे.सी., रूग्वी, ए.ई., हॉर्विट्ज, एच.आर. और रुवकुन, जी.(2000). 21-न्यूक्लियोटाइड लेट-7 आरएनए कैनोरहैब्डिटेसेगन्स में विकासात्मक समय को नियंत्रित करता है। नेचर, **403**, 901-906।

रूजी, ई., लियू, एन. और ओल्सन, इ.एन.(2008). माइक्रोआरएनए मांसपेशियों को फ्लेक्स करते हैं। ट्रेंड्स जेनेटिक्स, **24**, 159-166।

श्वार्ज, डी.एस., हट्वाग्नर, जी., हेली, बी. और ज़मोर, पी.डी.(2002). सबूत है कि एसआई आरएनए गाइड के रूप में कार्य करते हैं, नहीं प्राइमर, ड्रोसोफिला और मानव आरएनए आई रास्तों में। मॉलिक्यूलर सेल, **10**, 537-548।

शेन, एल., चेन, एल., झांग, एस., झांग, वाई., वांग, जे. और झू, एल.(2016). माइक्रोआरएनए-23ए मायोसाइट एन्हांसर फैक्टर 2C (एमईएफ2सी) के माध्यम से धीमी गति से मायोसिन भारी श्रृंखला आइसोफॉर्म संरचना को कम करता है और संभावित रूप से मांस की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। मीट साइंस।

सन, क्यू., झांग, वाई., यांग, जी., चेन, एक्स., काओ, जी., वांग, जे., सन, वाई., झांग, पी., फैन, एम., शाओ, एन. और यांग, एक्स. (2008). विकास कारक-ए-विनियमित एमआईआर-24 प्रमोट्स कंकाल मांसपेशियों के विभेदन को बदलना। न्यूक्लिक एसिड रिसर्च, **36**, 2690–2699।

वी, डब्ल्यू., ही, एच.बी., झांग, एच.एक्स., बाई, जे.बी., लियू, एच.जेड., काओ, जे.एच., ली, एक्स.वाई. और झाओ, एस.एच.(2013). एमआईआर-29 ने एकेटी 3 को प्रसार को कम करने और कंकाल की मांसपेशियों के विकास में मायोब्लास्ट के विभेदन को सुगम बनाने के लिए लक्षित किया।सेल डेथ एंड डिजीज, **4**, 1-9।

वांग, वाई., झांग, सी., फेंग, एक्स., झाओ, वाई., चेन, एक्स., सन, जे., झोउ, वाई., वांग, जे., वांग, वाई., लैन, एक्स. और चेन, एच.(2014). माइक्रोआरएनए की पहचान और प्रोफाइलिंग और कैप्रिन कंकाल की मांसपेशी विकसित करने से उनके लक्ष्य जीन। प्लोस वन, **9** (5), 1-16।

विलम्स, ए.एच., लियू, एन., वैनरूजी, ई. और ओल्सन, एन.(2009). मांसपेशियों के विकास और रोग का माइक्रोआरएनए नियंत्रण। करंट ओपिनियन इन सेल बायोलॉजी, **21** (3), 461-469।

वोंग, सी.फ. और टेलम, आर.एल.(2008). माइक्रोआरएनए-26ए मायोजेन्सिस के दौरान ज़ेस्टे समरूप 2 के हिस्टोन मिथाइलट्रांसफरेज बढ़ाने का लक्ष्य है। जर्नल ऑफ़ बायोलॉजिकल केमिस्ट्री, **283**, 9836-9843।

यांग, डब्ल्यू., चेंदरिमाडा, टी.पी., वांग, क्यू., हिगुची, एम., सीबर्ग, पी.एच., शिखततर, आर. और निशिकुरा, के.(2006). एडीएआर डॉमिनसेस द्वारा आरएनए संपादन के माध्यम से माइक्रोआरएनए प्रसंस्करण और अभिव्यक्ति का मॉड्यूलेशन। नेचर स्ट्रक्चरल & मॉलिक्यूलर बायोलॉजी, **13**, 13-21।

भैसों की उत्पादन क्षमता पर हीट स्ट्रेस का प्रभाव तथा इसका नियंत्रण

सौम्या दाश[1], एम एस टांटिया[1], गायत्री गुजर[1] एवं केशर परवीन[2]

[1]भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

[2]पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.) - 491001

परिचय

भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। वर्ष 2018 -19 में भारत में कुल 187.75 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन हुआ, जिसमे 49% योगदान भैंसो का रहा । हीट स्ट्रेस भैसों के उत्पाद और प्रजनन के लिए एक बड़ी चुनौती है। काली चमड़ी, कम घने बाल और कम ऊष्मा - अपव्यय क्षमता के कारण भैंस हीट स्ट्रेस के प्रति ज्यादा प्रवृत्त होती है । बहुत कम भैसें प्रसव के बाद अप्रैल और मई में हीट में आती हैं, जब तापमान अत्यधिक होता है। जब वायुमंडलीय तापमान व आर्द्रता थर्मो-न्यूट्रल जोन से ज्यादा होता है, ऊष्मा अपव्यय करने में परेशानी के कारण जानवर हीट स्ट्रेस में आ जाते हैं। हीट स्ट्रेस का अनुमान तापमान आर्द्रता सूचकांक (टी एच आई) के द्वारा लगाया जा सकता है। टी एच आई को ड्राई बल्ब तापमान, वेट लैब तापमान और सापेक्षिक आर्द्रता से मापा जाता है।

भैंसों के उत्पादन को प्रभावित करने वाले विभिन्न हीट स्ट्रेस क्षेत्र

करनाल में एक अध्ययन द्वारा विभिन्न तापमान आर्द्रता सूचकांक मॉडल बनाये गए, जिसके दौरान 81 की अधिकतम तापमान आर्द्रता सूचकांक जून के माह में और 56 की न्यूनतम तापमान आर्द्रता सूचकांक जनवरी माह में पाई गयी। यह माना जाता है की 75 की अधिकतम तापमान आर्द्रता सूचकांक के उपरांत भैंसो के उत्पादन और प्रजनन पर प्रभाव पड़ता है।

अतः एक साल को दो भागों में - बिना हीट स्ट्रेस वाला एवं हीट स्ट्रेस वाला जोन में बांटा जा सकता है। बिना हीट स्ट्रेस वाले जोन में जनवरी, फ़रवरी, मार्च, अक्टूबर, नवम्बर एवं दिसंबर महीने और हीट स्ट्रेस वाले जोन में अप्रैल से सितम्बर महीने सम्मिलित हैं। हीट स्ट्रेस वाले जोन में मई व जून महीने प्रजनन संबंधी मानकों की दृष्टि से क्रिटिकल हीट स्ट्रेस वाले महीने एवं जुलाई से सितम्बर महीनों में उत्पादन में अत्यधिक गिरावट आती है, अतः इसे क्रिटिकल हीट स्ट्रेस जोन माना जाता है।

उत्पादन पर हीट स्ट्रेस का दुष्प्रभाव

उच्च आनुवंशिक क्षमता वाले पशुओं के दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध के कम्पोज़िशन पर हीट स्ट्रेस अत्यंत दुष्प्रभाव डालता है। तापमान आर्द्रता सूचकांक और दुग्ध उत्पादन इस तरह ऋणात्मक रूप से सह- सम्बंधित हैं। तापमान आर्द्रता सूचकांक में 68 से 78 तक की बढ़ोत्तरी शुष्क पदार्थ की आवश्यकता को 9.6% और दुग्ध उत्पादन को 21% कम कर देता है। भैंसो में जुलाई से सितम्बर के महीनों में यह देखा गया है कि टी एच आई में मात्र एक अंक की बढ़ोतरी 8.18 किलो कैलोरी / किलो ऊर्जा संशोधित दुग्ध उत्पादन (इ सी एम वाई) कम कर देती है।

गर्म व आद्र वायुमंडल केवल दुग्ध उत्पादन ही नहीं बल्कि दुग्ध में वसा व प्रोटीन की मात्रा को भी प्रभावित करता है। यह पाया गया है की हीट स्ट्रेस दुग्ध में वसा की मात्रा व प्रोटीन की मात्रा जो कि सर्दियों में 3.79% एवं 3.20% एवं गर्मियों में 3.49% व 3.07% तक घटा देता है।

प्रजनन क्षमता पर हीट स्ट्रेस का प्रभाव

सर्विस पीरियड को प्रजनन क्षमता का मापदंड माना जाता है। यह पाया गया है की 75 से ज्यादा तापमान आर्द्रता सूचकांक में बढ़ोतरी के साथ ही सर्विस पीरियड भी बढ़ता जाता है। मई के महीने में, 80 के तापमान आर्द्रता सूचकांक पर औसत सर्विस पीरियड में बढ़ोतरी (180) अथवा मार्च के महीने में औसत 68

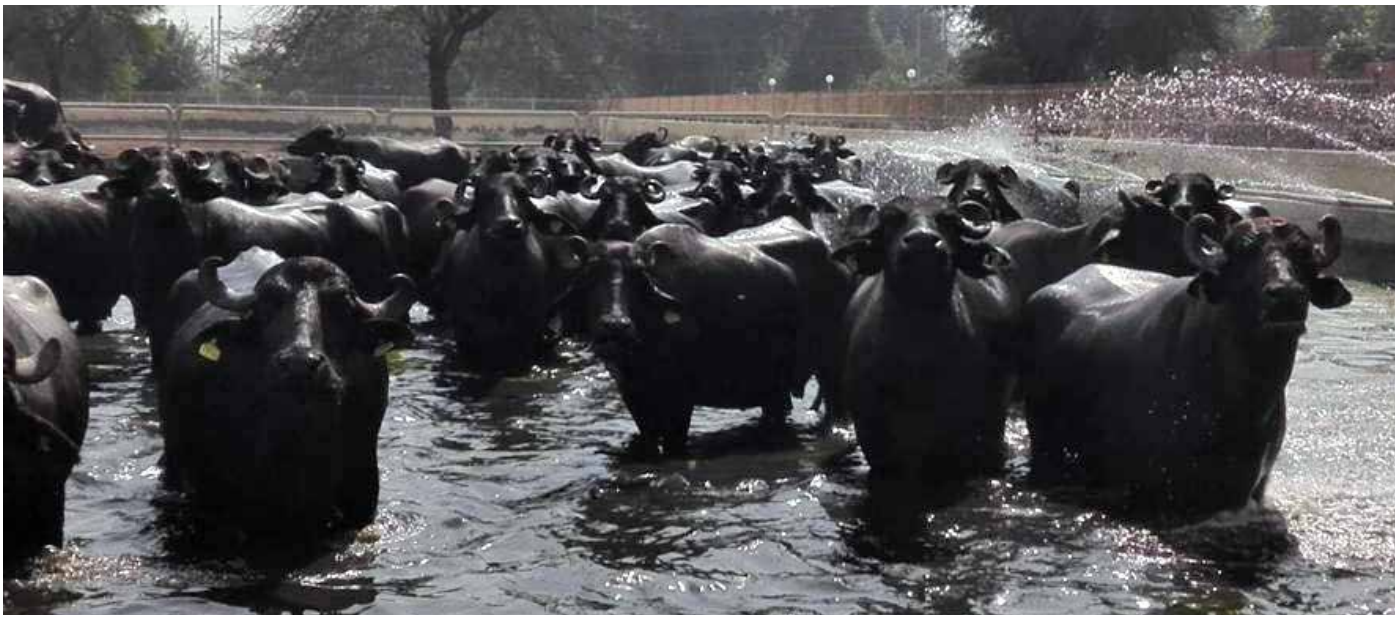

तापमान आर्द्रता सूचकांक पर सबसे कम औसत सर्विस पीरियड (119 दिन) पाया गया है।

हीट स्ट्रेस गर्भधारण दर व गर्भावस्था दर को भी प्रभावित करता है। अधिकतम 78% की औसत गर्भधारण दर अक्टूबर माह व न्यूनतम 59% गर्भधारण दर अगस्त माह में देखा गया है। जैसे ही तापमान आर्द्रता सूचकांक 75 या 75 से अधिक हो जाता है, औसत गर्भावस्था दर 0.41 से गिर कर 0.25 तक हो जाती है।

हीट स्ट्रेस से बचाव की रणनीतियाँ

मूल रूप से हीट स्ट्रेस के ऋणात्मक प्रभाव से पशुओं को बचाने के लिए निम्नलिखित तीन रणनीतियां हैं :

- आनुवंशिक रूप से गर्मी सहन करने वाली डेरी नस्लें विकसित करना
- पोषण में बदलाव
- वातावरणीय बदलाव

आनुवंशिक रूप से गर्मी सहन करने वाली डेरी नस्लें विकसित करना

ज्यादा दुग्ध उत्पादन के लिए चयनित पशुओं में मेटाबोलिक हीट ज्यादा बनता है जो पशुओं को हीट स्ट्रेस के लिए ज्यादा प्रवृत्त बनाता है। इससे बचने के लिए हीट स्ट्रेस से प्रभावित क्षेत्र से पशुओं का चयन करना या स्थानीय नस्ल से हीट स्ट्रेस अनुकूलन जीन का व्यावसायिक पशु समूह में मार्कर असिस्टेड सिलेक्शन द्वारा अंतर्मन करना एक उपाय है।

पोषण में बदलाव

हीट स्ट्रेस से प्रभावित होने के कारण भैंसो के खाने की मात्रा में कमी आती है व शरीर में नेगेटिव एनर्जी बैलेंस होता है। इस दौरान चारा व रातिब मिश्रण में पोषक तत्वों की मात्रा में सुधार, साथ ही पशु के आहार में पूरक वसा मिलानी चाहिए। ऊर्जा संतुलन के लिए आहार में पूरक प्रोटीन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। हीट स्ट्रेस्ड भैंसो में अच्छी गुणवत्ता तथा कम नष्ट होने वाला प्रोटीन खिलाने से दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी पाई गयी है।

वातावरणीय बदलाव

हीट स्ट्रेस की वजह से भैंसो में अप्रैल से सितम्बर के महीने अत्यंत नाजुक माने जाते हैं। पशुओं के आस-पास के वातावरण में बदलाव हीट स्ट्रेस से बचाव के लिए एक अहम प्रबंधन विधि है। छांव की व्यवस्था पशुओं को सूर्य की सीधी किरणों से बचाती है। फॉगिंग व मिस्टिंग गर्मी से बचाव के कुछ और तरीके हैं। इन तरीकों में पानी की महीन बूंदों को हवा की धारा से तुरंत फैला दिया जाता है जो

तीव्रता से उड़ जाती है, फलस्वरूप आस - पास की वायु ठंडी हो जाती है। जबकि फव्वारे पशुओं की चमड़ी और बालों को प्रत्यक्ष रूप से ठंडा करते हैं।

निष्कर्ष

हीट स्ट्रेस भैंसों की उत्पादन व प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। तापमान आर्द्रता सूचकांक हीट स्ट्रेस को मापने के लिए एक सामान्यतः रूप से उपयोग किया जाने वाला सूचकांक है। जब तापमान आर्द्रता सूचकांक 75 से ज्यादा बढ़ने लगता है, भैंसे हीट स्ट्रेस से ग्रस्त होने के लिए ज्यादा प्रवृत्त होती हैं। अप्रैल से सितम्बर के माह सर्वोत्तम उत्पादन के लिए अति नाजुक हैं। अप्रैल से सितम्बर माह के दौरान उचित प्रबंधन रणनीतियां, जैसे की पोषण में बदलाव व वायुमंडलीय बदलाव हीट स्ट्रेस के ऋणात्मक प्रभाव से बचाव के लिए अत्यन्त आवश्यक है। तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि और गर्म वातावरण में अनुकूलन क्षमता बढ़ाने के लिए गर्मी सहन कर पाने वाले पशुओं का चयन करना भी हीट स्ट्रेस प्रबंधन का एक उपाय है।

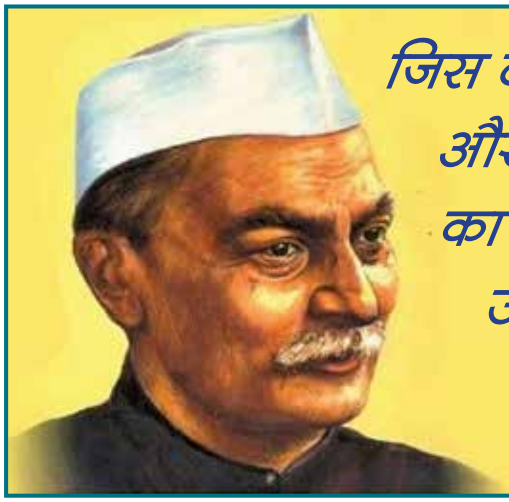

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य का गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता

डॉ. राजेंद्र प्रसाद

पशु आनुवंशिक संसाधन विविधता एवम एक्स-सीटू संरक्षण

राजीव ए.के. अग्रवाल एवं अमोद कुमार

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

भारत में पशु आनुवंशिक संसाधनों का प्रतिनिधित्व देशी नस्ल के पशुओं, भैंस, बकरी, भेड़, सूअर, घोड़े, ऊँट और मुर्गी की एक विस्तृत नस्ल श्रृंखला द्वारा किया जाता रहा है। पशुधन की आनुवंशिक जैव विविधता को लाखों वर्षों के विकास ने स्थाई बनाया है। इस जैव विविधता में विपरीत जलवायु, महामारी, कीट और बीमारियों का सामना करते की क्षमता है एंव चारा, दाना और पानी की मात्रा अपर्याप्त होते हुए भी जीवित रहने की क्षमता विदेशी नस्लों से अधिक है. हालांकि, कई कारणों से कई नस्लों की जनसंख्या का आकार घट रहा है, परन्तु आनुवंशिक विविधता किसानों और प्रजनकों को उत्पादन वातावरण की एक विस्तृत श्रृंखला का उपयोग करने और स्थानीय समुदायों की जरूरतों को पूरा करने के लिए अन्य विविध उत्पादों को विकसित करने के अवसर पैदा करती है। भविष्य में इस तरह की विविधता की अनुपलब्धता सतत विकास में बाधा बन सकती है। इसलिए भारत में तथा विश्व स्तर पर पशु आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल में पशुधन जैव विविधता के संरक्षण हेतु विस्तृत कार्यक्रम अपनाया गया है एवं राष्ट्रीय जीन बैंक की स्थापना की गयी है।

संरक्षण विधियां

संरक्षण विधियों को मोटे तौर पर इन-सीटू और एक्स-सीटू के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इन-सीटू संरक्षण का मतलब है, कि जानवरों को उनकी उत्पादन प्रणाली के भीतर ही, जिस क्षेत्र में नस्ल ने अपनी विशेषताओं को विकसित किया है, में रखा जाता है। एक्स-सीटू संरक्षण उस स्थिति को कहा जाता है जहां जानवरों को उनके प्रजनन क्षेत्र के बाहर रखा जाता है (प्रायोगिक फार्मों में, एनिमल पार्क, संरक्षित क्षेत्रों में या चिड़ियाघरों में रखे गए झुंड) या प्राय: जब आनुवंशिक सामग्री को संरक्षित किया जाता है और जीन बैंकों में वीर्य, ओवा, भ्रूण या डीएनए के रूप में संग्रहित किया जाता है। इन विधियों में से किसी भी माध्यम से संरक्षण के अपने गुण और अवगुण हैं जैसा कि नीचे बताया गया है:

1. **संगठित रेवड़/झुंड:** नस्ल के मुख्य प्रजनन क्षेत्र से दूर अन्यत्र पशुओं की एक छोटी आबादी का रख-रखाव एक्स-सीटू संरक्षण कहलाता है। यह एक शोध संस्थान, सांड़ फार्म, राज्य के स्वामित्व वाले पशुधन फार्म, चिड़ियाघर या नस्ल पार्क में बनाए गए झुंड के रूप में हो सकता है। इस आबादी का उपयोग लुप्तप्राय नस्ल, नई नस्ल के विकास और डीएनए अध्ययन के विकास हेतु किया जा सकता है।

2. **भ्रूण का क्रायोप्रेज़र्वेशन:** यह नस्ल सुधार, संरक्षण और लुप्त पशु नस्लों के पुनरुद्धार के लिए आदर्श है। इसका मुख्य महत्व इसकी द्विगुणित प्रकृति और सभी जीन युक्त होने के कारण है। हालांकि, संरक्षण करने वाले भ्रूण का उपयोग सीमित होता हैं, क्योंकि इसके उत्पादन और हस्तांतरण के लिए अत्यधिक कुशल श्रमशक्ति और बड़े संसाधनों की आवश्यकता होती है।

3. **दैहिक कोशिका बैंकिंग:** दैहिक कोशिकाओं का उपयोग लुप्तप्राय पशु आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए आनुवंशिक सामग्री के रूप में किया जा सकता है। ये द्विगुणित कोशिकाएं हैं और पशु के पूर्ण आनुवंशिक कोड होते हैं। इन कोशिकाओं के रख-रखाव की लागत बहुत कम है और कम लागत पर दूरगामी क्षेत्र से भी जल्दी से नमूना लिया जा सकता है। उनका उपयोग चिकित्सीय प्रोटीन के उत्पादन के लिए भी

किया जा सकता है। हालाँकि दैहिक कोशिकाओं को संरक्षण कार्यक्रमों में भी कम वरीयता मिलती है क्योंकि क्लोनिंग की सफलता दर अभी भी बहुत कम है।

4. **एपिडीडिमल शुक्राणु बैंकिंग:** एपिडीडिमल शुक्राणु विशेष रूप से दुम शुक्राणु परिपक्व है और सामान्य निषेचन से गुजरने और भ्रूण के विकास का कारण बनने की पूरी क्षमता है। इन विट्रो फर्टिलाइजेशन (आईवीएफ) प्रयोगों से पता चला है कि एपिडीडिमल वीर्य में महत्वपूर्ण, ज़ोना पेल्विक प्रोटीन के लिए अधिकारिक क्षेत्र है। वध किए गए जानवरों के कॉडा एपिडीडिमल वीर्य का संग्रह शुक्राणुओं के संरक्षण का एक तेज और सस्ता विकल्प होगा क्योंकि यह नरों का वीर्य लेने की प्रक्रिया में लगने वाले समय को बचाएगा। इसलिए एपिडीडिमल शुक्राणु क्रायोस्टोरेज संरक्षण विशेष रूप से छोटे जुगाली करने वाले पशुओं में आशाजनक पद्धति है और इस दिशा में आगे अनुसंधान के प्रयासों की आवश्यकता है।

5. **भ्रूण स्टेम सेल लाइनों का क्रायोप्रेज़र्वेशन:** यह उत्पादक पशुओं और आनुवंशिक रूप से संशोधित पशुओं के लिए एक उत्कृष्ट जैविक सामग्री हो सकती है। इसका जीन और सेल थेरेपी में एवं महत्वपूर्ण चिकित्सीय प्रोटीन के उत्पादन के लिए भी उपयोग हो सकता है। हालाँकि अभी तक उनका उपयोग सीमित है, क्योंकि स्थिर भ्रूण स्टेम सेल लाइनों को मानव और मूषकों को छोड़कर कृषि पशुओं में सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं किया गया है।

6. **शुक्राणुजन्य स्टेम सेल लाइनों का क्रायोप्रेज़र्वेशन:** स्पर्मेटोगोनियल स्टेम सेल (SSCs) वयस्क स्टेम सेल हैं जो अगली पीढ़ी को आनुवंशिक सूचनाएं प्रेषित करते हैं और शुक्राणुजनन के लिए नींव बनाते हैं। एक दाता मूषक वृषण के शुक्राणुजन्य स्टेम सेल्स के प्रत्यारोपण से एक प्राप्तकर्ता मूषक वृषण की अर्धवृत्त नलिकाओं में दाता व्युत्पन्न शुक्राणुजनन प्रभाव होता है। एसएससी प्रत्यारोपण भी बकरियों, कुत्ते, गाय, सुअर, बबून और गोजातीय शुक्राणुजन स्टेम कोशिकाओं में प्रदर्शित किया गया है जो प्राप्तकर्ता मूषक सेमिनिफेरस नलिकाओं को उपनिवेश करने में सक्षम दिखाया गया है। इन-विट्रो प्रणाली जो शुक्राणुजन्य स्टेम कोशिकाओं के प्रसार और रख-रखाव का समर्थन करती है, उनका उपयोग शुक्राणुजन्य स्टेम सेल संख्याओं को संरक्षित और विस्तारित करने के साथ-साथ आनुवंशिक संशोधन में सहायता के लिए किया जा सकता है। हालांकि, पालतू पशु विविधता संरक्षण में इसका उपयोग करने से पहले कृषि पशुओं में बहुत कुछ किया जाना चाहिए।

7. **डीएनए का भंडारण:** डीएनए का क्रायोजेनिक भंडारण आनुवंशिक सामग्री के संरक्षण की एक और पद्धति है। जीवित जर्मप्लाज्म पर इसके कई फायदे हैं क्योंकि यह बिमारी के हस्तांतरण की किसी संभावना न होने के साथ-साथ कम लागत वाली है एवं इसका भंडारण और परिवहन बहुत आसान है। डीएनए ट्रांसजैनेसिस या नॉक आउट तकनीक द्वारा उनके अनुक्रमण के माध्यम से जीन संरक्षण में उपयोग किया जा सकता है, और विभिन्न आबादी या आनुवंशिक सामग्री की क्रॉस चेकिंग द्वारा लुप्त हुई नस्लों के पुर्नउत्पादन में मदद कर सकता है। हालाँकि, इस तथ्य के कारण सीमाएँ हैं कि विभिन्न पशु प्रजातियों के जीनोम मानचित्र अभी तक उपलब्ध नहीं हैं और जीवन केवल डीएनए से नहीं बनाया जा सकता है।

8. **प्रशीतित वीर्य:** यह आनुवांशिक संसाधनों के उपयोग की गतिविधियों के लिए आदर्श पद्धति है, जो संरक्षित नस्लों की आनुवंशिक सामग्री के नमूने को एक ऐसे रूप में प्रदान करता है जिसकी प्राप्तकर्ता आबादी में सुविधाजनक अनुक्रमण की मान्यता है। हालांकि, एक पीढ़ी में जमे हुए वीर्य से क्रायोप्रेशर वाली नस्ल का पुनर्जनन तभी संभव है, जब उस नस्ल की जीवित मादाएं उपलब्ध हों, अन्यथा एक संरक्षित नस्ल को

फिर से स्थापित करने के लिए कई पीढ़ी के उन्नयन की आवश्यकता होती है। इस सीमा के बावजूद, विशेष रूप से गायों और भैंसों में स्थापित वीर्य प्रशीतन तकनीक की उपलब्धता और देश भर में वीर्य प्रशीतन की अवसंरचना की उपलब्धता इसे स्वदेशी पशुधन जैव विविधता के संरक्षण के लिए पसंद का तरीका बनाती है। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल में एक राष्ट्रीय वीर्य बैंक की स्थापना करके भविष्य के लिए देशी पशुधन के वीर्य क्रायोस्टोरेज के माध्यम से एक्स-सीटू संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

संरक्षण प्राथमिकता

संग्रह की उच्च लागत और संरक्षित सामग्री का सीमित उपयोग एक्स-सीटू संग्रह के विकास को प्रतिबंधित करता है। इसलिए एक्स-सीटू कार्यक्रम में इसे आरम्भ करने के लिए नस्लों को प्राथमिकता देना उचित होगा। कई कारकों का मूल्यांकन इस तरह की प्राथमिकता का आधार बन सकता है। संरक्षण कार्यक्रम को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी जनसंख्या और उत्पादन के रुझान के साथ-साथ विभिन्न नस्ल के मवेशियों की गणना हो। हालांकि कई बार डेटा उपलब्ध प्रजाति के अनुसार होता है, त्वरित जनसंख्या अनुमानों का पता लगाने और खतरे वाली नस्लों के संरक्षण के प्रयासों को शुरू करने की आवश्यकता है। एक नस्ल के पास अद्वितीय जीन और इसके विलुप्त होने की संभावना एक नस्ल के संरक्षण की प्राथमिकता निर्धारित करने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार हो सकता है। माइक्रोसेटेलाइट जीनोटाइपिंग द्वारा नस्लों के बीच संबंध का परिमाण उन्हें अलग-अलग समूहों में समूहित कर सकता है, प्रत्येक समूह आनुवंशिक रूप से समीप / संबंधित नस्लों से मिलकर बनता है जो दूसरे समूहों की नस्लों से भिन्न होते हैं। इस तरह की व्यवस्था से संरक्षण लागत में भारी कमी आएगी क्योंकि एक समूह में एक ही नस्ल के संरक्षण से संबंधित समूह की सभी नस्लों का प्रतिनिधित्व होगा। इस तरह के फायलोजेनिक विभेद नस्लों में माइक्रोसेटेलाइट मार्करों का उपयोग करके पशुधन प्रजातियों में जीनों की मैपिंग द्वारा संभव हैं। पशुधन की विभिन्न प्रजातियों में निकट संबंधी आबादी के बीच आनुवंशिक दूरी के आकलन के लिए इन मार्करों की उपयोगिता को कई अध्ययनों द्वारा प्रलेखित किया गया है। फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन ने मोदाद (MODAD) प्रोजेक्ट के तहत माइक्रोसेटेलाइट मार्करों का उपयोग करके बड़े पैमाने पर अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण परियोजना के लिए विस्तृत तकनीकी कार्यक्रम तैयार किया है। उपरोक्त विचारों के आधार पर विभिन्न प्रजातियों की कुछ नस्लों को एक्स-सीटू संरक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत राष्ट्रीय जीन बैंक (चित्र 1) में उनके प्रशीतित वीर्य को एन.बी.ए.जी.आर. में रखने के लिए किया गया है। इसके साथ ही डीएनए और दैहिक कोशिकाओं के रूप में एक्स-सीटू संरक्षण भी एन.बी.ए.जी.आर. में आरम्भ किया गया है।

नस्ल की प्रवृत्ति

एक नस्ल की गणना की प्रवृत्ति यह सुझाव देने के लिए एक महत्वपूर्ण मानक है कि क्या नस्ल का संरक्षण किया जाना चाहिए? एक पशु नस्ल की लुप्तप्राय स्थिति को प्रजनन स्टॉक के आकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। प्रजनन मादाओं की संख्या और लिंग अनुपात के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, जो विभिन्न प्रजातियों के बीच भिन्न हो सकते हैं। विभिन्न प्रजातियों में न्यूनतम जनसंख्या आकार के आधार पर पशु नस्ल की लुप्तप्राय स्थिति विभिन्न कार्यकर्ताओं द्वारा सुझायी गई है एवं जनसंख्या का आकार, जो भारतीय परिस्थितियों पर लागू हो सकता है, का भी सुझाव दिया गया है।

परिरक्षण कार्यक्रम में नमूना आकार

परिरक्षण कार्यक्रमों में नमूना आकार आनुवंशिक विचारों और लागत दोनों से प्रभावित होता है। एक प्रमुख जीन के लिए, 20 व्यवहार्य संतानों (100 इकाइयां; वीर्य की एक इकाई एक गर्भाधान के लिए उपयुक्त है) का उत्पादन करने के लिए वीर्य पर्याप्त होना चाहिए, लेकिन कुछ और वीर्य (संभवतः 200 इकाइयां) एक पुनरावर्ती जीन के संरक्षण में वांछनीय हो सकता है। संख्या या नस्ल के भीतर

मात्रात्मक भिन्नता के संरक्षण के लिए 10 से 20 असंबंधित नरों से प्रत्येक में लगभग 100 इकाइयों के वीर्य की आवश्यकता होगी। एक विचार के अनुसार, 25 प्रजातियों से जमे हुए वीर्य का संग्रह सभी प्रजातियों के लिए पर्याप्त होगा, हालांकि, प्रशीतन भंडार होना उचित है, जो कि संरक्षित स्टॉक का अच्छा प्रतिनिधित्व प्रदान करने और बहुत अधिक आनुवंशिक बहाव या इनब्रीडिंग को रोकने के लिए पर्याप्त है।

राष्ट्रीय / क्षेत्रीय जीन बैंकों की भागीदारी के माध्यम से पशुधन संरक्षण

वृहद् पशु विविधता होने और देश के विस्तृत क्षेत्र में बंटी होने के बावजूद उन नस्लों को संरक्षित करना एक बहुत बड़ा कार्य बन जाता है जहां आबादी कम हो रही है। अतः स्वदेशी संसाधनों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक नेटवर्क में काम कर रहे एक्स-सीटू संरक्षण कार्यक्रम के संचालन में कई एजेंसियों की भागीदारी की आवश्यकता है। प्रजनन क्षेत्र में स्थानीय पशुधन के प्रशीतित वीर्य का उत्पादन करने वाले कृत्रिम गर्भाधान केंद्र, एनबीएजीआर के नेशनल जीन बैंक और विभिन्न राज्य पशुधन विकास बोर्डों द्वारा प्रबंधित क्षेत्रीय जीन बैंक में दीर्घकालिक क्रायोप्रिजर्वेशन के लिए जर्मप्लाज्म जमा कर सकते हैं। इन दो बैंकों में संग्रहित जर्मप्लाज्म को प्रजनन क्षेत्र में उपयोग के लिए भी उपलब्ध कराया जा सकता है और बाद में कोष में फिर से भरा जा सकता है।

चित्र 1. राष्ट्रीय जीन बैंक

बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान

अमोद कुमार[1], राजीव ए. के. अग्रवाल[1] एवं योगेश कुमार सोनी[2]

[1]भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

[2]भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मथुरा - 281122

भारत की 20 वीं पशुधन गणना के अनुसार, देश के विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में अनुमानित पशुधन संख्या 536.76 मिलियन है। भारतवर्ष में बकरियाँ संख्या के आधार पर दूसरे स्थान पर हैं तथा कुल पशुधन आबादी का 27.73% योगदान करती है। नवीनतम गणना के अनुसार बकरियों की अनुमानित संख्या 148.88 मिलियन है जोकि पिछली गणना से 10.14% की वृद्धि दिखा रही है। बकरी की कुल आबादी में से नर बकरियों का योगदान 32.10 मिलियन जबकि मादा बकरियों का 116.78 मिलियन है। अब तक भारत में बकरियों की 34 नस्लें पंजीकृत हो चुकी हैं।

बकरी 'गरीब आदमी की गाय' कही जाती है तथा पशुधन अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। छोटा पीढ़ी अंतराल तथा प्रजननशीलता की उच्च दर ने बकरी पालन को ग्रामीण लोगों में आय का एक बड़ा स्रोत बना दिया है। पशु प्रजनन बकरी पालन सहित किसी भी पशुधन उद्यम में लाभप्रदता की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण है। फार्म पर प्रजनन प्रबंधन आजिविका बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस समय आनुवंशिक वृद्धि में तेजी लाने और विभिन्न पशुधन प्रजातियों के प्रजनन प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए विभिन्न सहायक प्रजनन तकनीकों को लागू किया गया है। कृत्रिम गर्भाधान (ए.आई.) एक सरल तकनीक है जोकि बकरी के प्रजनन में लोकप्रियता हासिल कर रही है, जिसमें नर बकरी से वीर्य एकत्र करके उसे उचित समय में मादा बकरी के प्रजनन अंग में सही जगह पर एक ए.आई. सेवा प्रदाता द्वारा जमा किया जाता है।

ताजे एकत्रित वीर्य का उपयोग आमतौर पर उन फार्म में किया जाता है जिनमें वीर्य भंडारण की सुविधा नहीं होती है। ताजे एकत्रित वीर्य के उपयोग से जुड़ा नुकसान यह है कि जो मादायें एक ही समय में गर्माती हैं, केवल उनका ही गर्भाधान किया जा सकता है। 4°C पर प्रशीतित वीर्य का उपयोग वीर्य को अधिक समय तक उपयोग करने का एक और तरीका है। वीर्य को प्रशीतित करने से पहले इसको वीर्यतनुकारक के साथ मिश्रित करना चाहिए जिससे शुक्राणुओ की संख्या अनुकूल हो जाती है। एक बार प्रशीतित वीर्य का उपयोग बाद में 72 - 96 घंटे तक किया जा सकता है। वीर्य को संरक्षित करने का सबसे श्रेष्ठ तरीका क्रायोप्रिजर्वेशन है लेकिन इस पद्धति के लिये विशेष उपकरण तथा प्रशिक्षित तकनीशियन की आवश्यकता होती है।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभ

- पशुपालक तेजी से अपने पशुधन में आनुवंशिक सुधार कर सकते हैं।
- इससे नर और मादा के बीच यौन संचारित रोगों के फैलने की संभावना कम हो जाती है।
- मेमने पैदा होने का बहुत सटीक अनुमान लगा सकते हैं।
- यह फार्म पर कई नर बकरे रखने की आवश्यकता को समाप्त करता है। नर बकरों के लिये भोजन, आवास, अलग से बाड़ लगाने और श्रम की लागत को समाप्त करती है। हालांकि, नर बकरे की अनुपस्थिति में मादा बकरी का गर्माने का पता लगाना अधिक कठिन हो सकता है।
- प्रजनन समय को अधिक सावधानी से नियमित किया जा सकता है, और पशुपालक को ठीक से पता रहता है कि मादा बकरी की ए.आई. कब हुई थी।
- ए.आई. की सहायता से गरमाने की तिथि, प्रजनन, पेडिग्री, आदि की तारीखों का अच्छा रिकॉर्ड रख सकते हैं। इससे फार्म सुधार में मदद मिलती है और पशुपालक बेहतर निर्णय लेने में सक्षम होते है।

कृत्रिम गर्भाधान के नुकसान

- कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन को काम पर रखने की लागत।
- कृत्रिम गर्भाधान मे उपयोग होने वाले उपकरणों की लागत।
- एक व्यक्ति की तुलना में गर्मी का पता लगाने में नर बकरा बेहतर है।

कृत्रिम गर्भाधान की सफलता निर्भर है

- मादा बकरी के गर्माने और ओव्यूलेशन के संबंध में गर्भाधान का उपयुक्त समय।
- गुणवत्ता वाले बकरों से वीर्य को कुशलतापूर्वक इकट्ठा करना तथा उसका क्रायोप्रिजर्वेशन।
- बकरी प्रजनन चक्र की जानकारी होना।
- बकरी के प्रजनन अंगों और उनके कार्यों का ज्ञान होना।
- वीर्य के भंडारण और प्रयोग करने की समझ; उचित और साफ़-सफाई के साथ ही इसके उपयोग करने की क्षमता, बकरियों के लिए आवश्यक उपकरण तथा प्रारंभिक चरण में गर्माने का सटीक पता लगाने की क्षमता।
- बकरी में गर्माने का चक्र, प्रजनन, मेमनो के पैदा होने का रिकॉर्ड, प्रजनन समस्याओं, उपचारों और किसी भी अन्य प्रासंगिक जानकारी जो बकरी के प्रजनन पैटर्न पर प्रतिबिंबित हो सकती है, को सही रखने की आवश्यकता।

बकरी के गर्माने के संकेत

- बकरी का लगातार मिमियाना।
- मादा जननांग में सूजन हो सकती है, लाल हो सकती है और प्रजनन मार्ग से तरल स्राव के कारण वह नम, गंदा या मैला दिखाई दे सकता है।
- बकरी का पूँछ को बार-बार हिलना।
- बकरी का कम मात्रा में बार-बार पेशाब करना।
- मादा बकरी बेचैनी प्रदर्शित करती है।
- वह अन्य बकरियों पर चढ़ सकती है और अपने ऊपर अन्य बकरियों को चढ़ा सकती है।

कृत्रिम गर्भाधान करने का सबसे अच्छा समय

पहली ए.आई. मादा बकरी के गर्मी में आने के 24 घंटे के बाद तथा दूसरी ए.आई. पहली ए.आई. के 12 घंटे बाद करनी चाहिए।

कृत्रिम गर्भाधान के लिए आवश्यक उपकरण एवं सुविधाएं

- बकरी को नियंत्रित करने के लिए ब्रीडिंग स्टैंड या उससे सम्बंधित सुविधाएं।
- कृत्रिम गर्भाधान उपकरणों के सुरक्षित और स्वच्छ भंडारण के लिए एक कॉम्पैक्ट धातु या प्लास्टिक की पेटी।
- कृत्रिम गर्भाधान गन, आमतौर पर 12-इंच लम्बी जोकि 0.25 या 0.5 -मिलीलीटर वीर्य स्ट्रॉ के लिये उपयोग हो सके।
- कृत्रिम गर्भाधान गन की डिस्पोजेबल प्लास्टिक ट्यूब, जोकि कृत्रिम गर्भाधान के समय उसके उपर लगायी जाती हैं।
- प्रजनन मार्ग को खोलने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला स्पेकुलम (चित्र 1)।

चित्र 1. स्पेकुलम

कृत्रिम गर्भाधान की विधिया

- **ग्रीवा गर्भाधान :** इसमें मादा जननांग के माध्यम से वीर्य को गर्भाशय या ग्रीवा में स्थापित किया जाता है। इस विधि द्वारा गर्भाधान दर 50 से 70% तक है। इस विधि का लाभ है कि पशुपालक इस प्रक्रिया को करना आसानी से सीख सकता है तथा इससे बकरी को संक्रमण और दर्द की संभावना भी कम रहती है।
- **लेप्रोस्कोपिक (सर्जिकल) गर्भाधान :** इसमें एक लेप्रोस्कोप का उपयोग किया जाता है और वीर्य को सीधे डिंबवाहिनी में स्थापित करते है। लैप्रोस्कोपिक कृत्रिम गर्भाधान का उपयोग कम होता जा रहा है क्योंकि यह, महंगी है, इसके लिये प्रमाणित पशुचिकित्सक की जरूरत होती है तथा इससे पशुओ में भविष्य के बाँझपन का खतरा रहता हैं। ग्रीवा गर्भाधान तकनीक काफी उत्तम हैं तथा इसकी गर्भाधान दर भी लगभग समान हैं।

बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान की प्रक्रिया

- गर्मी में आई हुई बकरी की पहचान करें और ए.आई. का समय निश्चित करें।
- पिछले पैर को स्टैंड के साथ खड़ा करें, उसकी पीठ को ऊपर उठाएं तथा गर्दन और सिर को जमीन की तरफ रखें।
- यदि आवश्यक हो तो मादा जननांग के उपर लगी गंदगी को साफ पानी से धो लें, और एक साफ कागज या तौलिया से साफ करें।
- उचित आकार के स्पेकुलम को सुनिश्चित करें। फिर स्पेकुलम को मादा जननांग के भीतर प्रविष्ट कराये (चित्र 2)।
- ग्रीवा ओ.एस. को सुनिश्चित करने के लिए प्रकाश स्रोत का उपयोग करें।
- मादा जननांग से होने वाले स्राव की जांच करें और, यदि आवश्यक हो, तो स्पेकुलम से अत्यधिक स्राव को हटा दें।
- 37°C पर 40 सेकंड के लिए पर वीर्य को पिघलाएं।
- वीर्य को सूरज की सीधी रोशनी से बचाये।
- एक साफ टिशु पेपर के साथ स्ट्रॉ को सुखाये।
- कृत्रिम गर्भाधान गन में स्ट्रॉ (चित्र 3) को डालें तथा सूरज की रोशनी और अत्यधिक तापमान से स्ट्रॉ की रक्षा भी सुनिश्चित करें।

चित्र 2. स्पेकुलम को मादा जननांग के भीतर प्रविष्टकराना

चित्र 3. सीमेन स्ट्रॉ एवम क्रायोकैन में सीमेन (वीर्य) का भंडारण

- इसके पश्चात प्लास्टिक शीथ को गन बैरल के ऊपर लगायें।
- फिर कृत्रिम गर्भाधान गन को ग्रीवा ओ.एस. की दिशा में मादा जननांग के भीतर प्रविष्ट कराये तथा गर्भाशय के अंदर तक गन को पहुचाये (चित्र 4)। यदि पशुपालक या तकनीशियन को गर्भाशय के आंतरिक तक पहुंचने में प्रतिरोध का सामना करना पड़ा है तो ग्रीवा में ही वीर्य को जमा करें और इसका रिकॉर्ड रखें।

चित्र 4. कृत्रिम गर्भाधान

- इसके पश्चात कृत्रिम गर्भाधान गन तथा स्पेकुलम को बाहर निकाले और बकरी को छोड़ने से पहले कुछ मिनट के लिए खड़ा रखें।

डेयरी व्यवसाय में अभिलेखों का महत्त्व

अमोद कुमार, राजीव ए. के. अग्रवाल एवं एम. एस. टाँटिया

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

प्रस्तावना

अभिलेख प्रबंधन एक अच्छे पशुधन व्यवसाय का महत्वपूर्ण अंग है। अभिलेखों से पशुपालन के दौरान अच्छे फैसले लेने, फार्म पर हो रही सारी गतिविधियों और महत्वपूर्ण घटनाओं पर नज़र रखने में मदद मिलती है। किसानों के पास कोई लिखित अभिलेख नहीं होने के कारण, अपने पशुपालन के दौरान निर्णय लेते समय अपनी स्मृति पर निर्भर रहना पड़ता है इसलिये पशुपालन में होने वाले सभी क्रिया-कलापों की रिकॉर्डिंग जरूरी हो जाती है। इस प्रकार हमें, पशुपालन अभिलेखों तथा पशु पहचान संख्याएं दोनों की आवश्यकता होती है। पशुधन व्यवसाय में उत्पादन और वित्तीय लेनदेन जैसे कई उपयोगी अभिलेख हैं। यदि हम अपने डेयरी फार्म पर चल रही गतिविधियों की सटीक जानकारी रखना चाहते हैं तो हमें कुछ उपयोगी अभिलेखों का प्रबंधन करने की आवश्यकता है। पशुपालन के अभिलेख, प्रगति रिपोर्ट कार्ड की तरह होते हैं जो छात्र विद्यालय में प्राप्त करते हैं। यदि किसानों के पास समस्त अभिलेख बेहतर प्रबंधित हैं, तो वे बता सकते हैं कि वे अन्य किसानों की तुलना में अपने पशुधन व्यवसाय का कितना अच्छा प्रबंधन कर रहे हैं। वे अपने पशुपालन के संचालन में ताकत तथा कमजोरियों को भी देख सकते हैं तथा सरकारी बैंकों से ऋण लेते समय सटीक तथ्य एवम् आँकड़े भी प्रस्तुत कर सकते हैं। इसलिये अभिलेखों को सरल, व्यवस्थित, पूर्णरूप से तथा सही तरीके से रखना चाहिये।

डेयरी व्यवसाय में अभिलेखों के प्रबंधन से होने वाले फायदे

पशुओं का आनुवंशिक उन्यन एवम् चयन

अभिलेखों का उपयोग फार्म के विकास तथा पशुओं के आनुवंशिक सुधार के लिए किया जाता है तथा इनसे पशुओं मे अंत: प्रजनन को भी कम किया जा सकता है। अभिलेखों की सहायता से सांडो तथा भैसों के सन्तति परीक्षण में भी मदद मिलती है तथा वर्तमान एवं पुराने अभिलेखों का मूल्यांकन करके उच्च उत्पादन वाले जानवरों को चयन तथा बेहतर प्रजनन योजना तैयार की जा सकती है।

पशुओं की बीमारियों का प्रबंधन

अभिलेखों की सहायता से पशुओं में नियमित विभिन्न बीमारियों (खुर और मुँह पका, गलघोटू, ब्रूसिलोसिस, थिलेरिओसिस, ब्लैक क्वार्टर) का टीकाकरण, पेट के कीड़े मारने की दवा तथा अन्य रोगों के प्रबंधन में भी मदद मिलती है।

पशुओं के उत्पादन का प्रबंधन

अभिलेखों की सहायता से प्रति लीटर दूध उत्पादन में हुए व्यय का अनुमान लगाने में मदद होती है जिससे प्रति वर्ष हुए लाभ एवम् हानि का पूरा आकलन किया जा सकता है।

पशुओं के चारे का प्रबंधन

पशुओं के उत्पादन तथा शारीरिक स्थिति के अनुसार उनके चारे का प्रबंध करते है जोकि फार्म के लिये अधिक लाभकारी है। विभिन्न चारों (हरा चारा, सूखा चारा, दाना) के मिश्रण से कम लागत वाली फ़ीड भी बना सकते हैं।

डेयरी फार्म की संपूर्ण लाभ और हानि का आंकलन

विभिन्न वर्षों का विश्लेषण करके डेयरी फार्म से होने वाले फायदे तथा नुकसान का सटीक आकलन किया जा सकता है तथा भविष्य के लिये लक्ष्यों को भी निर्धारित कर सकते हैं। अभिलेखों की सहायता से दूसरे डेयरी फार्मों की अपने फार्म से तुलना कर सकते हैं जिससे अपने फार्म की कमियों को पहचाना जा सकता है तथा उनको सुधारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, अभिलेखों की सहायता से फार्म पर प्रयुक्त होने वाली विभिन्न तकनीकों की लाभप्रदता निर्धारित करना, जानवरों की खरीद और बिक्री के लिए उचित कीमतों का अनुमान लगाना, तथा फार्म पर मजदूरों और जानवरों की दक्षता की तुलना भी कर सकते हैं।

डेयरी फार्म पर रखे जाने वाले सामान्य अभिलेख

डेयरी फार्म को फायदेमंद तथा सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये कई प्रकार के अभिलेखों की सहायता लेनी चाहिये। पशुधन व्यवसाय में सामान्यतः निम्न अभिलेखों का उपयोग किया जाता है:

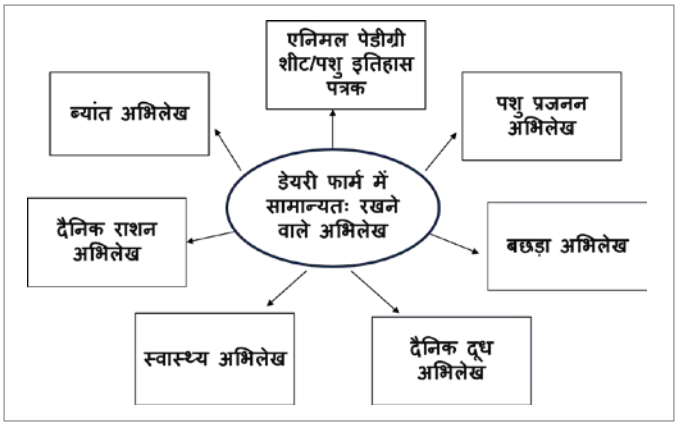

फार्म अभिलेख

एनिमल पेडीग्री शीट/पशु इतिहास पत्रक: यह पशु की पहचान संख्या, उसकी नस्ल, जन्म तिथि, माता-पिता की पहचान संख्या, दूध उत्पादन का रिकॉर्ड, दूध सुखाने की तारीख, बेचने या मृत्यु की तारीख, बेचने का कारण आदि को बनाए रखता है।

ब्यांत अभिलेख: यह अभिलेख फार्म में होने वाली सभी ब्यांत के रिकॉर्ड को बनाए रखता है। यह बछड़ा, बछड़ा संख्या, जन्म की तारीख, लिंग और किसी भी अन्य टिप्पणी जैसे कि बछड़े का जन्म सामान्य है या असामान्य (कठिन प्रसव) हुआ है तथा क्या-क्या कठिनाई आई है। इसके अतिरिक्त, बछड़े के माता-पिता की पहचान संख्या को भी रखता है।

दैनिक दूध अभिलेख: यह अभिलेख गायों तथा भैंसों के दैनिक दूध उत्पादन का हिसाब रखता है। इस अभिलेख से पशु के एक ब्यांत के कुल दूध उत्पादन तथा उच्चतम दूध उत्पादन का ब्यौरा रखते हैं।

बछड़ा अभिलेख: यह रजिस्टर फार्म में जन्मे बछड़ों का रिकॉर्ड, बछड़ा पहचान संख्या, बछड़े का लिंग, माता-पिता की पहचान संख्या, जन्म के समय उसका वजन आदि का रख-रखाव रखता है।

दैनिक राशन अभिलेख: यह अभिलेख पशुओं को प्रतिदिन दिये जाने वाले राशन, सूखा चारा, हरा चारा तथा अन्य चारे का रिकॉर्ड करता है।

स्वास्थ्य अभिलेख: यह अभिलेख रोगग्रस्त पशुओं के लक्षण, उसके लिये किया गया उपचार, रोग-निदान, बीमार पशु का इतिहास, उपचार करने वाले पशु चिकित्सक का नाम आदि रखता है। इस रजिस्टर से रोग प्रबंधन में मदद मिलती है तथा उपचार के बारे में जानकारी रखने से, प्रभावी उपचार खोजने में सहायता होती है।

पशु प्रजनन अभिलेख: यह अभिलेख फार्म में प्रजनन क्रियाओं का विवरण रखता है जैसे कि गाय की पहचान संख्या, सीमन स्थापित करने की तिथि, गर्माने की तिथि, उपयोग में लाये गये सांड या भैंसे की पहचान संख्या, सफल सेवा की तारीख, गर्भावस्था निदान रिकॉर्ड, व्याने की तिथि तथा पैदा हुए बछड़े की संख्या आदि का रिकॉर्ड रखता है।

निष्कर्ष

फार्म अभिलेख अच्छे डेयरी व्यवसाय का एक अभिन्न अंग हैं। ये किसानों की कई प्रकार से मदद करते हैं जैसे कि फार्म प्रबंधन के महत्वपूर्ण निर्णय लेना, समस्याओं की पहचान करना, भविष्य के लिए योजना बनाना, लक्ष्य निर्धारित करना, वित्तीय लेखांकन तथा कुल लाभ-हानि का विश्लेषण करना।

गाय-भैंसों में शीघ्र गर्भ पहचान का महत्व

सत्यनिधि शुक्ला

पशुचिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, नाना जी देशमुख पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय, जबलपुर - 482001

पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान या प्राकृतिक गर्भाधान के पश्चात् अतिशीघ्र गर्भ की पहचान करना आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें समय की बचत पर मुख्य रूप से ध्यान दिया जाना चाहिये, यानि जितनी जल्दी हो सके गाभिन पशु की पहचान हो उतना ही श्रेयस्कर है। ऐसा करने से पशुपालक गाभिन पशु को अलग कर उसे विशेष राशन प्रदान कर उचित देखभाल कर सकते हैं तथा जो पशु खाली पाये जाए उनको अलग कर अगले मद या गर्मी आने की प्रतीक्षा या नियमित निरीक्षण द्वारा कर सकते हैं। अगर ये पशु गर्मी में नहीं आते हैं तो उनका निदान एवं चिकित्सक की सलाह आवश्यक है जिससे समय और धन दोनों की बचत हो सके। पशु-पालकों को सदैव कोशिश करनी चाहिये कि एक ब्यांत से दूसरे ब्यात का अन्तर पन्द्रह महीने से ज्यादा नहीं हो। शीघ्र गर्भ की पहचान, पशुओं के बिक्री एवं बीमा के हेतु भी आवश्यक है क्योंकि पशु के गाभिन होने का प्रमाण-पत्र इन दोनों कार्यो के लिये आवश्यक है।

गर्भधारण का प्रारम्भिक लक्षण है, पशु का अगले मदचक्र में गर्म नहीं होना। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पशु द्वारा गर्भधारण की अवस्था में भ्रूण की उपस्थिति में दैहिक परिवर्तन द्वारा मद में आने की प्रक्रिया रूक जाती है। इस ज्ञान को पशुपालक, पशु चिकित्सक एवं अन्य कार्यकर्ता उपयोग में लाते हैं। लेकिन यह विधि गर्भधारण पहचान में भरोसेमंद नहीं है। क्योंकि यह निर्भर करता है कि खाली पशु की गर्मी की पहचान आप कितना प्रतिशत् सही-सही कर पाते हैं। अतः इस कार्य के लिये अपनाई जाने वाली अन्य विधियों की महत्ता बढ़ जाती हैं, जो ज्यादा तेज और सही होती हैं। इनमें मुख्य दो विधियाँ हैं:

- चिकित्सीय विधि
- प्रयोगशाला विधि

चिकित्सीय विधि

इस विधि द्वारा गर्भ की पहचान मुख्यतः भ्रूण की पहचान, भ्रूण की ऊपरी परत की पहचान और भ्रूण-द्रव्य की पहचान पर निर्भर करती है। इसके अलावा और कई अन्दरूनी परिवर्तन होते हैं जो कि गर्भ की पहचान में सहायक होते हैं। इस विधि में दो पद्धितियाँ प्रचलित हैं:

(अ) गुदा मार्ग द्वारा परीक्षण और गर्भ की पहचान

पिछले पाँच दशकों से यह विधि प्रयोग में लाई जा रही है और आज भी यह सबसे ज्यादा प्रचलित, सटीक एवं आसानी से अपनाई जाने वाली विधि है। चूंकि भ्रूण बच्चेदानी की दो शाखाओं में से एक में ही विकसित होता है अतः स्वाभाविक है कि जिस शाखा में भ्रूण है वह दूसरी शाखा से बड़ा होता जाता है। गर्भ के प्रारम्भिक दिनों में यही असमानता सर्वप्रथम गर्भ की पहचान देता है। इससे त्वरित और भरोसेमन्द परिणाम प्राप्त होता है। जैसे-जैसे भ्रूण का विकास होता है, स्वयं भ्रूण का तथा इसके अन्य अवयवों का स्पर्श सम्भव हो जाता है, जोकि गर्भ की पहचान में सहायक होते हैं। इसमें प्रमुख हैं बच्चेदानी की दीवाल का पतला होना, बच्चेदानी में द्रव्य का भरा होना एवं दबाने पर इधर-उधर होना, मध्य बच्चेदानी नाड़ी में रक्त का विशेष बहाव, एवं भ्रूण एवं बच्चेदानी के बीच जुड़े हुये गांठों का स्पर्श। यह विधि आम प्रचलन में होने के बावजूद शत-प्रतिशत् परिणाम नहीं देती। अतः अन्य विधियों के विकास की आवश्यकता महसूस की गई।

(ब) अल्ट्रासाउण्ड विधि द्वारा गर्भ की पहचान

हाल के कुछ वर्षों में अल्ट्रासाउन्ड का उपयोग शरीर के विभिन्न आन्तरिक अंगों एवं ग्रन्थियों के निरीक्षण में सहायक सिद्ध हुआ है। विशेषकर मनुष्यों में इसका उपयोग आशातीत

सफलता के साथ किया जा रहा है, जिसमें गर्भ की पहचान एवं बच्चे के लिंग पता करना अब सम्भव हो गया है। पशुओं में भी इसका उपयोग बढ़ा है। इसके द्वारा गर्भ की पहचान अत्यधिक सफलता एवं सटीकता से की जा सकती है। इसकी कार्य प्रणाली ध्वनि तरंगों पर आधारित होती है। अल्ट्रासाउन्ड मशीन एक विशेष प्रकार की तरंग उत्पन्न करती है जो भ्रूण से टकराती है जिससे भ्रूण की गतिविधि द्वारा या इसके दिल द्वारा या भ्रूण-द्रव्य द्वारा उत्पन्न ध्वनि तरंगों को मशीन रिकार्ड कर लेती है। इन ध्वनियों को हम कान में फोन या स्पीकर द्वारा सुन सकते हैं। इस तरह कम से कम 45 दिन के गर्भ को पहचाना जा सकता है। अल्ट्रासाउण्ड मशीन का और भी विकास हुआ है जिससे की भ्रूण की गतिविधि को कम्प्यूटर स्क्रीन पर देखा जा सकता है और इस विधि द्वारा अब गर्भाधान के 12 दिन बाद गर्भ की पहचान करना सम्भव हो गया है।

प्रयोगशाला विधि

पशुओं में गर्भ के पहचान के लिये अनेक विधियाँ विकसित की गई हैं जो उपयोग में लाई जा रही हैं। इसका मुख्य आधार गर्भ में पल रहे बच्चे द्वारा उत्पन्न पशु के आन्तरिक परिवर्तन, उत्तकों में परिवर्तन, विशेष प्रकार के द्रव्य का स्त्राव या उसका स्तर का ऊँचा या नीचा होना तथा गर्भ के वजह से उत्पन्न विशेष रासायनिक पदार्थ की पहचान करना है। प्रयोगशाला में रक्त, पेशाब या दूध की जाँच करके इन तत्वों की पहचान की जाती है।

अ) आरंभिक गर्भ कारक की पहचान (ई.पी.एफ.)

यह तत्व एक प्रोटीन होता है जो गर्भ ठहरने के तुरन्त बाद उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम यह महिलाओं में पाया गया था, बाद में इसकी सूअर, भेड़ और गायों में पहचान की गई। इन पशुओं में इनकी पहचान गर्भाधारण के कुछ ही दिनों बाद की जा सकती है जबकि चूहों में यह 24 घन्टे के अन्दर पाया जा सकता है। ई.पी.एफ. की पहचान होने से अब गर्भ की पहचान जल्दी से जल्दी की जा सकती है जिससे कि जो पशु गाभिन नहीं हैं उनकी पहचान कर अलग किया जा सके।

ब) हॉर्मोन के स्तर का माप

प्रारम्भिक अवस्था में ही गर्भ की पहचान करने में कई प्रकार के हॉर्मोनों की जाँच अत्यन्त सहायक होती है। इनकी जाँच रक्त या दूध में की जाती है। गर्भाधान के कारण कई हार्मोनों के स्तर में उतार-चढ़ाव होता है एवं कुछ नये हॉर्मोन भी उत्पन्न होते हैं। यही इस जाँच का आधार होता है।

गायों में गर्भ-पहचान विधियों एवं तकनीकों का सारांश

विधि तकनीक	कम से कम समय
गर्भाधान के बाद मद में वापस नहीं आना	21 दिन
प्रोजेस्ट्रॉन के स्तर की दूध या खून में माप	21-24 दिन
अल्ट्रासाउण्ड द्वारा गर्भ की पहचान	28 दिन
भ्रूण के परत का गुदा मार्ग विधि द्वारा स्पर्श	33 दिन
बच्चेदानी की शाखाओं में असमानता	35 दिन
भ्रूण का गुदा मार्ग विधि द्वारा स्पर्श	45-60 दिन
बच्चे और बच्चेदानी के बीच का गांठ	80 दिन
मध्य बच्चेदानी नाड़ी का रक्त प्रवाह	85 दिन
दूध में एस्ट्रोन सल्फेट की जांच	105 दिन
गुदा-मार्ग विधि द्वारा बच्चे का स्पर्श	120 दिन

प्रोजेस्ट्रोन

पशु-प्रक्षेत्रों में गर्भ पहचान के लिये प्रोजेस्ट्रोन हॉर्मोन के स्तर की माप विश्व में बहुत व्यापक स्तर पर की जाती है। इसके लिये खून या दूध की जाँच की जाती है। दूध की जाँच को खून के जाँच पर तरजीह दी जाती है, क्योंकि दूध में इस हार्मोन की मात्रा ज्यादा होती है। यह इसलिये भी ज्यादा उपयोगी है क्योंकि इसमें किसी सूई या इंजेक्शन की जरूरत नहीं होती है। इस विधि द्वारा गर्भ की पहचान भ्रूण गायों में गर्भाधान के 17-18 दिनों पश्चात् भेड़ों में एवं 21 दिन के पश्चात् एवं सूअरों में 22 दिन पश्चात् की जा सकती है। इसकी सफलता दर 80-90 प्रतिशत् तक होती है।

एस्ट्रोन सल्फेट

यह हॉर्मोन मुख्य एस्ट्रोजन है जो कि भ्रूण द्वारा उत्पन्न किया जाता है और जिसका माप, खून, दूध, या पेशाब में किया जाता है। गर्भ के दौरान इसका स्तर धीरे-धीरे बढ़ता है और 105 दिनों के बाद सभी गाभिन गायों में उच्च स्तर प्राप्त कर लेता है। इसकी जाँच 72 दिनों के बाद की जा सकती है। चूंकि यह जाँच गर्भाधान के ढाई से तीन महीने के बाद ही सम्भव है इसलिये इसकी उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

इस प्रकार हम उपरोक्त वर्णित तकनीकों की सहायता से, मादा में गर्भित होने का पता लगाकर उसका सही प्रबंध कर सकते हैं एवं बेकार या अगर्भित मादाओं की स्थिति का पता लगाकर उचित निर्णय ले सकते हैं।

गर्भाधान से लेकर ब्याने तक पशु की देखभाल

संजय कुमार मिश्र[1] एवं अतुल सक्सेना[2]

[1]पशु चिकित्सा अधिकारी चोमूहां, मथुरा - 281 001

[2] निदेशक अनुसंधान, उप्र पं दीन दयाल उपाध्याय, पशु चिकित्सा विज्ञान वि वि एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा - 281001

भारतवर्ष में गाय अपना एक महत्वपूर्ण धार्मिक एवं आर्थिक महत्त्व रखती है व पूज्यनीय है। वेदों के अनुसार गाय की उत्पत्ति समुद्र मंथन के पश्चात हुई एवं इसे माता का स्वरूप माना गया। गाय के दूध को अमृत तुल्य माना गया है। हमारे धार्मिक अनुष्ठानों में पंचामृत का बहुत महत्व है, इसके पांच तत्व में तीन तत्व गाय का दूध, दही व घी हैं। किसी भी मादा पशु को गर्भधारण के लिए गर्मी में आना जरूरी है, अर्थात् उसमें ऋतु चक्र चले। इस ऋतु चक्र में जब पशु गर्मी के लक्षण दिखाता है तो किसी नर की संगति में या फिर कृत्रिम विधि द्वारा मादा को गर्भित किया जाता है। तदोपरांत अंडे व शुक्राणु का निषेचन होने से भ्रूण की स्थापना होती है। छोटी बछिया जब परिपक्वता को प्राप्त होती है तो ऋतु चक्र को प्रेषित करती है। गायों की बछिया लगभग 16 महीने से लेकर 26 महीने तक परिपक्वता को प्राप्त कर लेती है। यह सब एक संतुलित आहार के ऊपर निर्भर है व परिपक्वता का समय इनके अभाव में बढ़ जाता है, ठीक उसी प्रकार हर गाय जो कि सही रूप से बच्चा दे चुकी हो अर्थात् उसके प्रसव व उसके बाद के समय में कोई बिमारी ना हुई हो तो उसे भी 50 से 60 दिन ब्याने के बाद गर्मी में आना व गर्भधारण करना चाहिए, यदि ऐसा नहीं होता है तो आर्थिक रूप से हानि होती है। जैसा कि आप जानते हैं कि बिना जनन के उत्पादन अर्थात यहां दूध से तात्पर्य है का बना रहना संभव नहीं है। अत: हर गाय को समय पर बच्चा देना चाहिए ताकि उनसे अधिकांश समय तक दूध लिया जा सके। इसके लिए हमें एक नियम को याद रखना चाहिए कि वह यह है कि हर साल गाय बच्चा दे इसे हमें एक छोटे से गणित के रूप में समझना चाहिए। 1 वर्ष में 365 दिन, गाय का गर्भकाल 280 दिन साल में से 280 दिन हटाने पर शेष 85 दिन; इनमें से प्रसव के बाद 40 से 45 दिन तक गर्भ नहीं होना चाहिए। यह समय बच्चेदानी, बच्चा देने के उपरांत सिकुड़ कर अपने सामान्य स्थान पर वापस आने एवं पुनः गर्भधारण की स्थिति में रखने में आमतौर से लेती है। 85 शेष दिनों में से 45 दिन निकालने पर बचे हुए 40 दिन में दो गर्मी आ सकती है। ब्याने के बाद लगभग 3 माह में गायों को गर्भित हो जाना चाहिए, तभी गायों को पालना लाभकारी सिद्ध हो सकता है। प्रजनन के इस सिद्धांत को साकार करने के लिए जरूरी है कि हमारा पशु गर्मी में आए और हर गर्मी को सही आँक कर गर्भाधान के लिए प्रस्तुत किया जाए। मादा पशु गर्मी में आने पर कुछ लक्षणों को प्रकट करती है जैसे:

- योनि द्वार से तरल पदार्थ का स्राव जो पारदर्शी होता है
- योनि द्वार का सूजना
- योनि द्वार को खोलने पर अंदर की झिल्ली का हल्का गुलाबी होना
- बार बार पेशाब करना, चारा कम खाना, दूध में कमी का आ जाना,अपने समूह के अन्य पशुओं पर चढ़ना व खुद पर भी समूह के अन्य पशुओं को चढ़ने देना इत्यादि।
- इन सभी लक्षणों में पहला लक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह अंडाशय से अंडा निकलने के अत्यंत करीब होता है। यह लक्षण है जब गर्मी वाला पशु अपने ऊपर अन्य पशुओं को चढ़ने दे। इसे वैज्ञानिक भाषा में स्टैंडिंग हीट के नाम से जानते हैं। इस लक्षण को पहचान कर अगले 12 घंटे में गर्भाधान कराने पर गर्भ ठहरने की संभावना सबसे ज्यादा होती है। यहां यह भी बताना उचित होगा यह इसलिए भी जरूरी है की अंडाशय से निकले अंडे की अधिकतम आयु 6 से 12 घंटे है और वही शुक्राणु की आयु 24 घंटे हैं।

अतः सफल निषेचन के लिए शुक्राणु जोकि कृत्रिम अथवा प्रकृतिक विधि द्वारा पहुंचाए जाते हैं अंडे के निकलने से कुछ घंटे पूर्व मादा के जनन अंग में पहुंचने से सफल निषेचन की संभावना अत्यधिक रहती है। गर्भधारण की विधियों में कृत्रिम गर्भाधान एक उचित तरीका है, व इसे अपनाकर नस्ल सुधार की तरफ अग्रसर हुआ जा

सकता है। जहां एक ओर इसके अनेक लाभ हैं जैसेकि वह आर्थिक रूप से नर को पालने व रखरखाव के खर्च को यह कम करती है। इस विधि को अपनाते वक्त गायों को सही गर्मी में पहचानना व गर्भाधान के लिए प्रस्तुत करना एक कठिन काम है। प्राकृतिक विधि से गर्भाधान कराने पर एक बड़ा खतरा जननांगों में संक्रमण के फैलने का है। ऐसा होने पर भारी नुकसान गर्भपात के रूप में अथवा बांझपन की समस्या के रूप में सामने आता है, जिससे निजात पाना एक टेढ़ी खीर है। इसके साथ-साथ नर पशुओं को समय-समय पर जनन के लिए स्वस्थ रखने के लिए हर छह माह पर जाँच की आवश्यकता भी होती है। गाय के गर्मी में आने व तत्पश्चात गर्भाधान कराने के बाद यदि गाय दोबारा गर्मी में नहीं आती है तो उसके गर्भित होने की काफी संभावना होती है। किंतु फिर भी गर्भाधान के 40 से 50 दिन बाद गर्भ की जाँच करवानी जरूरी है। यदि परीक्षण के बाद भी कोई पशु खाली अर्थात गर्भित नहीं है तो उसे उचित उपचार के द्वारा पुनः गर्मी में वापस लाने के प्रयास करने चाहिए। ध्यान रहे कि उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार गर्भ की जाँच जितनी जल्द से जल्द हो जाए उतना उत्तम है जिससे कि बिना गर्भित पशुओं को समय से दोबारा गर्मी पर लाया जा सके। प्राय: आपने भी अपनी गायों को बार-बार गर्मी में आने के पश्चात गर्भाधान कराने पर भी गर्भधारण करने में असमर्थ देखा होगा। इस समस्या से जूझते समय कृपया यह ध्यान जरूर रखें कि आप की गाय क्या नियमित समय अंतराल पर गर्मी में आ रही है अथवा गर्मी में आने का समय निश्चित अंतराल पर नहीं है या वह जल्दी-जल्दी गर्मी में आ रही है। यदि दो गर्मी के बीच का अंतराल समान नहीं है व जल्दी-जल्दी गर्मी में आती है तो यह एक रोग है जिसे निमपोमेनिया कहा जाता है।

यदि दो गर्मियों के बीच का अंतराल समान है तो हमें गर्भाधान के समय को सही करना जरूरी है अर्थात सही गर्मी को आने पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए और सही गर्मी पर गाय को गर्भाधान कराना चाहिए। नर पशु की जाँच वीर्य की जाँच व रखरखाव तथा गर्भाधान के कार्यों में लगे चिकित्सक की कुशलता की परख करना भी ऐसे में अत्यंत आवश्यक हो जाता है। गर्भ धारण किए हुए पशु को गर्भ काल के दौरान समय-समय पर गुदा परीक्षण के द्वारा जाँच कर गर्भ के सही रूप से वृद्धि होने की जानकारी रखना भी अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार की जाँच से कुछ समस्याओं से बचा जा सकता है। जैसे गर्भ में बच्चे का सूख जाना/ मम्मीफिकेशन, बच्चेदानी का अंटा लग जाना, बच्चेदानी में पानी का अधिक होना इत्यादि।

गर्भ काल के दौरान सबसे अधिक समस्या गर्भ के अंतिम दिनों में बेली का निकलना है। यह समस्या अधिकांशत: गर्भ के अंतिम तिमाही में देखने को मिलती है। इस दौरान बच्चेदानी के बाहर के हिस्से अर्थात वेजाइना व बच्चेदानी का मुंह योनि द्वार से बाहर आ जाता है। वह मांस के लोथड़े के रूप में बाहर प्रकट होता है, जिसे बेली के नाम से जाना जाता है। यह मांस का लोथड़ा मांसाहारी पशु जैसे कुत्ता व पक्षियों जैसे कौवा को आकर्षित करता है जोकि इसे अपना आहार मानते हुए नुकसान पहुँचाते हैं। इनके द्वारा नुकसान पहुंचाने से अत्यधिक रक्त स्राव होता है व समय से उपचार न मिलने से पशु की मृत्यु होना भी संभव है। उपचार के बाद भी फटे स्थान को सिलने से ब्याने के वक्त समस्या उत्पन्न होने की संभावना होती है। अधिक समय तक यदि यह प्रोलेप्स बना रहता है तो इसमें सूजन आती है, रक्त का प्रवाह बाधित होता है तथा वातावरण में स्थित विषाणु व जीवाणु इस पर अपना प्रभाव डालते हैं। परिणाम स्वरूप पशु को ठीक होने में समय लगता हैं। मूत्र भी एकत्रित होता रहता है। यह सब पशु की समस्या को और बढ़ाने में एवं अधिक समय तक बने रहने के लिए मजबूर करती है। इस रोग से बचने के लिए गाय के गर्भ काल के अंतिम तिमाही में पशु को खड़िया और नमक का सेवन उसके दाने में प्रतिदिन 25 से 50 ग्राम के हिसाब से देना चाहिए। हड्डी के चूर्ण को भी हिसाब में देना एक उत्तम उपाय है। बाजार में उपलब्ध कैल्शियम और फास्फोरस मिश्रित अच्छी दवाओं को भी 25 से 50 मिलीलीटर प्रतिदिन के हिसाब से दिया जा सकता है। सावधानी वश गाय को कभी भी 24 घंटे से ज्यादा रखा हुआ चारा नहीं खिलाएं। कवक लगे चारे को नहीं देना चाहिए। कटे-फटे अनाज को जो कि काफी समय से गोदामों में रखे हुए हो उसे नहीं देना चाहिए। इनमें फाइटोएस्ट्रोजन होने के कारण यह पशु को बेली फेंकने में सहायक सिद्ध होते हैं।

यदि बेली निकल जाती है तो कुछ बातों का अवश्य ध्यान रखें। निकले हुए हिस्से को गीले कपड़े से ढ़क दें। जिस जगह आपका पशु बंधा हो वहां किसी भी प्रकार के कृषि यंत्र इत्यादि ना हो। खड़े होने पर बेली के इन यंत्रों से टकराने पर फटने का डर बना रहता

है। पशु को खुले स्थान पर बाँधे। यदि बेली को निकले हुए 6 से 7 घंटे से अधिक हो गए हैं तो निकले हुए भाग को साफ़ कपड़े की मदद से पूछ की तरफ ऊपर उठाएं ऐसा करने से रुका हुआ मूत्र मूत्राशय से बाहर निकल आएगा व पशु आराम महसूस करेगा। जब पशु ब्याने को हो जिसे कि आप कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों जैसे दूध का थनों में उतरना, पुट्ठे का टूटना, योनि का शिथिल पड़ जाना इत्यादि से पहचान कर सकते हैं, उस समय यह अवश्य ध्यान रखें कि जहां पर पशु रह रहा हो उसके आसपास साफ-सफाई का अच्छा प्रबंध हो। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि ब्याने के बाद होने वाले रोगों में ब्याने के समय की स्वच्छता न होना एक प्रमुख कारण होता है। वहीं ब्याने के समय पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी काफी कम हो जाती है। यह सब रोग ग्रहण करने में मददगार साबित होते हैं। ब्याने के पूरे लक्षणों के प्रकट होने के बाद यदि पशु दर्द ले व दर्द लेने की प्रक्रिया को एक घंटा से अधिक हो जाए तो तुरंत पशु चिकित्सक को दिखाना आवश्यक होता है। यदि दर्द लेने के बाद व पानी की थैली फूट जाने के पश्चात भी बच्चे का कोई अंग इत्यादि योनि द्वार पर प्रकट ना हो तो भी तुरंत चिकित्सक को दिखाना आवश्यक है। कभी भी बच्चे के योनि द्वार से निकले हुए पैर खींचने की कोशिश ना करें। यदि पैर के साथ बच्चे का मुख आ रहा हो तो पैर के साथ सिर को खींचकर बच्चे को निकालने में सहायता की जा सकती है। ब्याने के समय आई किसी भी दिक्कत को एक पशु चिकित्सक की मदद से ही सुलझाना एक उचित वह समझदारी भरा उपाय है। अनाड़ी व्यक्ति से छेड़छाड़ करवाने से मां व बच्चे दोनों की जान का खतरा रहता है।

बच्चा देने के बाद जल्द से जल्द अगले 24 घंटों में बच्चे को मां का दूध जिसे पेबसी, खीस या कोलोस्ट्रम कहते हैं, थोड़े-थोड़े अंतर पर अधिकतम पिलाना चाहिए। इस समय बच्चे की आँत से दूध में छिपे प्रतिरोधक तत्व ज्यादा से ज्यादा शोषित होते हैं जोकि इसे आगे के जीवन में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करते हैं। यदि किसी बच्चे की मां की मृत्यु हो जाए तो उसे अन्य मां जोकि हाल में ही ब्याई हो, के दूध का सेवन करा सकते हैं। आप किसी मां के कोलोस्ट्रम को ठंडे तापक्रम में जमा कर अन्य पैदा होने वाले बच्चे के लिए उपयोग में ला सकते हैं। ब्याने के बाद पशु एक विशेष प्रकार का चटाव करता है जोकि उसके बच्चेदानी के सिकुड़ने के लक्षण को दर्शाता है। यह चटाव आमतौर पर 7 से 10 दिन तक रहता है। यदि लंबे समय तक चटाव बना रहे व उसमे सफेद पन आ जाए तो उसे एक रोग की शुरुआत मानना चाहिए जिसे गर्भाशय शोथ या मेट्राइटिस कहां जाता है। ऐसा होने पर दूध का उत्पादन धीरे-धीरे कम होने लगता है एवं पशु देर से गर्मी आता है। इलाज न कराने पर रोग घातक हो सकता है। पुनः दुग्ध उत्पादन के बढ़ाने में अत्यंत कठिनाई रहती है। अगले गर्भ को ठहरने में भी परेशानी आती हैं।

ब्याने के बाद जेर का रुकना भी एक आम बीमारी है। इससे बचने के लिए पशु को स्वस्थ रखना व अंतिम तिमाही में संतुलित आहार देना अनिवार्य है। चारे में खड़िया व नमक का सेवन प्रतिदिन कराना चाहिए। जेर के रुकने पर बच्चे को दूध पिलाएं यह जेर को निकालने में मददगार सिद्ध होता है। जेर रुक जाने पर यदि हाथ से निकलवाना पड़े तो जितना देर से जेर निकाला जाए उतना ही लाभदायक रहेगा। इसे घृणा की दृष्टि से ना देखें। जेर निकलवाने के बाद पूर्ण उपचार करवाना उचित उपाय है। गर्भपात होने पर जेर रुकने की संभावना बहुत अधिक रहती है। वह इसे किसी प्रकार की दवाओं से नहीं निकाला जा सकता है। जेर रुकने से गर्भाशय शोथ या मेट्राइटिस की संभावना बनी रहती है। मेट्राइटिस, जेर रुकना, बच्चे का फंसना, गर्भपात इत्यादि होने पर पशु के गर्मी के चक्र को दोबारा शुरू होने में देर लगती है, अत: इन रोगों से तुरंत निपटना चाहिए। एक साधारण तरीके से ब्याई गाय ब्याने के लगभग 25 से 35 दिन के भीतर गर्मी के लक्षण दर्शाती है। किंतु कम से कम 45 से 50 दिन बाद ही गर्भित करवाना चाहिए। यदि पशु ब्याने के बाद 45 से 50 दिन तक गर्मी में ना आए तो पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए। हमें कभी भी यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा पशु यदि आवश्यकता से अधिक समय तक बिना गर्भ धारण किए रहेगा तो यह हमें आर्थिक रूप से नुकसान पहुँचाता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मादा पशु से निरंतर दूध प्राप्त करने के लिए हमें उपरोक्त बातों पर गहन तरीके से विचार एवं कार्य करना चाहिए। याद रहे हमारा लक्ष्य हर गाय से 1 वर्ष में एक बच्चे की प्राप्ति होनी चाहिए तभी हम आर्थिक रूप से गोपालन के क्षेत्र में समृद्ध होंगे।

पशुओं को रोगों से बचाव के उपाय

सत्येन्द्र पाल सिंह

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय-कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना - 476001

रोगों से बचाव, उपचार की अपेक्षा अधिक बेहतर होता है, इस मंत्र से अधिकांश लोग परिचित हैं। इस मंत्र में रोगों से बचाव या निरोध के महत्व का सार छिपा है। पशुपालकों द्वारा जहां पर अधिक संख्या में पालतू पशु रखे जाते हैं, अधिक उत्पादन व आमदनी के लिए पशुओं का रोगों से बचाव अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। पशुओं में संक्रामक रोगों के प्रकोप के कारण मृत्युदर और उत्पादन में बहुत अधिक कमी आ जाती है। अतः पशुओं का संक्रामक और असंक्रामक रोगों से बचाव करना अत्यन्त आवश्यक होता है। ऐसे रोग जोकि विषाणु, जीवाणु और प्रोटोजोआ द्वारा संचारित होते हैं, संक्रामक रोग कहलाते हैं, जैसे गलघोंटू, कॉक्सीडियोसिस, फ्लेग इत्यादि। छूत से फैलने वाले सभी रोग प्रायः संक्रामक होते हैं, परन्तु सभी संक्रामक रोग छूत से फैलने वाले नहीं होते हैं। संक्रामक रोगों से बचाव के उपायों को मुख्यतः दो वर्गो में रखा जा सकता है:

1. रोगों से बचाव के सामान्य उपाय

इन उपायों के अंतर्गत पशुओं के सामान्य प्रबंध, आवास, आहार, खान-पान की विधियां, सफाई आदि बातें प्रमुख हैं। पशुओं को उत्तम प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था के अंतर्गत रखकर रोगों से बचाव के साथ-साथ उनके उत्पादन में भी वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। यह अत्यधिक आवश्यक है कि अन्य उपायों के साथ-साथ यदि पशुशालाओं में या किसी क्षेत्र में संक्रामक रोगों का प्रकोप हो तो ऐसी अवस्था में एक से दूसरे स्थान से आने-जाने वाले सभी व्यक्तियों, पशुओं, आवागमन के साधन इत्यादि पर रोक लगा देनी चाहिए।

पशुओं के आवास गृहः सुरक्षित, आरामदायक और हवादार आवासगृह या पशुशालाएं पशुओं के स्वस्थ रहने के लिए वरदान स्वरूप होते हैं। रोगों की रोकथाम के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पशुशालाएं, मनुष्यों के आवागृह बस्तियों से अलग, खुले और ऊँचे स्थान पर होने चाहिए। इसके आस-पास कहीं पानी एकत्र न होता हो और उचित चरागाह का भी प्रबन्ध हो। उत्तम पशुशालाओं में प्रकाश के लिए समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। पशुशाला का फर्श ऐसा होना चाहिए कि मल-मूत्र बहकर नाली में चला जाए। पशुशाला का फर्श पक्का एवं ढालू होना चाहिए जिससे धुलाई के पश्चात् फर्श पर पानी एकत्र न हो और फर्श जल्दी से जल्दी सूख जाए। पशुशालाओं के साथ खुले हुये पशु बाड़ों का होना बहुत जरूरी होता है। खुले हुये बाडों में पशु स्वतंत्रता पूर्वक घूम फिर सकते हैं जिससे उनका पर्याप्त व्यायाम भी होता रहता है। पशुशालाओं में गाभिन, दुधारू, सूखे, नवजात, प्रजनन करने वाले व नर पशुओं को अलग-अलग स्थानों पर रखा जाता है। इन पशुओं की आवश्यकतानुसार ही पशुशालाओं का निर्माण किया जाना चाहिए। संक्रामक रोगों से बचाव के लिए पशुशालाओं की स्वच्छता के संबंध में कुछ जरूरी बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है, इनमें से निम्नलिखित बातें उल्लेनीय हैः

- पशुशालाओं के फर्श में किसी प्रकार के छिद्र नहीं होने चाहिए, ताकि उसमें कोई गंदगी, चीचडे, किलनी आदि रोग फैलाने का कारण न बन जाएं।
- पशुओं का गोबर, बिछावन, मूत्र आदि पशुशाला से दूर एकत्र किया जाना चाहिए।
- पशुशाला संभवतः प्रतिदिन या कम से कम सप्ताह में एक बार फिनायल डालकर धुलवानी चाहिए। पशुशाला के आस-पास तथा नालियों के किनारें नियमित अंतराल पर बुझा हुआ चूना डलवाते रहना चाहिए।

- पशुओं की नांदों की प्रतिदिन सफाई होनी चाहिए। पशुओं के पीने के लिए स्वच्छ एवं ताजे जल की व्यवस्था होनी चाहिए। पानी की टंकी पशुशाला में ही आवश्यतानुसार सीमेंट की पक्की बनवानी चाहिए। टंकी की प्रति सप्ताह सफाई करके उसके अंदर की दीवले चूने से पुताई कराकर तलहटी में भी चूना डलवाते रहना चाहिए।
- वर्ष में कम से कम एक बार पशुशाला की भी चूने से पुताई कराना आवश्यक होता है।
- पशुशालाओं में रोगी पशु को स्वस्थ्य पशुओं से अलग रखा जाना चाहिए।
- सर्दियों या गर्मियों में (लू के समय) पशुशालाओं की खिड़की और दरवाजे टाट के पर्दो से ढ़के होने चाहिए।
- दर्शकों को पशुशालाओं में आने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।

पशुओं का आहार

- पशुओं की वृद्धि, उनसे मिलने वाले उत्पादों और रोगों की रोकथाम के लिए अन्य बातों के साथ यह भी अति महत्वपूर्ण है कि पशुओं को संतुलित आहार दिया जाए। पशुओं को आहार देते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है:
- पशुओं का आहार संतुलित होना चाहिए जिससे पशु स्वस्थ रहें और अधिक उत्पादन दे सकें।

- पशुओं को साफ, स्वादिष्ट, पाचक, पौष्टिक व सस्ता आहार खिलाना चाहिए।
- पशुओं को दाना खिलाने के पश्चात ही सूखा और हरा चारा देना चाहिए।
- पशुओं के आहार में भूसा, हरा चारा, दाना, खनिज लवण, नमक आदि शामिल किया जाना चाहिए, जिससे आवश्यकता के अनुसार सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में मिलते रहें।
- पशुओं का चारा ऐसा होना चाहिए कि पशु सरलता से खा और पचा सकें। सूखे दाने व खली को पशुओं को खिलाने से पहले पानी में भिगो देना चाहिए, जिससे वे फूलकर सरलता से पच जाए। हरे चारे को काट कर खिलाना चाहिए।
- पशुओं के चारे में एकदम से बदलाव नहीं करना चाहिए। इसको बदलने के लिए पशु को धीरे-धीरे और थोड़ा-थोड़ा नया चारा खिलाना चाहिए, ताकि पशु की भोजन प्रणाली पर कुप्रभाव न पड़े और उसे आदत भी पड़ जाये।
- पशु को प्रतिदिन कुछ मात्रा में नमक, हड्डी का चूरा, खड़िया (कैल्शियम के लिए) आदि भी देते रहना चाहिए। इसके लिये बाजार में उपलब्ध खनिज लवण मिश्रण को खिलाना चाहिए। खनिज लवण मिश्रण को आवश्यकतानुसार पशुओं के आहार में मिलाकर कई प्रकार की समस्याओं से बचा जा सकता है।
- गर्भित, वृद्धि करने वाले, युवा एवं दुधारू पशुओं को विशेष रूप से तैयार संतुलित दाना मिश्रण देना चाहिए।
- चारा खिलाने की नादें तथा दुग्ध दोहन में काम आने वाले बर्तन नियमित रूप से साफ होना आवश्यक है। नादों को प्रतिदिन साफ कर के ही चारा डालना चाहिए।
- पशुओं को नियमित रूप से चरने के लिए चरागाहों में भेजा जाना चाहिए।

चरागाहों का प्रबन्ध: चरागाहों से जहां पशुओं को एक ओर सस्ता, अत्यधिक रूचिकर भोजन प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर यह आर्थिक दृष्टि से भी लाभप्रद होता है। चरागाहों में पशुओं को कम परिश्रम के द्वारा हरा चारा मिलता है और उनका व्यायाम भी हो जाता है। चूँकि चरागाहों में अनेक पशु एक साथ चरते हैं अतः कई प्रकार के संक्रामक रोगों के फैलने का भय रहता है। अतः इस प्रकार के रोगों के बचाव के लिए चरागाहों के प्रबंध करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- यदि गांव अथवा क्षेत्र में किसी रोग का प्रकोप फैला हुआ हो तो पशुओं को चरने कदापि नहीं भेजना चाहिए।
- यदि किसी चरागाह में संक्रमण ग्रस्त पशुओं ने चराई की हो तो कुछ समय के लिए ऐसे चरागाहों में चराई बन्द कर देनी चाहिए।
- चरागाहों में रोग फैलाने वाले घोंघों आदि को तूतिया (कॉपर सल्फेट) के घोल के छिड़काव द्वारा नष्ट कर देना चाहिए।
- चरागाहों में संक्रमण ग्रस्त पशुओं के शव या अन्य पदार्थों को नहीं फैंकना चाहिए। ऐसी जमीन पर जहां मृत पशु दफनाये जाते हों उनके पास चरागाह कदापि नहीं बनाना चाहिए।

पशु का यातायातः पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर या मेलों इत्यादि में जाने ले जाने के समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। ऐसी अवस्था में पशुओं में रोग प्रतिरोधी क्षमता का ह्रास होता है। थकावट और उचित खान-पान न मिलने से रोग का प्रभाव देखा जाता है। ऐसे पशुओं को पूरी तरह आराम व अच्छा खान-पान की आवश्यकता होती है। पशुओं के स्थानान्तरण के पश्चात् उनको दूसरे पशुओं के समूहों में मिलाने से पूर्व संगरोध में रखना चाहिए। पशुओं को मेले और हाटों में ले जाने से पहले रोग अवरोधक टीके अवश्य लगवा देना चाहिए।

अलगाव और पृथक्करणः रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। इनकी विशेष देखभाल करना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए पशु सेवक पहले स्वस्थ और बाद में रोगी पशुओं के साथ कार्य करें। अच्छा तो यह होगा कि पृथक्करण कक्ष में कार्य करने वाले पशु सहायक केवल रोगी पशुओं की ही देखभाल करें। पशुशालाओं में पृथक्करण कक्ष अवश्य होना चाहिए जिससे रोगों के फैलाव को रोखा जा सके। पृथक्करण कक्ष को नियमित रूप से सेनिटाइज किया जाना चाहिए।

संगरोधः संगरोध या क्वांरटीन का देश और राज्यों में बाहर से आने वाले नये पशुओं द्वारा रोगों के प्रकोपों से बचाव में बहुत अधिक महत्व है। आधुनिक समय में यातायात के साधनों में तेज रफ्तार के कारण पशुओं के आवागमन में बहुत कम समय लगता है। साथ ही पशु उत्पादक पदार्थ भी विश्वभर में एक से दूसरे देश भेजे जाते हैं। पशुओं और उनके उत्पादों, दोनों के द्वारा ही नये-नये रोगों के फैलने का डर रहता है। इस प्रकार के रोगों से बचाव के लिए क्वांरटीन उपायों का बहुत अधिक महत्व हो जाता है। इन्हीं उपायों के फलस्वरूप कई देश बहुत से रोगों से बचे हुए हैं। अतः जब कोई बाहरी पशु किसी नये झुण्ड में मिलाया जाता है तो उसे एक माह के लिए क्वांरटीन स्थल में रखा जाता है। इस काल में नये खरीदे पशुओं को चिरकारी रोगों जैसे क्षयरोग, जोहनीय रोग, ब्रूसेल्लोसिस और थनैला के लिए परीक्षण किए जाते हैं। जहां तक संभव हो ये समस्त परीक्षण पशुओं को खरीदने से पहले कर लेना चाहिए। इनका पुनः परीक्षण 'संगरोध-काल' में किया जाना चाहिए। इसी काल में पशुओं को खुरपका और मुंहपका, गलघोंटू आदि रोगों का टीका लगवा देना चाहिए। परजीवी और प्रोटोजोवा रोग के लिए इन पशुओं की जांच कर उन्हें कृमि नाशक औषधि दे देनी चाहिए। विशेषज्ञों के मतानुसार क्वांरटीन का निम्नानुसार पालन करना चाहिए:

संगरोध-कार्यक्रम

क्वांरटीन कालः एक माह

पशुओं को खरीदने से पूर्व उनका निम्न विधियों के अनुसार रोगों के लिए परीक्षण किया जाता है:

1. क्षय रोगः द्वि-अंतःत्वक परीक्षण को कृत्रिम ट्यूबरकुलीन द्वारा किया जाता है।
2. जोहनीस रोगः द्वि-अंतःत्वक परीक्षण को जोहनीस और एवियन ट्यूबरकुलीन द्वारा किया जाता है। सरलता के लिए क्षय रोग और जोहनीस रोग के परीक्षण साथ किये जाते हैं।

3. ब्रूसेल्लोसिसः यह परीक्षण प्लेट या ट्यूब एग्ल्यूटीनेसन विधि द्वारा किया जाता है।
4. प्रोटोजोआ रोगः रक्त आलेपों का परीक्षण करना चाहिए।
5. थनैला रोगः व्हाइट साइड परीक्षण किया जाता है।

संदिग्ध और धनात्मक परिणाम वाले पशुओं को स्वस्थ्य पशुओं के समूहों में नहीं मिलाया जाता है।

टीका लगवानाः खुरपका और मुंहपका, गलघोंटू, फ्लेग आदि के टीके लगवाना चाहिए।

- खुरपका और मुँहपका रोग के बचाव हेतु पालीवैलेंट टिशू कल्चर टीका लगवाना चाहिए।
- गलघोंटू रोग से बचाव हेतु गलघोंटू का ऑयल एडजूवेन्ट टीका लगवाना चाहिए।
- फ्लेग रोग से बचाव के लिये भेड़-बकरियों में पीपीआर का टीका लगवाना चाहिए।
- लगभग 23 व 24 वें दिन बाद पशुओं को परजीवी रोगों के लिए परीक्षण और उपचार करना चाहिए।
- क्षय रोग, जोहनीस रोग और ब्रूसेल्लोसिस का परीक्षण 25 या 26 वें दिन करना चाहिए।
- पशुओं को वाह्य परजीवियों के नियंत्रण के लिए कीटनाशक औषधियों से नहलाना अथवा उनका छिड़काव करना चाहिए।

स्वच्छताः प्रभावकारी स्वच्छता द्वारा वातावरण से बहुत से रोग कारकों को निकालकर रोगों से बचा जा सकता है। यद्यपि इसमें अधिक परिश्रम और धन खर्च होता है, परन्तु पशु प्रजनकों को इसका लाभ भी मिलता है। उत्तम प्रकार की पशुशालाओं को प्रकाश प्रबन्ध, रोशनदानों की व्यवस्था, स्वच्छ पानी की आपूर्ति और दूषण रहित भोजन और चारा प्रदान करना, फार्म के कूडा-करकट या गोबर आदि को ठीक से फिंकवाना, उत्तम प्रबन्ध व्यवस्था के प्रमुख अंग है। पशुशाला, बरामदे, फार्म परिसर, पानी के टब, भोजन के बर्तन, नादें, पानी की टंकी, दुग्धशाला में काम आने वाले बर्तनों की अच्छी प्रकार से सफाई और धुलाई होनी चाहिए। इन सभी उपायों को प्रभावकारी ढंग से लागू करने से रोगों का प्रभाव काफी हद तक कम किया जा सकता है। इससे पशुशाला संचालन में कम आर्थिक हानि होती है। फार्म के प्रमुख प्रवेश द्वार पर 'पाद स्नान' की व्यवस्था करना चाहिए। इसमें सदैव जीवाणु नाशक औषधियॉ डालनी चाहिए। इससे पशुशाला के अंदर रोगों का प्रवेश रूकता है। पशुओं के फार्मों में काम करने वाले सेवकों के लिए रहने की व्यवस्था फार्म परिसर में होनी चाहिए इससे बाहर से रोगों के आने पर रोक लगती है। संक्रामक रोग से बचाव के लिए मृत पशुओं के खालों को गड्ढे में दबा या जला देना चाहिए।

पशुओं को औषधियां देते समय सावधानियां

पशुओं को औषधियां देते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। विशेषरूप से जब मुंह द्वारा नाल से दवा दी जाती है तो यह ध्यान देना चाहिए कि औषधि श्वाँसनली में न चली जाए। श्वांसनली से फेफडों में औषधि पहुंचती है जिससे चूषण-निमोनिया उत्पन्न हो जाता है। सूई द्वारा औषधियां देने से पूर्व यह भली-भांति समझ लेना चाहिए कि दवा देने का कार्य क्या है और सूइयां तथा सिरिंज ठीक तरह से जीवाणु रहित हैं।

2. रोगों से बचाव के विशेष उपाय

रोगों से बचाव के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार के उपाय आवश्यक होते है जिनसे कुछ विशिष्ट रोगों से बचाव किया जा सकता है।

(क) जीवाणु और विषाणु रोगों से बचाव

1. **टीकाः** लंगडिया ज्वर, गलघोंटू, आंत्ररक्तविषाक्तता, खुरपका और मुंहपका, रैबीज, भेड़ों की चेचक, बकरी प्लेग (पीपीआर) आदि रोगों के टीके नियमित रूप से लगवाना चाहिए।
2. **वन्य पशुओं का नियंत्रणः** कई जंगली पशु जैसे लोमड़ी, सियार, कुत्ते इत्यादि कई रोगों के विषाणुओं और जीवाणुओं को फैलाने का माध्यम होते हैं। इस प्रकार के रोगों की रोकथाम के लिए इन पशुओं का नाश करना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए अलर्क रोग के नियंत्रण के लिए जंगली पशु, सियार व लोमड़ी और सड़क पर घूमने वाले कुत्तों का नियंत्रण आवश्यक होता है।
3. **लक्षणहीन संक्रामक रोगों का निदानः** कई चिरकारी संक्रामक रोग लक्षणहीन होते हैं। इनका प्रभावकारी विधियों से नियमित रूप से निदान होना चाहिए। ब्रूसेल्लोसिस, क्षय

रोग, जोहनीस रोग और थनैला के लिए योजनाबद्ध विधियों से निदान और धनात्मक रोगियों का वध करने से नियमित रूप से रोगों के प्रकोप से बचाव होता है। इसके लिए एबेर्टस बैंगरिंग परीक्षण ट्यूबरकुलीन जोहनीन आदि परीक्षण नियमित रूप से करना चाहिए।

4. **संक्रामक रोगों के कारण मरे पशुओं के शव का प्रबन्धः** एन्थ्रेक्स रोग से मृत पशुओं का शव परीक्षण नहीं किया जाता है और उसे तुरन्त गहरे गड्ढ़ो में दबा या गला देना चाहिए। शव के साथ मृत पशु के बिछावन, पशुशाला की दूषित मिट्टी आदि को भी दबा देना चाहिए। ऐसे पशुओं के शवों को दो मीटर गहरे गड्ढ़े में रखने के बाद उस पर बुझा हुआ चूना छिड़क कर गड्ढे को बन्द कर देना चाहिए। अन्य संक्रामक रोगों से मरे पशुओं के शवों को खुले मैदानों, नदियों व तालाबों में नहीं फेंकना चाहिए और न ही उनकी खाल उतारनी चाहिए। मरे हुए पशु व उससे संबंधित पदार्थ जैसे मल-मूत्र, बिछावन आदि को या तो अलग कर देना चाहिए अथवा 2.5 मीटर गहरे गड्ढे खोदकर उसके ऊपर-नीचे 30 सेंमी चूने की सतह बिछाकर मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। स्वस्थ पशुओं को ऐसे स्थानों पर नहीं चरने देना चाहिए।

5. **संक्रामक रोगों की अधिसूचनाः** जब किसी संक्रामक रोग का प्रकोप हो तो यह सूचना जन-संचार माध्यमों जैसे रेडियों, दूरदर्शन, समाचार पत्रों आदि द्वारा समस्त देश में देनी चाहिए। संदिग्ध रोगों की अधिसूचना पशुचिकित्सक या पशु मालिकों को जिले को प्रशासकों और पशुपालन विभाग से संबंधित वरिष्ठ अधिकारियों को तुरन्त भेजनी चाहिए। भारत के विभिन्न राज्यों में निम्न संक्रामक रोगों की अधिसूचना देनी चाहिए:

   खुरपका और मुंहपका, गलघोंटू, लंगडिया ज्वर, तिल्ली ज्वर, क्षय रोग, जोहनीस रोग, अलर्क रोग (रेबीज), ग्लैण्डर्स और फारसी पशुपदिक, डाउरीन, लसीका वहनीशोध अवातजीवी रूग्णता, सर्रा, अफ्रीकी घोड़ों का ज्वर और शूकरों के ज्वर की भी तुरन्त अधिसूचना जारी करवानी चाहिए। मृत पशुओं के शव को सावधानीपूर्वक गड्ढों में दबवाना चाहिए।

6. **विसंक्रमणः** संक्रामक रोगों से बचाव के लिए अनेक विसंक्रमकों का उपयोग किया जाता है। विसंक्रमण अल्ट्रा वायलेट किरणों, ऊष्मा, रसायनों जैसे कि सोडा बाइकार्बोनेट, मरक्यूरिक क्लोरायड, ब्लीचिंग पाउडर, कॉपर सल्फेट, फिनायल, सोडियम कारबोनेट, चूना गैसों जैसे कि सल्फर डाई ऑक्साइड, फारमैल्डेहाइड आदि का उपयोग किया

जाता है। जिन स्थानों पर रोगी पशुओं के स्त्राव गिरते हो वहां भलीभांति विसंक्रमण करना चाहिए।

नवजात बछड़ों की जन्म पश्चात विशेष देखभाल

जन्म के पश्चात नवजात बछड़ों में आंत्रीय रोगों से बचाव के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य के लिए यदि उचित समझा जाए तो बछड़ों को जीवाणुनाशक औषधियां देना चाहिए। बछड़ों के जन्म के बाद नाभि स्वच्छ कैंची से काटने के पश्चात टिंचर आयोडीन में भीगे धागे से बांधनी चाहिए। नवजात बछड़ों और अन्य पशुओं को पर्याप्त मात्रा में खीस/दूध व स्वच्छ पानी पीने को देना चाहिए। उन्हें हवादार साफ एवं स्वच्छ पशुशालाओं में रखना चाहिए।

(ख) प्रोटोजोआ रोगों से बचाव

प्रोटोजोआ रोगों से बचाव के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं:

- पशुओं के गोबर को ठीक प्रकार से फेंका जाना चाहिए, क्योंकि पशुओं के गोबर में प्रोटोजोआ परजीवियों के उच्छिष्ट आदि होते हैं जो दूसरे पशुओं में संक्रमण कर सकते हैं।
- बाह्य परजीवी जैसे चींचड़ों, जूओं, पिस्सू, माइट्स का नियंत्रण विसंक्रमकों तथा कीटनाशकों जैसे स्प्रे सेविन, मैलाथियान, कैप्टान आदि द्वारा करना चाहिए। वर्ष में तीन बार ऐसा करने से थीलेरिया, बबेशिया आदि रोगों से बचाव होता है। मच्छरों व विभिन्न प्रकार की मक्खियों का नियंत्रण भी इन रोगों से बचने के लिए जरूरी है। यह कीटनाशक औषधियां अत्यन्त विषैली होती हैं। अतः इनका उपयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। इन औषधियों को बच्चों और पशुओं से दूर रखना चाहिए।
- कॉक्सीडियोसिस रोग से बचाव के लिए 0-3 माह की आयु के बछड़ों को कॉक्सीडियानाशक औषधियां निरन्तर तीन दिन तक दी जाती हैं। इसके लिए 15-20 घनसेन्टीमीटर 33.3% सल्फामेजाथीन का घोल दिया जा सकता है।

पशुओं के सामान्य रोग एवं उनका प्राथमिक/घरेलू उपचार

संजय कुमार मिश्र
पशु चिकित्सा अधिकारी चौमुहा मथुरा - 281001

पालतू पशुओं की ऐसी कई बीमारियाँ हैं, इनका अगर समय से उपचार न किया जाए तो ये काफी नुकसान दायक हो जाती हैं एवं इससे पशुपालक भाईयों को काफी नुकसान होता है। इस लेख में पशुओं को होने वाले सामान्य रोगों के लक्षण एवं उनके उपचार का वर्णन किया गया है, जिससे पशुपालकों को आर्थिक नुकसान से बचाया जा सके।

1. बुखार

लक्षण

मुँह, नथुने, शरीर, कान ठंडा साथ में नाक से गर्म हवा निकलती है। थूथन शुष्क होता है। अधिक ताप बढ़ जाने पर पशु हॉफने लगता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- मैगसल्फ 100 ग्राम एवं कलमी सोडा 10 ग्राम पानी में मिलाकर पिलाया जाए।
- कलमी सोडा 10 ग्राम, नौसादर 20 ग्राम एवं मैगसल्फ 100 ग्राम पानी में घोलकर पिलाएं।
- सेफ्टेक 2.5 ग्राम की एक एक गोली दिन में दो बार दें एवं प्रेस्टीवेट की दो-दो गोली दिन में दो बार दें।

2. खांसी बुखार

लक्षण

मुंह नथुने व शरीर गर्म, कान ठंडा साथ में खांसी भी आती है। कफ शुष्क रहता है। खाँसने में गीला बलगम नाक से निकलता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- कपूर 2 ग्राम; कलमी सोडा 3 ग्राम एवं नौसादर 6 ग्राम को गुड़ या सीरा में मिलाकर दिन में दो बार पशु को खिलाया या चटाया जाए।
- कैटकफ चटनी या केफलान पाउडर 50 ग्राम दिन में दो बार खिलाया जाए।

3. भूख न लगना

लक्षण

रोगी को आहार में अरुचि, पागुर या उगार बंद होना, सुस्ती और उदासी मुख्य लक्षण हैं।

प्राथमिक चिकित्सा

- नौसादर 10 ग्राम, चिरायता 30 ग्राम एवं काला नमक 30 ग्राम पीसकर प्रातः तथा शाम को गुड़ के साथ दें।
- डीपी स्ट्रांग चूर्ण 20 से 40 ग्राम प्रतिदिन खाने के बाद 3 से 5 दिन दें।
- एक्रोबिट या एपटीफास्ट की एक-एक गोली दिन में दो बार दें।

4. अपच

लक्षण

पशु के मल में अनपचा आहार या दाने निकलते हैं। मल पतला होता है। भोजन में अरुचि होती है।

प्राथमिक चिकित्सा

- सौंफ 60 ग्राम एवं खाने का सोडा 15 ग्राम पीसकर सुबह-शाम ऐसी एक खुराक पानी या दाने में खिला दें।
- हिमालय बतीसा 50 से 75 ग्राम प्रतिदिन खाने के बाद 1 सप्ताह तक दें।

5 पुराना कब्ज या गुंबा रोग

लक्षण

प्रारंभ में मल साफ नहीं होता जिससे कब्ज हो जाती है। बायीं कोख ठस जान पड़ती है। थपथपाने पर कोख से डब-डब की आवाज आती है। पशु के पेट में दर्द तथा बेचैनी रहती है।

प्राथमिक चिकित्सा

- प्राथमिक अवस्था में शुद्ध अरंडी का तेल 400 से 800 मिली. दिया जाए।

- पशु को 300 ग्राम मैगसलफ एवं साधारण नमक 200 ग्राम, 1.5 से 2 लीटर गुनगुने पानी में मिलाकर दें।
- रोगी पशु को 500 मिली. कोल- एल 12 घंटे के अंतर पर दो बार देना चाहिए।
- यदि रोगी पशु को उक्त दवाओं से दस्त ना आवे तो भुना पिसा कुचला 6 ग्राम एवं अमोनियम कार्बोनेट 30 ग्राम गुड़ में मिलाकर खिलाने से दस्त होने लगते हैं।

6. खून की कमी या कमजोरी

लक्षण

पशु को चलने-फिरने, उठने-बैठने मैं लड़खड़ाना, भोजन में अरुचि, नाक एवं आंख की झिल्लियां सफेद दिखाई देने लगती हैं।

प्राथमिक चिकित्सा

- हरा कशीश 6 ग्राम, कुटकी 15 ग्राम, भुना कुचला 2 ग्राम, नौसादर 15 ग्राम, चिरायता 15 ग्राम एवं तूतिया 1 ग्राम पीसकर पानी में या चावल के मांड में सुबह शाम 7 दिन तक खिलाकर, 10 दिन बाद बंद कर दें। फिर 7 दिन खिलाकर बंद कर दें। यह क्रम लगातार चलता रहेगा।

7. शूल (पेट का दर्द)

लक्षण

पेट के हर दर्द को शूल कहते हैं। इसमें पशु बेचैन होकर बार-बार उठता बैठता है व भोजन में अरुचि हो जाती है।

प्राथमिक चिकित्सा

- 30 मिली तारपीन का तेल, 30 से 40 ग्राम क्लोराइड हाइड्रेट, पानी 200 मिली. एवं अलसी का तेल 400 मिली. मिला कर एक बार मैं पिला दिया जाए।
- डीपी स्ट्रांग चूर्ण 20 से 40 ग्राम गुड में दो बार दिया जाए।

8. कीड़े पड़े घाव

लक्षण

घाव में कीड़े पड़ जाने से अति तीव्र दुर्गंध आती है। पशु बेचैन होकर आहार छोड़ देता है। घाव वाले स्थान से रक्त बहने लगता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- तारपीन का तेल या फिनायल 30 मिली. को 300 मिली. तीसी के तेल में मिलाकर घाव साफ करने के बाद तेल को जूट में लगाकर घाव में रोजाना भर दिया जावे। उक्त दवा में 50 ग्राम कपूर भी मिलाया जा सकता है।
- टॉपिक्योर या ड्रेसाल एडवांसड स्प्रे दिन में तीन बार घाव पर स्प्रे करें।

9. मोच या स्प्रेन

लक्षण

प्रभावित अंग सूज जाता है। सूजन छूने पर गर्म लगती है। दबाने पर पशु को दर्द होता है तथा इस अंग का प्रयोग पशु नहीं करता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- नमक नौसादर एवं कलमी सोडा बराबर भाग लेकर 20 ग्राम पानी में घोलकर शीतल घोल बना लिया जावे। इस घोल से पट्टी भिगोकर घाव को ठंडा रखा जाए।
- कपूर एक भाग एवं सरसों का तेल 5 भाग मिलाकर मालिश किया जाए।

10. डायरिया

लक्षण

पतला गोबर बार-बार होना, पशु में कमजोरी एवं भोजन में अरुचि हो जाती है। गोबर में ऑव या खून अथवा दोनों मलद्वार से बाहर आते हैं। पेट में मरोड़ होने के कारण दर्द बढ़ जाता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- रेंडी का शुद्ध तेल 20 से 30 मिली, अलसी का तेल 50 मिली एवं 60 ग्राम बबूल का गोंद गर्म पानी में घोलकर दिया जाए।
- कत्था 30 ग्राम, सोंठ 15 ग्राम, खड़िया मिट्टी 60 ग्राम, बेलगिरी 30 ग्राम एवं अफीम 6 ग्राम; इसकी दो खुराक सुबह शाम चावल के मांड में मिला कर दिया जाए।
- मल के साथ खून या ऑव आने पर नारफ्लोक्स टी जेड की एक एक गोली सुबह-शाम 3 से 5 दिन तक दी जाए एवं नेबलान पाउडर 100 -100 ग्राम सुबह शाम चावल के मांड में मिलाकर खिलाया जाए।

11. क्रॉनिक डायरिया पुराना दस्त

लक्षण

मिश्रित पतला दुर्गंध युक्त गोबर का बार बार होना पशु को कमजोर बना देता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- पिसा हुआ हरा कसीस, 10 ग्राम पतला गंधक का तेजाब एवं सोंठ 30 ग्राम की दो मात्राएं सुबह और शाम को 3 माह तक पिलायी जाए।

12. लीवर फ्लूक

लक्षण

दुर्गंध युक्त पतले गोबर का बार-बार होते रहना। जबड़े झालर के नीचे गर्दन में पानी एकत्र होने से सूजन हो जाती है। रोगी पशु कमजोर होकर मर जाता है। यदि पुराने दस्त लीवर फ्लूक के कारण आ रहे हो तो निम्नलिखित नुस्खे में से कोई एक दिया जाए:

प्राथमिक चिकित्सा

- तूतिया पिसी हुई 3 ग्राम एवं तंबाकू की धूल 3 ग्राम गुनगुने पानी 5 मिली. ।
- डिसटोडिन की एक से दो गोली हर 10 दिन पर।
- बैनमिनथ फोर्ट की चार गोली 3 से 4 सप्ताह बाद फिर देनी चाहिए। उक्त कोई एक नुस्खा युवा पशुओं को सितंबर से अप्रैल तक अवश्य देना चाहिए।

13. पेट के गोल कृमि

लक्षण

पतला दुर्गंध युक्त गोबर तथा कभी-कभी गोबर के साथ ऑव या खून गिरता है एवं पशु का स्वास्थ्य गिरता जाता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- युवा पशु को तारपीन का तेल 60 मिली एवं तीसी का तेल 10 मिली प्रतिदिन दिया जाए।
- एक प्रतिशत तूतिया का घोल 300 मिली. पानी में मिलाकर पिला दिया जाए। 1 ग्राम दवा 100 मिली पानी में मिलाने से 1% का घोल तैयार होता है।

14. पेट फूलना / अफरा

लक्षण

बाई कोख का फूल कर तन जाना एवं उंगली से बजाने पर ढोलक जैसी आवाज आना, सांस लेने में कष्ट आदि प्रमुख लक्षण है।

प्राथमिक चिकित्सा

- तारपीन का तेल 30 मिली, हींग 10 ग्राम थोड़े पानी में घोलकर तीसी का तेल 400 मिली मिलाकर एक ही बार में पिला दे, तथा बाई कोख को मुट्ठी से मल दें।
- डी पी स्ट्रांग चूर्ण 20 से 40 ग्राम दिन में दो बार देना चाहिए।
- टायरल या ब्लाटोसिल 100 मिली. 6 घंटे के अंतराल पर देना चाहिए।

15.जलने के घाव में

लक्षण

छाले या घाव हो जाते हैं। तीव्र जलन, बराबर दर्द व भोजन में अरुचि हो जाती है।

प्राथमिक चिकित्सा

- अलसी का तेल 1 भाग एवं निथरा हुआ चूने का पानी एक भाग दोनों को मिलाकर जले अंग पर रोजाना लगाना चाहिए।
- बरनाल या सिल्वरसल्फाडाइजीन का मलहम जले घाव पर लगाएं।

16. मुंह-पका रोग

लक्षण

मुंह के अंदर दाने, छाले या घाव, मुंह से लगातार लार का गिरना रोगी पशु को कड़ा आहार खाने में कष्ट होता है आदि। पशु चारा छोड़ देता है।

प्राथमिक चिकित्सा

- फिटकरी के घोल से मुंह धो कर सुहागे को 5 भाग सोरे में मिला कर मुंह के छालों पर 30 दिन में तीन से चार बार लगाएं। मुंह को गुनगुने नीम के पत्ते पड़े पानी से साफ कर ले।
- पोटेशियम परमैंगनेट के एक अनुपात 1000 के घोल से भी मुंह के अंदर की सफाई की जा सकती है।
- उंडहील स्प्रे का प्रयोग भी दिन में तीन बार कर सकते हैं।

नोट: पशुपालकों से निवेदन है कि किसी भी दवा के प्रयोग करने से पहले अपने निकटतम पशु चिकित्सक से सलाह लेकर ही अपने पशु को दें। बिना पशुचिकित्सक के कोई भी दवा पशुओं को देना खतरनाक या जोखिम भरा हो सकता है।

पशुओं में परजीवी रोग एवं उनकी रोकथाम

संजय कुमार मिश्र[1] एवं सर्वजीत यादव[2]

[1]पशु चिकित्साधिकारी चौमुहाँ, मथुरा - 281 001

[2]निदेशक प्रसार, उप्र पं दीन दयाल उपाध्याय, पशु चिकित्सा विज्ञान वि वि एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा - 281001

भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है, किन्तु हमारे देश में प्रति पशु उत्पादकता बहुत कम है। किसी भी पशु की उत्पादकता को बनाये रखने के लिए उसका स्वस्थ होना नितान्त आवश्यक है पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता पर जीवाणु एवं विषाणु जनित रोगों के अतिरिक्त परजीवी जनित रोगों का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। परजीवी पशुओं को कमजोर कर देते हें जिससे उनकी उत्पादकता कम हो जाती है, यदि समय रहते इनका उपचार न किया जाए तो पशुओं की मृत्यु भी हो सकती है।

परजीवी सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं:

- बाह्य परजीवी
- अन्तः परजीवी

बाह्य परजीवी: इनका यदि समय रहते ध्यान न दिया जाए तो पशुपालकों को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ सकती है। परन्तु यदि इन बीमारियों से बचाव के समुचित उपचार कर लिए जायें तो पशुपालक आर्थिक हानियों से बच सकते हैं। पशुओं में बाह्य परजीवी द्वारा होने वाले रोग इस प्रकार से हैं:

1. **टिक / कलीली / किलनी द्वारा:** इनके अन्तर्गत आने वाले परजीवी मुख्यतः आटोबियस, इक्सोडिस, होमो फाइसेलिस, डरमोकेन्टर इत्यादि हैं। ये चमड़ी के ऊपरी सतह से शरीर के अन्दर बीमारी फैलाते हैं और अधिक समय तक रहने पर शरीर से खून चूसते रहते हैं, जिससे पशु शीघ्र ही कमजोर और अनुपयोगी हो जाता है। ये परजीवी अन्य संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होता है। इनके लक्षण सामान्यतः खुजली व बेचैनी है।
2. **माइट द्वारा:** इनके अन्तर्गत आने वाले परजीवी मुख्यतः सारकोप्टिस, सोरोप्टिस, डेमोडेक्स इत्यादि हैं। इनके लक्षण सामान्यतः कान, मुँह, पैरों और पूँछ पर पाये जाते हैं। इनके कारण शरीर के उपरोक्त भागों में खुजली, बेचैनी, लाल चक्कत्ते और बाल झड़ने की समस्या पशुओं को हो जाती है। इन परजीवियों के कारण पशु पूर्णरूप से कमजोर हो जाता है और उत्पादन क्षमता घट जाती है। बहुत अधिक समय तक बीमारी के रह जाने से पशु की मृत्यु भी हो जाती है।

बचाव के उपाय व उपचार

- आइवरमेक्टिन- इंजेक्शन 0.2 मिग्रा./किग्रा. वजन के हिसाब से अन्तः चमड़ी के द्वारा दिया जाना चाहिए।
- प्रतिजैविक औषधि भी साथ में देनी चाहिए।
- कैलोमिल और बीटाडिन नामक लोशन को समान मात्रा में मिलाकर प्रभावित स्थान पर लगाया जाना चाहिए।

बाह्य परजीवी का उपचार

	औषधि	मात्रा
1.	साइपरमेथ्रिन / डेल्टामेथ्रिन	1-2 मिली. दवा 1 लीटर पानी में घोलकर नहलायें तथा 05 मिली. दवा 1 लीटर पानी में घोलकर बाड़े में छिड़काव करें।
2.	अमितराज	2 मिली./ली0 पानी में घोलकर त्वचा पर लगायें।
3.	बैटिकाल (पोस्आन)	1 मिली. दवा प्रति 10 किग्रा. भार पर सिर से पूँछ तक बूँद-बूँद कर रीढ़ की हड्डी पर टपकाना।
4.	आइवरमेक्टिन / डोरामेक्टिन (इंजेक्शन / टेबलेट / बोतल)	1 मिली./50 किग्रा. शरीर भार पर सुई द्वारा त्वचा के नीचे। 1 टेबलेट/50 किग्रा. भार पर

3. **जूएँ द्वारा:** इनके अन्तर्गत बोविकोला कैप्री, लाइनोग्नैथस इत्यादि आते हैं। लक्षण सामान्यतः खुजली, लाल चक्कत्ते और खून की कमी होना है।

उपचार

- आइवरमेक्टिन का इंजेक्शन चमड़ी के द्वारा 0.2 मिग्रा./किग्रा. वजन के हिसाब से देना चाहिए।
- ब्यूटाक्स दवा (5 मिली. को 1 ली. पानी में घोल बनाकर) 15 मिनट तक पशु के शरीर पर लगाकर छोड़ देना चाहिए। उसके उपरान्त पशु को नहला देना चाहिए।

4. **मक्खी द्वारा:** इनके अन्तर्गत मुख्यतः न्यूसिला और कैलिफोरा नामक मक्खियाँ आती हैं जिन्हें ग्रीन बाटल फ्लाई और ब्लू बाटल फ्लाई के नाम से भी जाना जाता है। बीमारी मुख्यतः मक्खियों के लार्वा से होती है जो चमड़ी में घाव कर देती हैं। इनके लक्षण भी खुजली एवं घाव हैं, जिसमें कभी-कभी कीड़े भी पड़ जाते हैं और दूध में भी कमी आ जाती है।

उपचार: तारपीन के तेल को घाव में भर देना चाहिए और कुछ समय बाद कीड़ों को चिमटी से निकाल देना चाहिए। तदुपरान्त कोई भी घाव सुखाने वाले स्प्रे का प्रयोग करना चाहिए जैसे- टॉपिक्योर, स्किनहील, बून्डहील इत्यादि।

अन्तः परजीवी:

वे परजीवी जो शरीर के अन्दर के अंगों को प्रभावित करते हैं इनसे भी दुग्ध उत्पादन काफी हद तक कम हो जाता है। बहुत अधिक समय तक रहने पर पशु मर भी सकता है। अन्तः परजीवियों में सामान्यतः बीमारी फैलाने वाले प्रमुख परजीवी एम्फीस्टोम, फैसिओला, मोनीजिया, आइमेरिया, हिमाँकस, ट्राइकोस्ट्रान्गाइलस कुपेरिया इत्यादि हैं। अन्तः कृमि भौतिक संरचना के आधार पर दो प्रकार के होते हैं पहले चपटे व पत्ती के आकार के जिन्हें पर्णकृमि एवं फीता कृमि कहते हैं और दूसरे गोलकृमि जो बेलनाकार होते हैं।

1. **पर्ण-कृमि:** यह चपटे व पत्ती के आकार के परजीवी होते हैं इसीलिए उन्हें पर्णकृमि भी कहा जाता है। इस वर्ग में मुख्यतः फेसिओला पशुओं के यकृत को नष्ट करता है, जबकि एम्फिस्टोम और सिस्टोस्टोम पशुओं के रक्त का उपयोग करते हैं एवं उनके उत्पादन को कम करने के अतिरिक्त एनीमिया (रक्ताल्पता), ऊतक क्षति जैसे गम्भीर रोग उत्पन्न करते हैं।

2. **फीताकृमि:** यह परजीवी अधिकांशतः भोजन की नाल में पाये जाते हैं एवं पशुओं के पोषण तत्वों का उपयोग कर पशुओं को हानि पहुँचाते हैं इन्हीं कृमियों के लार्वा पशुओं के विभिन्न अंगों में पहुँच जाते हैं और सिस्ट बनाते हैं।

3. **गोलकृमि:** यह परजीवी भी पशुओं के विभिन्न अंगों में पहुँचकर हानि पहुँचाते हैं। यह परजीवी पशुओं में विभन्न रोग जैसे खून-चूसने के कारण एनीमिया, भोजन इस्तेमाल न कर पाने के कारण कमजोरी, फेंफड़ों में होने के कारण न्यूमोनिया, आँखों में होने के कारण अन्धापन, गाँठ बनना, अंगों व ऊतकों को नष्ट करना आदि अवस्था उत्पन्न कर सकते हैं।

उपचार

संक्रमित पशुओं का समय से उचित मात्रा में प्रभावी औषधियों का प्रयोग विशेषज्ञ की देखरेख में निम्न प्रकार से किया जाना चाहिए:

- एलबेण्डालाज मुँह द्वारा 5-7.5 मिग्रा./किग्रा शरीर भार के हिसाब से देना चाहिए।
- टेट्रामिजोल मुँह से 15 मिग्रा./किग्रा शरीर भार की दर से देना चाहिए।
- पैरान्टल टाटरेट मुँह से 2.5 मिग्रा./किग्रा शरीर भार की दर से देना चाहिए।
- आइवरमेक्टिन चमड़ी या मुँह द्वारा 0.2-0.4 मिग्रा./किग्रा शरीर भार की दर से देना चाहिए।

पशुओं का परजीवियों से बचाव हेतु कुछ सामान्य उपाय

परजीवियों से होने वाले नुकसान से बचने के लिए यह आवश्यक है कि रोग उत्पन्न होने से पहले ही बचाव किया जाए। परजीवियों से बचाव हेतु कुछ सामान्य उपाय निम्नालिखित है:

- पशुओं के बाड़े की प्रतिदिन सुबह-शाम सफाई करनी चाहिए।

- पशुओं के अन्तः परजीवी संक्रमण को रोकने के लिए मध्य पोशियों को समाप्त करना आवश्यक है। इसके लिए बेंजीन हेक्साक्लोराइड या फिनाइल से बाड़ों की सफाई करनी चाहिए।
- पशुओं को पेट के कीड़ों की औषधि हर तीन महीनों पर देनी चाहिए।
- पशुओं को साफ-सुथरा, पौष्टिक और खनिज युक्त आहार देना चाहिए।
- एक ही स्थान पर अत्याधिक पशुओं को नहीं रखना चाहिए।
- पशुओं के बच्चों को उनकी माताओं से शीघ्र अतिशीघ्र अलग कर देना चाहिए क्योंकि कम उम्र के पशुओं में संक्रमण की संभावना अधिक होती है।
- पशुओं को निचले व गीले स्थानों जैसेकि तालाब आदि के पास चरने के लिए नहीं भेजना चाहिए, क्योंकि इन स्थानों पर संक्रमित लार्वा मिलने की अधिक संभावना होती है।
- औषधि लगाने के लिए ऐसा समय चुनें जिस वक्त गर्मी अधिक न हो। जैसे सुबह या फिर शाम के समय।
- औषधि लगाने के बाद पशुओं को धूप में न बाँधें।
- सभी पशुओं को सर्वप्रथम पेट भर पानी पिलायें।
- पशुओं को अच्छी तरह नहलाकर साफ करें, पशु के शरीर पर लगे कीचड़ व गोबर पूर्णतः साफ करें।
- औषधि का उचित घोल बनाकर (जैसे ब्यूटॉक्स या एक्टोमिन 5 मि.ली./लीटर पानी) पशु के पूरे शरीर पर लगायें। पूँछ के नीचे तथा पिछले पैरों व अयन के बीच में विशेष रूप से लगायें।
- पशु आवास की सफाई कर फर्श व दीवारों पर भी औषधि का छिड़काव अवश्य करें।
- एक सप्ताह के अन्तराल पर तीन बार दवाई लगायें।

नोट: पशुपालकों से निवेदन है कि किसी भी दवा के प्रयोग करने से पहले अपने निकटतम पशु चिकित्सक से सलाह लेकर ही अपने पशु को दें। बिना पशुचिकित्सक के कोई भी दवा पशुओं को देना खतरनाक या जोखिम भरा हो सकता है।

सभी भारतीय भाषाओं के लिए
यदि कोई एक लिपी आवश्यक है
तो वो देवनागरी ही हो सकती है

– जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर

गोवंशीय पशुओं में प्लास्टिक पदार्थ का दुष्प्रभाव व उपचार

सुरभि के. त्यागी, विवेक मलिक, विनीत कुमार, मुकेश शिवहरे, प्रफ्फुल कुमार, चेतन सिंह एवं पुष्पेंद्र सिंह बामल
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविधालय, मेरठ - 250110

भारत जैसे विकासशील देशों में प्लास्टिक का उपयोग बहुतायत में होता है। खाने की चीज़ से लेकर घर एवं उद्योग सबमें प्लास्टिक का बहुत इस्तेमाल होता है। प्लास्टिक का हमारे पर्यावरण पर बहुत दुष्प्रभाव पड़ता है। यदि किसी कारणवश यह प्लास्टिक पशुओं के पेट में चला जाता है तो यह उनके लिये बहुत हानिकारक होता है साथ ही उनकी मृत्यु का कारण भी बन सकता है।

इस बीमारी के मुख्य कारण हैं:

- मनुष्य द्वारा कूड़े को प्लास्टिक की थैली में फेंकना
- प्लास्टिक का अत्यधिक उपयोग
- गाँवों व शहरों में चरागाहो की कमी
- अनाश्रित व बेघर बूढ़े और बीमार पशु
- पशु के शरीर में खनिजों की कमी
- पशुओं के चरने का तरीका

शल्यचिकित्सा के दौरान पशु के पेट में से प्लास्टिक निकालता हुआ शल्यचिकित्सक

शहरीकरण व बढ़ते औद्योगिकीकरण के कारण शहरों एवं गाँवों में चरने की ज़मीन की कमी होती जा रही है। पशुपालकों द्वारा रखे गये पशु जिन्हें चारा या दाना खिलाया जाता है उनमें यह बीमारी कम या ना के बराबर पायी जाती है, परन्तु ऐसे पशु जिन्हें खाने के लिये खुला छोड़ दिया जाता है उनमें यह बीमारी ज़्यादा देखी जाती है। साथ ही ऐसे पशु जो दुधारू ना हों उन्हें पशुपालक खुला छोड़ देते हैं। भूखे पशु चरागाहों की कमी में अपना पेट भरने के लिये कचरे का रुख करते हैं जिसमें प्लास्टिक ही सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। कोई भी खाने योग्य समान जोकि प्लास्टिक की थैली में हो पशु उसकी अलग से पहचान नही कर पाते और प्लास्टिक भी खा जाते हैं।

लक्षण

गोवंशीय पशुओं में पेट के चार भाग होते हैं। पहला चारादानी, जिसे रूमेन भी बोलते हैं, सबसे बड़ा होता है। दूसरा रेटिकुलम या चित्ती, तीसरा ओमेसम तथा चौथा एबोमेसम होता है। खाना निगलने के बाद खाना व प्लास्टिक दोनो मुँह से सीधा पेट के पहले भाग चारादानी अर्थात रुमेन में पहुँचता है। पचने लायक भोजन तो पाचन क्रिया द्वारा पेट के अगले भागो में चला जाता है परन्तु अपचनीय होने के कारण प्लास्टिक वहीं पेट में ही पड़ा

एक पशु के पेट में से शल्य क्रिया द्वारा निकाला हुआ प्लास्टिक

रहता है व धीरे-धीरे जमा होता जाता है। प्लास्टिक सालों तक भी बिना पचे पेट में पड़ा रहता है और पेट के क्रमाकुंचन या निगति (पेरीस्ताल्सिस) को धीमा व अन्त में बंद कर देता है। कमज़ोरी के कारण पशु हड्डियों का ढाँचा बन जाता है, परन्तु उसका पेट बहुत मोटा हो जाता है।

प्लास्टिक को बनाते समय उसमें कई हानिकारक केमिकल उपयोग में लाये जाते हैं जैसे कि कोबाल्ट व लेड। यह विषैले तत्व पशुओं के रक्त में जाकर कई बीमारियाँ पैदा करते हैं और दूध में भी स्रावित होते हैं। ऐसा दूध बछड़े और साथ ही मनुष्य पर (ज़्यादातर बच्चों) दुष्प्रभाव डालता है। इनके कारण पशुओं में लँगड़ापन भी आ सकता है। प्लास्टिक के कारण पशुओं की पाचन क्रिया खराब हो जाती है और वह कुपोषण का शिकार हो जाते हैं और बीमार रहने लगते हैं। उनमें अफ़ारा यानी ब्लोट भी हो जाता है और वह खाना व जुगाली बन्द कर देता है।

बीमार पशुओं की दूध देने की क्षमता कम होती जाती है और कुपोषण के कारण दूध बंद हो जाता है जिससे पशुपालकों को हानि उठानी पड़ती है।

निवारण व उपचार

प्लास्टिकनॉन-बायोडिग्रेडबल है, अर्थात यह हमारे वातावरण में सालों-साल ऐसे ही पड़ा रहता है। पर्यावरणविदों के अनुसार हमें इसका इस्तेमाल कम से कम करना चाहिये। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि हम कोई खाद्य पदार्थ कूड़े में डालते हैं तो उसे प्लास्टिक की थैली में से बाहर निकाल दें। पशुओं को चारा-दाना या भूसा भली प्रकार से देखकर एवं प्लास्टिक से बाहर निकाल कर दें।

इस बिमारी का उपचार शल्यचिकित्सा द्वारा ही संभव है। शल्यचिकित्सक द्वारा शल्य क्रिया या सर्जरी करके पशुओं के पेट में से कई-कई किलो जमा हुआ प्लास्टिक निकाला जाता है। तदोपरांत चारादानी/रूमेन को खाली करके उसे सिल दिया जाता है, इसके उपरान्त पेट की मांसपेशियों व चमड़ी को भी सिल दिया जाता है।

पशुओं में प्रारम्भिक लक्षणों के आते ही तुरन्त शल्य चिकित्सक द्वारा उपचार करवाने से पशु सफलतापूर्वक जीवित रह सकता है। यह बीमारी पशुओं को मानवजाति द्वारा ही दी गई है, यदि सावधानी बरतें तो मूक पशुओं को हम इस बीमारी व अन्य तकलीफों से बचा सकते हैं।

दुधारू पशुओ में थनैला रोग

आयुषी चौधरी, उमेश सिंह, हरजीत सिंह एवं ज्ञानेन्द्र सिंह सेंगर

भाकृअनुप - केन्द्रीय गोवंश अनुसंधान संस्थान, ग्रास फार्म रोड, मेरठ - 250001

थनैला रोग (Mastitis) दुधारू पशुओं में होने वाला रोग है। थनैला रोग से ग्रसित पशुओं में रोग के प्रारंभ में थन गर्म हो जाता है, उसमें दर्द एवं सूजन हो जाती है तथा शारीरिक तापमान भी बढ़ जाता हैं। लक्षण प्रकट होते ही दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती है। दूध में छटका, खून एवं पस की अधिकता हो जाती हैं। पशु खाना-पीना छोड़ देता है। यह बिमारी ज्यादातर गाय और भैंस में देखने को मिलती है, जो अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। थनैला बिमारी पशुओं में कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, फफूँद एवं यीस्ट तथा मोल्ड के संक्रमण से होती है। इसके अलावा चोट तथा मौसमी प्रतिकूलताओं के कारण भी थनैला हो जाता है। प्राचीन काल से ही यह बिमारी दूध देने वाले पशुओं एवं उनके पशुपालकों के लिए चिंता का विषय बनी हुई है। पशुधन विकास के साथ श्वेत क्रांति की पूर्ण सफलता में अकेले यह बिमारी सबसे बड़ी बाधक हैं। इस बिमारी से पूरे भारत में प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये का नुकसान होता हैं, जो अतंतः पशुपालकों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता हैं। यह प्रति वर्ष दूध की उत्पादकता में 30% और उत्पादन में 15% की कमी करती है। गाय में होने वाला थनैला रोग एक बड़ी समस्या है और दुनिया भर में डेयरी उधोगो को प्रभावित करती है। दूध अत्यधिक पौष्टिक तत्व है और यह युवा का प्राथमिक स्रोत है।

स्रोत: एनिमल साइंस का ब्लॉग स्पॉट लिंक

चित्र : थनैला से ग्रसित थन

दूध लगभग 87.20% पानी, 3.7% वसा, 3.5% प्रोटीन, 4.9% लैक्टोज, 0.7% राख से बना है और इसका पी.एच. 6.8 होता है। दूध की संरचना इसे सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए एक मजबूत माध्यम बनाती है।

रोग कारण

डेयरी गायों में थनैला रोग का सबसे आम कारण जीवाणु है। शोध से पता चलता है कि 137 से अधिक जीवाणु पशुओ में थनैला रोग के प्रमुख कारण हैं। थनैला रोग में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव (एरोबिक, एनारोबिक, मायकोप्लाज्मा, खमीर, कवक) शामिल हैं। यह रोग सामान्य रोगज़नक़ दूध में अच्छी तरह से बढ़ता है। थनैला रोग का सबसे महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीव स्ट्रेप्टोकोकी, स्टैफिलोकोसी, एस्चेरिचिया कोलाई और अन्य कोलीफॉर्म है। थनैला रोग के कारण की गहनता काफी हद तक सूक्ष्मजीव की प्रकृति, वाहक की रोगजनकता और संक्रमण के लिए आवश्यक खुराक के कारण पर निर्भर करती है और प्रबंधन अभ्यास से भी प्रभावित होती है। क्योंकि थनैला रोग में शामिल अधिकांश रोगजन्य सर्वव्यापी हैं, थनैला रोग को प्रबंधित किया जा सकता है लेकिन इसका उन्मूलन नहीं किया जा सकता है।

संक्रमण का स्रोत

संक्रामक सूक्ष्मजीव आमतौर पर संक्रमित गायों के थन को संकर्मित करते हैं और वे आमतौर पर दूध देने की स्थिति के दौरान असंक्रमित और संक्रमित थन के बीच संक्रमण का प्राथमिक स्रोत होते हैं। स्टैफिलोकोकस ऑरियस प्रजाति थनैला रोग में सबसे ज्यादा संक्रमण फ़ैलाने वाले सूक्ष्मजीव है जो दुनिया भर में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान के लिए जिम्मेदार है।

- **संक्रामक थनैला रोग:** इस प्रकार का रोग ग्रसित पशु से स्वस्थ पशु के बीच फैलता है। इसका प्रमुख कारण स्टैफाईलोकोक्स

ऑरीयस, स्ट्रेप्टोकोक्स एग्लेक्सिया व माइकोप्लाजमा जैसे जीवाणु हैं।

- **पर्यावरणीय थनैला रोग:** इसमें थनैला रोग वातावरण से दुधारू पशु के बीच फैलता है। पर्यायवरणीय थनैला के रोगजनक जीवाणु दुधारू पशु के आसपास (मल-मूत्र, पशु के वातावरण, पशु के बिछावन व पानी) के वातावरण में रहते हैं। दूध निकालते समय या उससे पहले वातावरण में फैली गन्दगी के सम्पर्क में आने से रोग उत्पन्न हो जाता है। प्रमुख पर्यायवरणीय थनैला रोग जनक ई.कोलाई, स्ट्रेप्टोकोक्स व स्यूडोमोनास हैं लेकिन वातावरण में फैले अन्य जीवाणु जैसे फफूंद, विषाणु भी पर्यायवरणीय थनैला रोग उत्पन्न करते हैं।
- **थन की त्वचा से लेवटी में रोग जनकों का प्रवेश:** यह आमतौर पर नकारात्मक कोगूलेज एन्जाईम पैदा करने वाले स्टैफाईलोकोक्स व कोरानीबैक्टीरियम से होता है। इनको थनैला रोग का मामूली रोग जनक कहा जाता है जो दुग्ध वाहिनी में संक्रमण पैदा करते हैं। थनों को जीवाणु नाशक घोल में डुबोने से इन रोग जनकों को समाप्त किया जा सकता है।
- **पशु शिशु के मुँह से रोग जनकों का थन में प्रवेश:** ज्यादा देर तक बछड़ो के दूध पीने से थनों के छिद्र खूल जाते हैं, जिससे दुग्ध ग्रन्थि में संक्रमण होने का खतरा बढ़ जाता है।
- **मक्खियों से:** गर्मियों के मौसम में मक्खियों का प्रकोप ज्यादा हो जाता है जो थनैला रोग जनकों खासतौर से एक्टीनोमायकोसिस पायोजिनिस के वाहक होते हैं। इन जीवाणुओं के कारण दूध से हटाई गई गायों व ओसर बछड़ियों की दुग्ध ग्रन्थियों में फोड़े व मवादयुक्त थनैला रोग उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त मक्खियाँ स्टैफाईलोकोक्स ऑरीयस जीवाणु के वाहक भी होती हैं जिनसे थनैला रोग उत्पन्न होता है।

सूजन के आधार पर इसे नैदानिक या उप-नैदानिक थनैला के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **नैदानिक थनैला:** नैदानिक थनैला को किसान द्वारा दूध या थन में असामान्यता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह स्तन ग्रंथि में स्थूल रूप से दिखाई देने वाले परिवर्तनों के साथ स्तन ग्रंथि की सूजन है। यह दूध की मलीनीकरण, लालिमा में वृद्धि, तापमान, दर्द और कार्य की गड़बड़ी जैसी असामान्यताओं की विशेषता के कारण होता है।

नैदानिक थनैला रूपों के आधार पर विभिन्न प्रकार

- **अति-तीव्र थनैला रोग:** इसकी शुरूआत बहुत अचानक होती है जिसमें थन बहुत ज्यादा सूज जाते हैं व दूध पानी जैसा हो जाता है तथा अचानक दूध कभी खत्म या कम हो जाता है। थनों के ऊत्तकों व जीवाणुओं के द्वारा उत्पन्न एन्जाईम से, आंतरिक व बाह्य विषाक्त पदार्थों व ल्यूकोसाईट के कारण थनों में सूजन उत्पन्न होती है। इससे बुखार, चारा न खाना, उदासी, पाचन तंत्र की गतिशीलता में कमी जैसी असामान्यताओं का होना आम है।
- **तीव्र थनैला रोग:** इस रोग की शुरूआत भी तीव्र होती है जिसमें थनों की सूजन मध्यम से बहुत ज्यादा होती है। इसके लक्षण सामान्यतः दूध में कमी, पानी जैसा दूध या दूध में छेछड़े मिलना होता है। इसके लक्षण भी अतितीव्र थनैला रोग जैसे ही होते है लेकिन तीव्रता थोड़ी कम होती है।
- **अर्ध-जीर्ण थनैला रोग:** इसमें सूजन कम होती है व थनों में कोई ज्यादा परिवर्तन देखने को नही मिलता। आमतौर पर दूध में छेछड़े दिखायी देते हैं तथा कभी-कभी दूध के रंग में बदलाव आ जाता है, लेकिन आमतौर पर इसमें पशु के अन्य शारीरिक लक्षण दिखायी नही देते हैं।
- **जीर्ण थनैला रोग:** जीर्ण थनैला रोग अस्पष्ट रोग के रूप में कई महीने तक हो सकता है जो कभी-कभी नैदानिक रूप में दिखाई दे जाता है व ईलाज के बाद ठीक हो जाता है व फिर कुछ दिनों बाद फिर नैदानिक रूप में हो जाता है। इस प्रकार यह रोग लम्बे समय तक चलता रहता है।

2. **उप-नैदानिक थनैला रोग:** अस्पष्ट थनैला रोग बहुत ज्यादा देखने को मिलता है। यह नैदानिक थनैला रोग से 15 से 40 गुना ज्यादा मिलता है। इसमें थन व दूध में ज्यादा परिवर्तन नहीं दिखायी देते हैं। थनैला के कई घटनाओं को सीधे दूध रिकॉर्डिंग योजनाओं या कैलिफोर्निया मास्टिटिस परीक्षण के माध्यम से गाय की दैहिक कोशिका गणना द्वारा परिक्षण किया जाता है। इससे गाय में बिमारी के कोई स्पष्ट नैदानिक लक्षण

नहीं दिखते हैं और दूध की संरचना में कोई भी परिवर्तन दिखाई नहीं देता है। थनैला के इन मामलों को उप-नैदानिक कहा जाता है और यह बिमारी के नैदानिक मामलों की तुलना में 40 गुना अधिक सामान्य हो सकता है।

- **डेयरी उद्योग पर प्रभाव:** दूध की पैदावार लगभग 70% कम होने लगती है, इसका मुख्य कारण थनैला रोग से पीड़ित पशु है। यह भारत में डेयरी किसानों के लिए एक बड़ी समस्या है जहां 8 करोड़ 36 लाख दुधारू गाये हैं जो वैश्विक डेयरी गायों की आबादी का 16.5% है। दूध का निरीक्षण करके ही थनैला रोग का पता लगाया जाता है और संक्रमण के प्रकार को पहचानने के लिए प्रयोगशाला सैंपल भेजकर कर पुष्टि जाती है। यह विधि खर्चीली और समय लेने वाली है। इसलिए नैदानिक थनैला वाली गायों में दूध की पैदावार और संरचना में अचानक परिवर्तन होता है, उप-मस्तक के साथ गायों की तुलना में, पूर्व के कारण होने वाले नुकसान की तुलना में अधिक होते हैं। रेड्डी और सईद, (2009) के अनुसार, थनैला रोग के कारण भारतीय डेयरी उद्योग लगभग 526 मिलियन डॉलर का वार्षिक नुकसान झेलता है।

थनैला रोग के लक्षण

अलाक्षणिक या उप-लाक्षणिक प्रकार के रोग में थन व दूध बिल्कुल सामान्य प्रतीत होते हैं लेकिन प्रयोगशाला में दूध की जाँच द्वारा रोग का निदान किया जा सकता है। लाक्षणिक रोग में जहाँ कुछ पशुओं में केवल दूध में मवाद/छिछड़े या खून आदि आता है तथा थन लगभग सामान्य प्रतीत होता है वहीं कुछ पशुओं के थन में सूजन या कड़ापन एवं गर्मी के साथ-साथ दूध असामान्य पाया जाता है। कुछ असामान्य प्रकार में थन सड़ कर गिर जाता है। ज़्यादातर पशुओं में बुखार आदि नहीं होता। रोग का उपचार समय पर न कराने से थन की सामान्य सूजन बढ़ कर अपरिवर्तनीय हो जाती है और थन लकड़ी की तरह कड़ा हो जाता है। इस अवस्था के बाद थन से दूध आना स्थाई रूप से बंद हो जाता है। सामान्यतः प्रारम्भ में एक या दो थन प्रभावित होते हैं जो कि बाद में अन्य थनों में भी रोग फैल सकता है। कुछ पशुओं में दूध का स्वाद बदल कर नमकीन हो जाता है।

थनैला रोग का निदान

रोग का सफल उपचार प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही संभव है अन्यथा रोग के बढ़ जाने पर थन बचा पाना कठिन हो जाता है। इससे बचने के लिए दुधारु पशु के दूध की जाँच समय पर करवा कर जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा उपचार पशु चिकित्सक द्वारा करवाना चाहिए। प्रायः कुछ औषधियाँ थन में ट्यूब चढ़ा कर तथा साथ ही मांसपेशी में इंजेक्शन द्वारा दी जाती है। थन में ट्यूब चढा कर उपचार के दौरान पशु दूध पीने योग्य नहीं होता। अतः अंतिम ट्यूब चढने के 48 घंटे बाद तक का दूध प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है कि उपचार पूर्ण रूप से किया जाये, एवं बीच में न छोड़ा जाये।

- **नैदानिक परीक्षा:** थनैला रोग में हम निरीक्षण और तालमेल के माध्यम से थन के असामान्य प्रकार के आकार को देखते हैं, स्थिरता की जाँच की जाती है और इसमें हम समरूपता, फाइब्रोसिस, सूजन के लक्षण का पूरी तरह से निरीक्षण करते हैं और दूध में असामान्यताएं का होना जैसे रक्त, थक्के, मवाद आदि का पता लगाने के लिए जांच की जाती है।
- **दैहिक कोशिका गणना:** दूध में प्रति मिलीलीटर कोशिकाओं की कुल संख्या को दैहिक कोशिका गणना कहते हैं। यह मुख्य रूप से, SCC ल्यूकोसाइट्स, या श्वेत रक्त कोशिकाओं से बना होता है, जो स्तन ग्रंथि या स्तनदाह में सूजन से लड़ने के लिए गाय की प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा निर्मित होते हैं। स्टैफिलोकोकस ऑरियस जैसे रोगजनक जीवाणु की प्रतिक्रिया में दैहिक कोशिकाओं की संख्या बढ़ जाती है, जो थनैला रोग का एक कारण है। SCC प्रति मिलीलीटर कोशिकाओं के रूप में परिमाणित है। सामान्यत: असंक्रमित गायों के लिए 100,000 से कम कोशिकाओं/एमएल के संदर्भ रेंज पर टिकी हुई है और महत्वपूर्ण रोगज़नक़ स्तरों से संक्रमित गायों के लिए 250,000 से अधिक है।

थनैला रोग का उपचार

रोग का सफल उपचार प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही संभव है अन्यथा रोग के बढ़ जाने पर थन बचा पाना कठिन हो जाता है।

इससे बचने के लिए दुधारु पशु के दूध की जाँच समय पर करवा कर जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा उपचार पशु चिकित्सक द्वारा करवाना चाहिए। प्रायः यह औषधियां थन में ट्यूब चढ़ा कर तथा साथ ही मांसपेशी में इंजेक्शन द्वारा दी जाती है। थन में ट्यूब चढा कर उपचार के दौरान पशु का दूध पीने योग्य नहीं होता। अतः अंतिम ट्यूब चढने के 48 घंटे बाद तक का दूध प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है कि उपचार पूर्ण रूपेण किया जाये, बीच में न छोड़ें।

थनैला बिमारी की रोकथाम प्रभावी ढ़ंग से करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक हैं:

- दुधारू पशुओं के रहने के स्थान की नियमित सफाई जरूरी हैं। फिनाईल के घोल तथा अमोनिया कम्पाउन्ड का छिड़काव करना चाहिए।
- दूध दुहने के पश्चात् थन की यथोचित सफाई के लिए लाल पोटाश या सेवलोन का प्रयोग किया जा सकता है।
- दुधारू पशुओं में दूध बन्द होने की स्थिति में ड्राई थेरेपी द्वारा उचित ईलाज करवाया जाना चाहिए।
- थनैला होने पर तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह से उचित ईलाज कराया जाये।

निष्कर्ष

दूध नवजात शिशु के लिए एक पूर्ण ऊर्जा का स्त्रोत है। शिशु ही नहीं अपितु हर उम्र के व्यक्ति को किसी न किसी तरीके से दूध की आवश्यकता होती क्योंकि यह आसानी से पच जाता है और मनुष्य किसी न किसी अवस्था में दूध ग्रहण करता है जिससे उस में प्रोटीन की कमी न हो। परन्तु गोवंश में थनैला रोग होने के कारण गायों की उत्पादक क्षमता कम हो जाती है। इसलिए इसकी रोकथाम प्रत्येक किसान की प्रमुख चिंता होनी चाहिए। साथ ही साथ कृषि वैज्ञानिको को भी शोध द्वारा कुछ इस प्रकार की दवाओं की खोज करनी चाहिए जोकि किसानों और स्वयं गोवंश को शीघ्रता से इस रोग के इलाज में मददगार साबित हो।

पशुधन प्रकाश के बारहवें अंक (वर्ष-2021) के लिए लेखों का आमन्त्रण

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल की वार्षिक पत्रिका **पशुधन प्रकाश** का प्रकाशन प्रति वर्ष किया जाता है। पशु विज्ञान एवं चिकित्सा, नस्ल लक्षण-निर्धारण व संरक्षण इत्यादि क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशु पालकों, पशु वैज्ञानिकों एवं विद्यार्थियों के लिए उपयोगी **शोध लेख/लोकप्रिय लेख** भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल के राजभाषा एकक को ए-4 आकार के पन्नों पर टंकित करवाकर 31 मार्च 2021 तक भेज दें। छायाचित्रों की जेपीजी फ़ाइल सहित अपने लेख उक्त पते पर अथवा ई-मेल से pashudhanprakash@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें। सभी लेखकों द्वारा हस्ताक्षरित निम्न प्रमाण-पत्र लेख के साथ अवश्य भेजें:

"प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख (लेख का शीर्षक व लेखकों के नाम सहित) एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा शौध पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया गया है।"

आपके द्वारा अध्ययन किये गए पालतू पशु/कुक्कुटों के गैर पंजीकृत नस्लों/समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

संपादक मंडल

प्रसवोपरांत पशुओं में जेर का न गिरना: एक गंभीर समस्या

आशुतोष बसेड़ा *, जितेंद्र अग्रवाल एवं अतुल सक्सेना

*एम वी एस सी छात्र, उप्र पं दीन दयाल उपाध्याय, पशु चिकित्सा विज्ञान वि वि एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा - 281001

जेर का प्रसव के उपरांत सही समय पर न गिरना देश के पशुपालकों के लिए एक गंभीर समस्या है। पशुपालकों को इस समस्या पर उचित जानकारी के अभाव या समस्या को नजरंदाज करने के कारण बहुत आर्थिक नुकसान झेलना पड़ता है। इसीलिए यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि पशुपालक को जेर के समय पर न गिरने के कारण, लक्षण और रोकथाम के तरीकों के बारे में विस्तार से बताया जाए। जेर का समय पर न गिरना, ये जानने से पहले हमें जेर की संरचना और इसके जुड़ाव के बारे में समझना होगा।

जेर एक संरचना झिल्ली है, जो गर्भावस्था में बच्चे को चारों ओर से घेरे रहती है। यह संरचना बच्चे और माँ दोनों के ऊतकों से मिलकर बनी होती है। बच्चे के तरफ वाले बाहरी भाग को कोरिओ-एलंटोइक झिल्ली और बच्चे की तरफ के अंदर की तरफ वाले भाग को एमनीओटिक झिल्ली कहते हैं जिसमें बच्चा रहता है। बाहर वाली झिल्ली के बीच में बच्चे का मूत्र जमा होता है इसे कोरिओ-एलंटोइक बैग कहते हैं, जो प्रसव के समय पहली पानी की थैली होती है और अंदर वाली झिल्ली में बच्चे के मुँह का रिसाव जमा होता है, जिसे एमनीओटिक बैग कहते हैं जोकि दूसरी पानी की थैली होती है। यह रिसाव थोड़ा गाढ़ा होता है। बाहरी झिल्ली (कोरिओ-एलंटोइक) में कोटिलिडीन्स होती हैं और माँ की तरफ वाले भाग में करंकल्स होते हैं, जो गर्भावस्था के समय एक दूसरे से मजबूती से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार इन दोनों के मिलने से बनी संरचना को प्लासेंटोम कहते हैं। प्लासेंटा की इस तरह की संरचना जुगाली करने वाले जानवरो में ही पायी जाती है जैसे गाय, भैंस, बकरी व भेड़। इनकी संख्या गाय और भैस में 75-120 और बकरी और भेड़ में 80-90 होती है। जिससे की माँ से बच्चे को जरूरी पोषण एवं सांस मिलती है। ब्यांत के उपरांत समय की एक निश्चित अवधि के भीतर (आठ से बारह घंटे) जेर को गर्भाशय से बाहर आना होता है। यदि किसी कारण से ये जेर इस समय अवधि में बाहर नहीं निकलती है तो इसे जेर का समय पर न गिरना (रीटेनसन ऑफ प्लासेंटा) कहते हैं। यह निश्चित अवधि अलग-अलग पशुओं के लिए अलग-अलग होती है।

जेर न गिरने के कारण

जेर के समय पर न गिरने के कई कारण होने की वजह से इसके उपचार के लिए सबसे पहले जेर के न गिरने का कारण का पता करना बहुत जरूरी है। जेर के न गिरने के मुख्य रूप से दो कारण होते हैं, पहले कारण में कोटिलिडीन्स और करंकल्स का जुड़ाव नहीं छूट पाता है और दूसरे कारण में कोटिलिडीन्स का करंकल्स से जुड़ाव तो छूट जाता है पर गर्भाशय के ज़ोर न लगाने के कारण जेर गर्भाशय में ही पड़ी रहती है, जोकि गर्भाशय की जड़ता के कारण होता है।

जेर के बाहर आने के लिए गर्भाशय में बहुत सारे परिवर्तन होते हैं: जिनमें जेर की परिपक्वता, कोटिलिडीन्स और करंकल्स के जुड़ाव का समय से टूटना और गर्भाशय के सिकुड़ने से जेर का बाहर आना शामिल है। गर्भावधि पूरी होने के समय पर प्रसव के लिए जेर की परिपक्वता बहुत जरूरी है, इसके विपरीत यह देखा गया है की बच्चे का गर्भावधि से पहले बाहर आना और प्रेरित प्रसव में जेर बाहर आने में ज्यादा समय लेती है। क्योंकि इनमें जेर की परिपक्वता नहीं हो पाती है। हॉर्मोनल परिवर्तन में सबसे जरूरी प्रोजेस्टरोन हॉरमोन होता है जोकि गर्भावस्था को बनाए रखने के लिए जरूरी होता है ये गर्भावधि पूरी होने पर ईस्ट्रोजन में परिवर्तित होता है जोकि प्रोस्टाग्लैंडीन और ऑक्सीटोसिन को काम करने में मदद देता है, जिससे की गर्भाशय में सिकुड़न शुरू हो जाती है जिसके फलस्वरूप बच्चा गर्भाशय से बाहर आ जाता है और फिर जेर भी बाहर आ जाती है, अगर हॉरमोन में किसी तरह की कमी आती है तो जेर के गिरने में भी रुकावट आती है। इसी प्रक्रिया में कोलिजनेज एंजाइम भी मदद करता है जोकि कोटिलिडीन्स में बनता है। ये एंजाइम कोटिलिडीन्स और करंकल्स के जुड़ाव को तोड़ने में मदद

करता है जिससे कि जेर आसानी से प्रसव के उपरांत बाहर आ जाती है। इस एंजाइम में कमी की वजह से भी जेर के बाहर आने में समय ज्यादा लगता है। कठिन प्रसव, गर्भाशय जड़ता, जेर का जीवाणु संक्रमण, गर्भाशय में सूजन, जेर को गिराने के लिए ज़ोर न लगा पाना, भ्रूण की झिल्ली की सूजन, गहन तनाव, गर्भावस्था की कम अवधि, बच्चे का कम वजन, भ्रूण का लिंग, खनिजों में मुख्य रूप से सेलिनियम और कैल्सियम की कमी, आयरन की बड़ी मात्रा, विटामिन ए और ई की कमी, पोषाहार में कमी, पशु का ज्यादा बार बच्चा दे देना आदि सभी कारक पशु में जेर के न गिरने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

जेर के न गिरने के पशु में लक्षण

पशु के जेर के निश्चित अवधि तक न गिरने के उपरांत पशु में कुछ लक्षण आने शुरू हो जाते हैं; जिनमें जेर का योनिमार्ग से लटका रहना, भूख का न लगाना, बुखार आना, दूध में कमी आ जाना, दिल की धड़कन और सांस का तेज हो जाना, जेर के अंदर सड़ने के कारण गंदी बदबू का आना, योनिमार्ग से गंदा बदबूदार रिसाव आना यह सभी लक्षण लघु अवधि के होते हैं पर जेर के न गिरने के दीर्घकालिकलक्षण भी आते हैं जिनमें गर्भाशय में संक्रमण का होना जिसे मैट्राईटिस कहते हैं,पशु का प्रसव के उपरांत देर से गर्मी में आना, गर्मी में आने पर गर्भाधान के बाद भी गाभिन न हो पाना व दूध में लंबे समय तक कमी आना शामिल हैं।

जेर न गिरने का उपचार

जेर के समय पर ना गिरने के उपचार जो सबसे ज्यादा हमारे क्षेत्र में प्रचलित है वो हैं हाथ से खींच कर जेर को निकालना जोकि एक गलत तरीका है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारा काम पशु का प्रजनन सही करना है जिससे कि पशु समय पर गर्मी (हीट) पर आ सके ना की जबरन जेर खींच कर परेशानी को और बढ़ाना। इसीलिए जेर को खींच कर निकालना तभी चाहिए जब जेर दूसरे कारण से (जिसमें कोट्यलेडोन्स का करंकल्स से जुड़ाव तो छूट जाता है पर गर्भाशय के ज़ोर न लगाने के कारण) गर्भाशय में ही पड़ी रहती है। हाथ से जेर निकालने में भी बहुत सावधानी बरतनी चाहिए और यह काम कम से कम समय में पूरा हो जाना चाहिए।

अगर जेर का जुड़ाव मजबूती से है और अभी 24 घंटे से ज्यादा नहीं हुए हैं और पशु कोई बिमारी के लक्षण नहीं दिखा रहा है तो बिलकुल भी जेर को खीचने की कोशिश ना करें। कुछ समय में जब जेर का गर्भाशय से जुड़ाव हटेगा तो जेर बाहर आएगी तब तक के लिए थोड़ी गंदी बदबू को झेलना पड़ सकता है और पशु को गर्भाशय के सिकुड़न को बढ़ाने वाले आयुर्वेदिक तरल देने चाहिए। यह उपचार ही पशु के लिए सही है। अगर प्रसव को 24 घंटे से ज्यादा हो गया है और पशु को बुखार और खाने में कमी की शिकायत आ रही है तो उस स्थिति में पशुचिकित्सक से सलाह लें जिससे कि पशु में बन रहे जहर की मात्रा को कम किया जा सके और पशु की प्रजनन की क्षमता बनी रही।

रोकथाम के उपाय

गाभिन पशु को प्रसव से दो हफ्ते पहले अन्य पशुओं से दूर रखना चाहिए और उसके बैठने के स्थान पर ज्यादा मात्रा में पराली रखनी चाहिए और साफ-सफाई का भरपूर ध्यान रखना चाहिए। पशु को किसी भी प्रकार के तनाव से दूर रखना चाहिए। गाभिन पशु का खाने-पीने का बहुत ध्यान रखना चाहिए। गाभिन पशु को चारे के साथ मिनरल मिक्सचर को भी देना चाहिए। पशु को नियमित रूप से व्यायाम भी करवाना चाहिए।

पशुपालकों के लिए सुझाव

पशुपालक को जेर न गिरने की समस्या के रोकथामों में अमल करने की जरूरत है। गाभिन पशु के चारों तरफ सफाई रखनी चाहिए। पशुपालक को जरूरत है कि वो जेर के समय पर ना गिरने पर घबराए नहीं और अपने निकट के सरकारी पशुचिकित्सालय में संपर्क करे।

वैज्ञानिक फसल चक्रण द्वारा बकरियों के लिए वर्ष भर हरा चारा उत्पादन

मोहम्मद आरिफ, अरविन्द कुमार एवं मनोज कुमार सिंह

भाकृअनुप - केन्द्रीय बकरी अनुसधान संथान, मखदूम, फरह मथुरा - 281122

प्रायः यह देखा गया है कि हमारे देश में बकरी पालन मुख्य रूप से लघु, सीमांत एवं भूमिहीन किसानों द्वारा किया जाता है जोकि उनकी आजीवका का मुख्य साधन है। इस कारण यह गरीब किसान वर्ग बकरी पालन हेतु किसी भी प्रकार के चारे का उत्पादन नहीं कर पाता है एवं बकरियों के भरण पोषण हेतु निम्न गुणवत्ता युक्त, अवांछित रूप से उगे हुए पौधों या फसल कटने के उपरांत खेत में पड़े फसल अवशेष पर ही निर्भर रहता है। वर्तमान में हमारे देश में व्यवसायिक बकरी पालन तेज़ी से बढ़ रहा है। व्यवसायिक बकरी पालन में मुख्यतः 60 से 70 प्रतिशत खर्च खानपान पर ही आता है परन्तु बकरियों के समुचित विकास के लिए उनका पोषण प्रबंधन अत्यधिक आवश्यक है एवं पोषण में मुख्यतौर पर चारा फसल अहम भूमिका निभाती है। हरे चारे के समुचित उपयोग से खर्च कम किया जा सकता है तथा ज्यादा से ज्यादा फायदा लिया जा सकता है। हालांकि व्यवसायिक बकरी पालन में बकरी पालकों द्वारा बकरियों के आर्थिक लक्षणों में सुधार करने के लए उच्च गुणवत्ता युक्त चारे को खिलाने के लिए चिंतन बढ़ रहा है। वैज्ञानिक फसल चक्रण के साथ उच्च गुणवत्ता युक्त हरे चारे की ख़ेती बड़े वाणिज्यिक उद्यमियों के लिए इस चिन्तन का एक अच्छा समाधान हो सकता है क्योंकि उत्पादित चारे के उपयोग द्वारा अच्छी मात्रा में संशोधित प्रोटीन (सीपी) एवं कुल सुपाच्य पोषक तत्व (टीडीएन) उपलब्ध हो जाते हैं। अतः पूरे वर्ष बकरियों को हरा चारा उपलब्ध हो सके इसके लिए जरूरी है कि एक ऐसा फसल चक्र अपनाया जाए जोकि वर्षभर उच्च गुणवत्ता युक्त हरे चारे का उत्पादन कर सके।

उच्च गुणवत्ता युक्त हरे चारे का उत्पादन बढ़ाने के लए महत्त्वपूर्ण बिंदु

- अधिक उत्पादन देने वाले संकर किस्मों के बीज का चयन करना।
- फसल का उसके उपयुक्त शस्य क्रियाओं द्वारा उत्पादन करना।
- उचित फसल चक्र में फसल को लगाना।
- मृदा उत्पादकता एवं चारे की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए दलहनी एवं अदलहनी (घास कुल) चारे को अदल - बदल करके बोना।
- वर्ष पर्यन्त हरे चारे का उत्पादन मिलता रहे इसके लए बहुवर्षीय चारा फसल जैसे नेपियर संकर/गिनी घास को 15-20 प्रतिशत खेती योग्य भूमि पर लगाएं।
- खेत की मेड़ो पर ऐसे कुछ वृक्ष लगाए जो विपरीत परिस्थितियों में चारे की उपलब्धता को बनायें रख सकें।
- उच्च गुणवत्ता युक्त एवं पोषक तत्व से भरपूर चारे के उत्पादन के लिए चारे की कटाई उपयुक्त अवस्था पर करें।
- चारे की बर्बादी को रोकने के लिए बकरियों को कुट्टी युक्त हरा चारा दें।

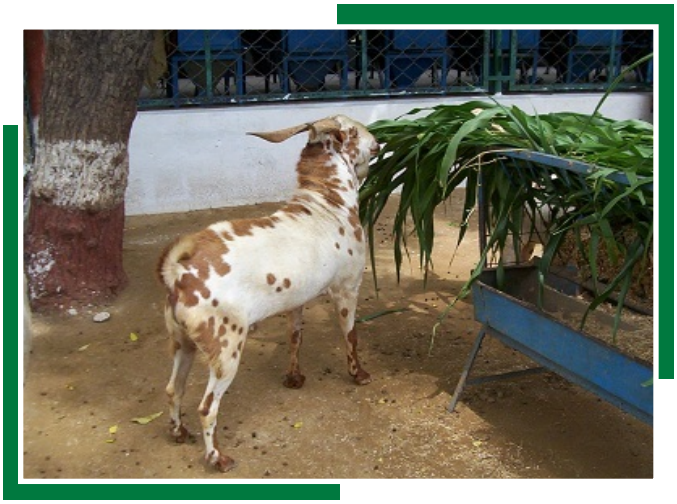

चारा आधारित फसल चक्र

क्र. सं.	फसल चक्र	संभावत उपादन (टन/है./वर्ष)
1.	मक्का + लोबिया - ज्वार + लोबिया – सरसो + बरसीम	180-200
2.	ज्वार (बहु कटाई) + लोबिया – बरसीम (बहु कटाई) + सरसो	180
3.	ज्वार + लोबिया - मक्का + लोबिया – जई	180-200
4.	कतार में नेपियर / गनी घास + लोबिया - लोबिया कतार मध्य में - बरसीम कतार मध्य में	160-180
5.	नेपियर संकर बाजरा + लोबिया - बरसीम	260
6.	लोबिया - एम पी चरी + लोबिया - बरसीम + जापानी सरसों	176
7.	नेपियर संकर बाजरा + लोबिया - बरसीम – लोबिया	255

बकरियों द्वारा हरे चारे के रूप में उपयोग की जाने वाली फसलें एवं उनकी सस्य क्रियाएं

फसल	बुवाई	बीज दर (किग्रा/है.)	खाद एवं उर्वरक (प्रति/है.)	कटाई अवस्था	हरा चारा (टन/है.)
बाजरा	मार्च से जुलाई	12-15	10 टन गोबर खाद, 80 किग्रा नत्रजन, 30 किग्रा फॉस्फोरस	पहली कटाई 55-60 दिन पर तथा बाद की 35-40 दिन के अंतराल पर	एकल कटाई से 30-40 एवं बहुकटाई किस्मों से 55-80
ज्वार	मार्च से जुलाई	30-40	10 टन गोबर खाद, 90 किग्रा नत्रजन, 30 किग्रा फॉस्फोरस	एकल कटाई किस्मों में बुवाई के 65-70 दिन बाद तथा बहु कटाई वाली किस्मों में पहली कटाई 50-55 दिन बाद	एकल कटाई से 35-45 तथा बहु कटाई से 75-100
मक्का	मार्च से सितम्बर	40-45	10-15 टन गोबर खाद, 80-100 किग्रा नत्रजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस	बुवाई के 60-75 दिन बाद	50-80
लोबिया	मार्च से जुलाई	35-50	20 किग्रा नत्रजन, 60 किग्रा फॉस्फोरस	बुवाई के 60-70 दिन बाद	30-35
ज्वार	मार्च-अप्रैल, जून-जुलाई		20 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फॉस्फोरस	बुवाई के 60-75 दिन बाद	30-35
जई	अक्टूबर से नवंबर	100	10-15 टन गोबर खाद, 100 किग्रा नत्रजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस	पहली कटाई 50-55 दिन पर तथा बाद की 45-50 दिन के अंतराल पर	55-60
बरसीम	अक्टूबर से नवंबर	25-30	15-20 टन गोबर खाद, 20 किग्रा नत्रजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस	पहली कटाई 50 दिन पर तथा बाद की 3-5 कटाईयाँ 25-30 दिन के अंतराल पर	90-100
रिजका	अक्टूबर से नवंबर	12-15	15-20 टन गोबर खाद, 20 किग्रा नत्रजन, 80 किग्रा फॉस्फोरस	पहली कटाई 55- 60 दिन पर तथा बाद की 35-40 दिन के अंतराल पर	70-80

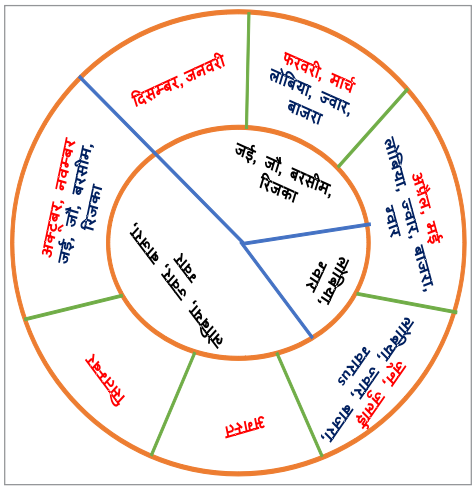

के. ब. अनु. सं., मखदूम में हरे चारे के उत्पादन के लिए वार्षिक फसल चक्र

हरा चारा उपयोग के लाभ

- हरे चारे में पर्याप्त मात्रा में विटामिन "ए" होता है जोकि पशुओं को स्वस्थ रखने तथा दूध उत्पादन बढ़ने के साथ ही सीधे दृष्टि से सम्बन्धित है।
- हरे चारे का पाचन आसानी से हो जाता है एवं पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं।
- हरा चारा मूत्र मार्ग के लिए आवश्यक है, क्योंकि इसकी अल्पदा, मूत्रवाहनी एवं मूत्राशय में पथरी का कारण बनती है।
- हरे चारे में प्रचुर मात्रा में खनिज व लवण, क्रूड प्रोटीन, कुल सुपाच्य पोषक तत्व और शुष्क पदार्थ पाए जाते हैं।
- हरा चारा पशु की प्रजनन शक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण है। इससे पशु समय से गर्मी में आता है और दो ब्यांतों का अंतर भी कम हो जाता है।

वर्षभर हरा चारा उत्पादन के लिए चारा फसल प्रणाली

दूध और मांस के अच्छे उत्पादन के लिए पशुओ को पूरे वर्ष हरे, पौष्टिक और स्वादिष्ट चारे की आपूर्ति अति आवश्यक है, परतु चारा उत्पादन में उचित वैज्ञानिक योजना के अभाव के कारण यह वर्ष भर उपलब्ध नहीं हो पाता है। बकरियों के लिए वर्ष पर्यन्त हरा चारा उपलब्ध हो सके इसके लिए जरूरी है कि बकरी पालकों द्वारा एक सफल वैज्ञानिक फसल चक्र अपनाया जाये जिसके अंतर्गत विभिन्न फसलों का चयन इस तरह हो कि जैसे ही एक फसल से हरा चारा उपलब्ध होना बंद हो तो दूसरी फसल से हरे चारे की उपलब्धता हो सके। चारा फसल प्रणाली के सफल नियोजन के लिए फसलों की बुवाई का उचित समय चुनना बहुत महत्त्वपूर्ण है। सिंचाई की उपलब्धता सुनिश्चित होने पर बाजरा, ज्वार, लोबिया आदि फ़रवरी से जुलाई महीने में बोये जा सकते हैं। इस बुवाई की स्थिति में अगर फ़रवरी के महीने में चारा फसलों की बुवाई की जाती है तो यह फसलें अप्रैल से हरे चारे का उत्पादन करना शुरू कर देगी। इसी तरह मार्च में बुवाई की गई फसल मई से, अप्रैल में बुवाई की गई फसल जून से, मई में बुवाई की गई फसल जुलाई से, जून में बुवाई की गई फसल अगस्त से एवं जुलाई में बुवाई की गई फसल सितम्बर से हरे चारे की आपूर्ति सुनिश्चित कर देगी। इसके अलावा चारा फसल जैसे-जई, बरसीम, जौ, रिजका आदि की बुवाई अक्टूबर - नवम्बर के महीने में की जा सकती है जोकि दिसम्बर से अप्रैल - मई के महीने तक हरा चारा प्रदान करती रहेगी। इस प्रकार वैज्ञानिक चारा फसल प्रणाली/ चक्र को अपनाकर किसान वर्ष भर अच्छी गुणवत्ता वाले हरे चारे का उत्पादन कर सकता है।

व्यवसायिक बकरी पालन हेतु हरा चारा उत्पादन

बकरियों के लिए वर्ष पर्यन्त हरे चारे की उपलब्धता बनी रहे इसके लिए जरूरी है कि एक बहु वर्षीय चारा - घास को आवश्यकतानुसार उचित दूरी पर कतारों में लगाया जाये तथा विभिन्न दलहनी फसलों को उनकी ऋतु के अनुसार बहु वर्षीय चारा-घास के बीच कतारों में लगाएं। इस प्रकार बहु वर्षीय चारा-घास से वर्षभर हरा चारा तथा अन्तः फसल (दलहनी चारा) से मौसमी चारा मिलता रहेगा। चूँकि इस प्रकार के फसल तन्त्र से घास व दलहनी दोनों प्रकार का चारा मिलता रहता है अतः यह अधिक पौष्टिक होता है। इसके साथ ही चारा फसलों को रिले क्रोपिंग या मिश्रित खेती द्वारा उगाकर भी वर्ष पर्यन्त हरा चारा पर्याप्त किया जा सकता है। रिले क्रोपिंग में फसलों को इस तरह उगाया जाता है कि फसल की कटाई होने से पूर्व ही उसमें दूसरी फसल की बुवाई कर दी जाती है। मिश्रित खेती में पौष्टिक चारे की अधिक उपज हेतु एक बीज पत्रीय फसल (घास कुल) के साथ द्विबीज पत्रीय फसलों (दलहनी चारा) को उगाया जाता है। अतः एक बीज पत्रीय व द्विबीज पत्रीय चारे को 1:1 या 2:2 कतारों में उगाया जा सकता है जैसे मक्का + लोबिया या बरसीम + जई। इसके आलावा उपलब्ध भूमि को 3-4 हिस्सों में बांटकर प्रत्येक हिस्से पर ऋतु के अनुसार अलग-अलग फसलें लगायें एवं एक हिस्से पर बहु वर्षीय चारा फसल लगाएं। फसलों का चुनाव इस तरह करें कि चारा घास के साथ-साथ दलहनी चारे की उपलब्धता भी हो सके, साथ ही खेत की मेढ़ो पर कुछ बहु वर्षीय वृक्षों को भी लगाया जा सकता है जैसे कि सुबबूल, गूलर, सिरिस, बेर आदि। इसके अलावा, भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी द्वारा डेयरी किसानो की जरूरतों को पूरा करने के लिए विभिन ओवरलैपिंग क्रोपिंग सिस्टम विकसित किए गए है जिससे कि वर्षभर हरे चारे कि आपूर्ति बनी रहती है।

राजभाषा खंड

वैज्ञानिक संस्थानों में राजभाषा

सतपाल

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001

भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं का प्रवेश लगभग 713 ई से मुहम्मद बिन कासिम के आगमन से माना जाता है। इसके पश्चात् मुस्लिम शासकों ने 1857 ई तक लगातार अपना आधिपत्य जमा कर रखा। कालान्तर में 1947 ई तक अंग्रेज शासकों का आधिपत्य रहा। परतंत्रता की इस अवधि के दौरान यहाँ के मूल निवासियों को प्रत्येक रूप से गुलामी सहन करनी पड़ी चाहे वह किसी भी रूप में यथा शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक आदि की परतंत्रता थी। गुलामी किसी भी जीव को अच्छी नहीं लगती चाहे वह पशु हो अथवा पक्षी। हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि जब किसी पशु अथवा पक्षी को लम्बे अन्तराल के बाद पिंजरे से छोड़ा जाता है तो वह एकदम उन्मुक्त रूप से अपने खुले वातावरण में तेजी से भागता है/उड़ता है। उस समय उसको देखकर हम उसकी प्रसन्नता का अंदाज़ा लगा सकते हैं। मनुष्य अपनी गुलामी के काल में भाषाई रूप से भी गुलाम हो जाता है। इसी प्रकार भारत में इस दशा को लोगों ने लम्बे अन्तराल तक भुगता है। मुस्लिम शासकों ने अपने राज में उर्दू, अरबी, फारसी इत्यादि भाषाओँ को लोगों पर थोपा। भाषाई आज़ादी नहीं थी इसलिए राजकीय कार्यों की भाषा भी वही होती थी। इसके बाद अंग्रेजी शासन आया, अंग्रेजों ने अपनी अंग्रेजी भाषा को हम पर थोपा। भाषाई गुलामी के विषय पर अंग्रेज तो मुस्लिम शासकों से भी आगे निकल गए, उन्होंने हिन्दुस्तानियों को मानसिक रूप से इस सोच का बना दिया कि अंग्रेजी हिंदी भाषा से बहुत अधिक बेहतर है। अगर अंग्रेजी राज में नौकरशाही में आना है तो अंग्रेजी का ज्ञान बहुत जरुरी है; अगर विकास करना है तो अंग्रेजी आना बहुत आवश्यक है। यह बात अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानियों की मानसिकता में कूट-कूट कर भर दी। एक बार मानसिक रूप से गुलाम कर लेने के बाद ऐसी दास्ता की बेड़ियों को काटना बहुत मुश्किल हो जाता है। देश के लोग आज़ादी के 71 वर्ष बाद भी इस भाषाई दास्ता से मुक्ति नहीं पा सके हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में हिंदी

अनेक वीर स्वतंत्रता सेनानियों की कुर्बानी के उपरांत देश 1947 में आजाद हुआ। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की भाषा हिंदी और देवनागरी लिपि को माना गया, इसके साथ 15 वर्ष तक अंग्रेजी भाषा के प्रयोग की भी स्वीकृति दी गई। लेकिन संसद के पास यह भी अधिकार सुरक्षित किया गया कि आवश्यकता पड़ने पर संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी की अवधि को बढाया भी जा सकता है। पहले वर्ष 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित करके इसके प्रयोग की अवधि को 1971 तक बढाया गया, इसके बाद इस नियम में संशोधन करके अंग्रेजी के प्रयोग को अनिश्चित काल तक बढ़ा दिया गया।

हिंदी को लोकप्रिय बनाने में संचार माध्यमों का योगदान

भारत में आज़ादी के पूर्व से ही भारतीय हिंदी कवियों ने अपनी वीर रस की कविताओं से स्वतंत्रता सेनानियों को आज़ादी के लिए प्रेरित किया। आज़ादी के बाद हिंदी समाचार पत्रों, हिंदी गानों, दूरदर्शन इत्यादि का हिंदी के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान रहा है। इसके साथ-साथ हिंदी को विश्व स्तरीय प्रचार देने में इन्टरनेट का योगदान महत्वपूर्ण है। दूरदर्शन के माध्यम से तो हिंदी का प्रचार-प्रसार अत्यधिक सराहनीय रहा है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सरोकार के हिंदी नाटकों की लोकप्रियता बढ़ी है, इसी लोकप्रियता को भुनाने के लिए हिंदी चैनलों की संख्या लगातार बढ़ी है।

हिंदी के वैश्विक स्वरूप को संचार माध्यमों में भी देखा जा सकता है। संचार माध्यमों ने हिंदी के वैश्विक रूप को गढ़ने में पर्याप्त योगदान दिया है। कहा जाता है कि भाषा संस्कृति की वाहक होती है और संचार साधनों पर प्रसारित कार्यक्रमों से समाज के बदलते सच को हिंदी के माध्यम से सामने लाया जा रहा है। पूरे विश्व में हिंदी की

मांग अंग्रेजी की तुलना में पांच गुना ज्यादा तेजी से बढ़ रही है। भारत में हर पांचवा इंटरनेट प्रयोगकर्ता हिंदी का उपयोग करता है।

देश में हिंदी के ज्ञान की वर्तमान स्थिति

आज देश में स्मार्टफोन के रूप में हर हाथ में एक तकनीकी डिवाइस मौजूद है और उसमें हिंदी का प्रयोग हो रहा है। सभी आपरेटिंग सिस्टमों में हिंदी में संदेश भेजना, हिंदी की सामग्री को पढ़ना, सुनना या देखना अंग्रेजी की तरह ही आसान हो गया है। कंप्यूटरों पर भी हिंदी का व्यापक प्रयोग हो रहा है और इंटरनेट पर भी, लेकिन मोबाइल ने हिंदी के प्रयोग को अचानक जो गति दे दी है उसकी कल्पना अभी पांच साल पहले तक किसी ने नहीं की थी। इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं की सामग्री की वृद्धि दर प्रभावशाली है। अंग्रेजी के 19% वार्षिक के मुकाबले भारतीय भाषाओं की सामग्री 90% की रफ्तार से बढ़ रही है।

भारत में 50 करोड़ से ज्यादा लोग हिंदी बोलते हैं, जबकि लगभग 21% भारतीय हिंदी में इंटरनेट का प्रयोग करना जानते हैं। भारतीय युवाओं के स्मार्टफोन में औसतन 32 एप होते हैं, जिसमें 8-9 हिंदी के होते हैं। भारतीय युवा यूट्यूब पर 93 फीसद हिंदी वीडियो देखते हैं।

वैज्ञानिक संस्थानों में राजभाषा

आज यह कहना कि किसी भी पढ़े लिखे व्यक्ति को हिंदी का प्रयोग करने में कोई कठिनाई है, समझ से परे है। आवश्कता है तो केवल इस बात कि की वह मानसिक रूप से हिंदी का प्रयोग करना चाहता है अथवा नहीं। यदि हम वैज्ञानिक संस्थानों की बात करें तो आज आवश्यकता मूल रूप से लिखने की है। हिंदी अनुवाद इसका कोई हल नहीं है। यह हो सकता है, इस में कोई शक नहीं है। अगर मूल लेखन का प्रयास किया जाये तो हमें गूगल अनुवाद से सहायता तो अवश्य मिल सकती है परन्तु इस पर पूर्ण आश्रित नहीं हुआ जा सकता। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की तरफ से वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावलियां भी जारी की गई हैं। अनुवाद करते समय इनकी सहायता ले सकते हैं। आज वैज्ञानिक संस्थानों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। यह भारत के राजभाषा विभाग के प्रयासों से अथवा कार्मिकों के हिंदी के प्रति बढ़ते हुए रूझान के फलस्वरूप हो रहा है। आज हम इन्टरनेट के माध्यम से विभिन्न संस्थानों की वेबसाइट को देखें तो हम पाएंगे कि लगभग सभी संस्थानों ने अपना शौध कार्य हिंदी भाषा में संकलित करके वेबसाइट पर डाल रखा है। संस्थान के बारे में प्रत्येक तरह की सूचना हमें हिंदी भाषा में उपलब्ध हो रही है। संस्थान की वेबसाइट www.nbagr.res.in पर वैज्ञानिक शोध पत्र, परियोजनाओं के बारे में सूचनाएं, व अन्य जानकारियां अनुवादित करके वेबसाइट पर उपलब्ध है। क्योंकि वैज्ञानिक सूचनाएँ व शोध जानकारियों का अनुवाद इतना सरल नहीं हो पाता इसलिए निदेशक महोदय की देखरेख में अनुवाद समिति बनाकर हिंदी अनुवाद किया गया और सम्बंधित वैज्ञानिकों को दिखाकर उनकी सहमति से हिंदी अनुवाद को वेबसाइट पर डाला गया। क्योंकि जिस वैज्ञानिक का वह शोध कार्य है, वही वैज्ञानिक अनुवाद में आ रहे सन्देश को समझ सकता है। ताकि अनुवाद करते समय अर्थ का अनर्थ न होने पाए।

राजभाषा प्रकोष्ठ : जनवरी 2019 से दिसंबर 2019 की प्रगति

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

संस्थान में राजभाषा के प्रयोग व प्रचार-प्रसार की समीक्षा के लिए तिमाही हिंदी बैठकों का आयोजन किया जाता है, इस अवधि के दौरान इन बैठकों का आयोजन दिनांक 26-02-2019, 1-07-2019, 28-10-2019 को किया गया।

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक

हिंदी चेतना माह 2019 की आयोजन समिति की बैठक

हिंदी चेतना माह सितंबर 2019 के आयोजन के लिए निदेशक महोदय द्वारा गठित आयोजन समिति की बैठक दिनांक 2-8-2019 को डॉ. अनिल मिश्र, प्रधान वैज्ञानिक की अध्यक्षता में आयोजित की गई और हिंदी चेतना माह के दौरान आयोजित किये जाने वाले कार्यक्रमों की रूप-रेखा तैयार की गई।

हिंदी चेतना माह का आयोजन

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी संस्थान में सितम्बर माह को "हिंदी चेतना माह - 2019" के रूप में मनाया गया। कार्यक्रम के आयोजन हेतु निदेशक महोदय की स्वीकृति से आयोजन समिति का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष डॉ. अनिल कुमार मिश्र; डॉ. रेखा शर्मा ddd सदस्य तथा श्री सतपाल, सदस्य सचिव बनाये गए। इस अवधि में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार एवं इसके राजकीय कार्यों में प्रयोग को बल देने के लिए कई प्रेरणात्मक व ज्ञानवर्धक प्रतियोगिताएँ करवाई गई। इनमे हिंदी निबंध, पत्र लेखन, टिप्पणी/मसौदा लेखन,

भाषण प्रतियोगिता में भाषण देते हुए प्रतिभागी

शब्दार्थ/अनुवाद, भाषण एवं आशु भाषण प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। वैज्ञानिकों के लिए हिंदी शोध लेख पोस्टर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। सभी प्रतियोगिताओं में विजेता प्रतिभागियों को संस्थान के स्थापना दिवस के सुअवसर पर दिनांक 21-9-19 को नकद पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। वैज्ञानिकों सहित स्टाफ सदस्यों ने इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया।

संस्थान में आयोजित किये गए हिंदी चेतना माह की विस्तृत रिपोर्ट

दिनांक 02-9-2019 को "शहर में घूमने वाले बेसहारा गोवंश से अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए इनके पुनर्वास हेतु सुप्रबंध करके इनसे लाभ प्राप्त करने के सुझावों सहित नगर निगम आयुक्त को अनुरोध पत्र" विषय पर एक हिंदी पत्र लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में संस्थान वैज्ञानिकों सहित कुल 18 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर डॉ. सोनिका अहलावत, द्वितीय स्थान पर संयुक्त रूप से श्री राकेश कुमार एवं श्री कर्मबीर मलिक तथा तृतीय स्थान पर श्रीमती अनीता चंदा और प्रोत्साहन पुरस्कार कु. स्वाति रुल्यान ने प्राप्त किया।

दिनांक 04-9-2019 को हिंदी निबन्ध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसका विषय "देशी पशुधन-किसानों की

आय में वृद्धि का एक बेहतर विकल्प" था। इस प्रतियोगिता में 14 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर डॉ. सोनिका अहलावत, द्वितीय स्थान पर श्री कर्मबीर मलिक तथा तृतीय स्थान पर श्री विशाल शर्मा रहे और प्रोत्साहन पुरस्कार श्री अवनीश कुमार सिंह ने प्राप्त किया।

दिनांक 06-9-2019 को हिंदी में टिप्पणी व मसौदा लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसका विषय "संस्थान में पात्र तकनीकी अधिकारी की पदोन्नति हेतु टिप्पणी लिखकर निदेशक महोदय से स्वीकृति प्राप्त करके नामित करवाए गए विशेषज्ञ को तय की गई दिनांक पर आमंत्रित करने हेतु पत्र का मसौदा तैयार करें" रखा गया था। इस प्रतियोगिता में कुल 8 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर श्री कर्मबीर मलिक, द्वितीय स्थान पर श्रीमती अनीता चंदा और तृतीय स्थान पर श्रीमती अमिता कुमारी रही एवं प्रोत्साहन पुरस्कार डॉ. रणजीत सिंह कटारिया ने प्राप्त किया।

दिनांक 09-9-2019 को शब्दार्थ एवं अनुवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में कुल 15 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर श्रीमती अनीता चंदा, द्वितीय स्थान पर श्री प्रिंस विवेक तथा तृतीय स्थान पर श्री विशाल शर्मा रहे और प्रोत्साहन पुरस्कार श्री अवनीश कुमार सिंह ने प्राप्त किया।

मौखिक प्रतियोगिताओं की श्रृंखला में दिनांक 12-9-2019 को हिंदी भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसका विषय "पानी के संकट से लड़ने की तैयारी-जल शक्ति अभियान" रखा गया था। इस प्रतियोगिता में 10 प्रतिभागियों ने भाग लिया। प्रथम स्थान पर डॉ. सोनिका अहलावत, द्वितीय स्थान पर श्रीमती अनीता चंदा, तृतीय स्थान पर डॉ. करणवीर सिंह रहे और प्रोत्साहन पुरस्कार कु. स्वाति रुल्यान ने प्राप्त किया।

मौखिक प्रतियोगिता के अंतर्गत ही दिनांक 16-9-2019 को एक हिंदी आशु-भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता में कुल 10 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर डॉ. करणवीर सिंह, द्वितीय स्थान पर श्रीमती अनीता चंदा, तृतीय स्थान पर डॉ. अवनीश कुमार रहे और प्रोत्साहन पुरस्कार श्रीमती भारती ने प्राप्त किया।

संस्थान के वैज्ञानिकों को हिंदी भाषा में राजकीय कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए दिनांक 18-9-2019 को हिंदी शोध लेख पोस्टर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें प्रयोगशाला में पूर्व तीन वर्षों के दौरान किये गए शोध कार्य को आधार बनाया गया था। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर डॉ. मनदीप कौर एवं सहयोगी, द्वितीय स्थान पर संयुक्त रूप से विशाल शर्मा तथा शुभम लोट एवं सहयोगी रहे और प्रोत्साहन पुरस्कार कु. याशिका एवं सहयोगियों ने प्राप्त किया।

वर्ष 2018-19 के दौरान हिंदी में कार्य करने वाले कार्मिकों में से उत्कृष्ट हिंदी कार्मिक का चयन दिनांक 19-9-2019 को किया गया। निदेशक महोदय द्वारा गठित समिति द्वारा प्रतिभागियों के द्वारा किये गए हिंदी कार्य का मूल्यांकन किया गया। प्राप्त अंकों के आधार पर प्रथम स्थान पर श्री सतीश कुमार, द्वितीय स्थान पर श्री बाबू राम, तृतीय स्थान पर श्री नरेश नरवाल रहे और प्रोत्साहन पुरस्कार श्रीमती शशी बाला ने प्राप्त किया।

राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह

दिनांक 21-9-2019 को संस्थान के स्थापना दिवस समारोह के शुभ अवसर पर विजेताओं को नकद पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. एस.एल. गोस्वामी पूर्व कुलपति बाँदा कृषि एवं प्रोद्योगिकी वि.वि. बाँदा (उ.प्र.) उपस्थित रहे। विशिष्ट अतिथि श्री राकेश कुमार कुशवाहा, सचिव नराकास भी समारोह में उपस्थित रहें।

वार्षिक हिंदी पत्रिका पशुधन प्रकाश का विमोचन

दिनांक 21-9-2019 को संस्थान के स्थापना दिवस समारोह के शुभ अवसर पर संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" के दसवें अंक (वर्ष-2019) का विमोचन माननीय मुख्य अतिथि के कर कमलों से करवाया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. एस.एल. गोस्वामी, संस्थान निदेशक डॉ. रमेश कुमार विज, पूर्व निदेशक डॉ. आर. सहाय, श्री राकेश कुमार कुशवाहा, सचिव नराकास तथा पत्रिका के संपादक मंडल के सदस्य उपस्थित रहे।

पशुधन प्रकाश पत्रिका का विमोचन

पुरस्कार उपलब्धियाँ

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति करनाल की 69वीं छमाही बैठक दिनांक 20-6-2019 को वर्ष 2018-19 के दौरान हिंदी में उत्कृष्ट कार्यों के लिए संस्थान को द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति करनाल के द्वारा 15-11-2019 को छमाही बैठक के दौरान श्री सतपाल को वर्ष 2018-19 के दौरान हिंदी में उत्कृष्ट कार्यों के लिए "करनाल राजभाषा गौरव" पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" के नवम अंक (वर्ष 2018) के पुरस्कृत लेख

पशुधन प्रकाश पत्रिका में प्रकाशित सर्व-श्रेष्ठ लेखों को भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा प्रत्येक वर्ष पुरस्कृत किया जाता है। सर्व-श्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग-अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है। पशुधन प्रकाश" के नवम अंक (वर्ष 2018) के पुरस्कृत लेख निम्नलिखित हैं:

प्रथम	:	**गौशालाओं के माध्यम से गाय की नस्लों का संरक्षण एवं सतत विकास**
₹ 3000/- नकद		अनिल कुमार मिश्र, राकेश पुंडीर, प्रमोद कुमार सिंह, के.एन.राजा एवं आर्जव शर्मा
एवं प्रशस्ति पत्र		भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल
द्वितीय	:	**भारवाहक अश्वजातीय पशु : एक उपेक्षित आनुवंशिक संसाधन**
₹ 2000/- नकद		हिमानी शर्मा, रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं एम.एस. टांटिया
एवं प्रशस्ति पत्र	:	भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल
तृतीय	:	**किसानों की आय दुगुनी करने का लक्ष्य: पशुधन की भूमिका**
₹ 1500/- नकद		सत्येन्द्र पाल सिंह एवं रश्मि सिंह
एवं प्रशस्ति पत्र	:	राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, मुरैना

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

डॉ. के. एन. राजा

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल – 132 001 (हरियाणा) भारत

दूरभाष : 0184–2267918, फैक्स : 0184–2267654

ईमेल : directornbagr@gmail.com; director.nbagr@icar.gov.in

http://www.nbagr.res.in